[illegible]

cat- 27660
03- 02- 13

गणेश शंकर विद्यार्थी के श्रेष्ठ निबन्ध

स्कैन्ड / Scanned

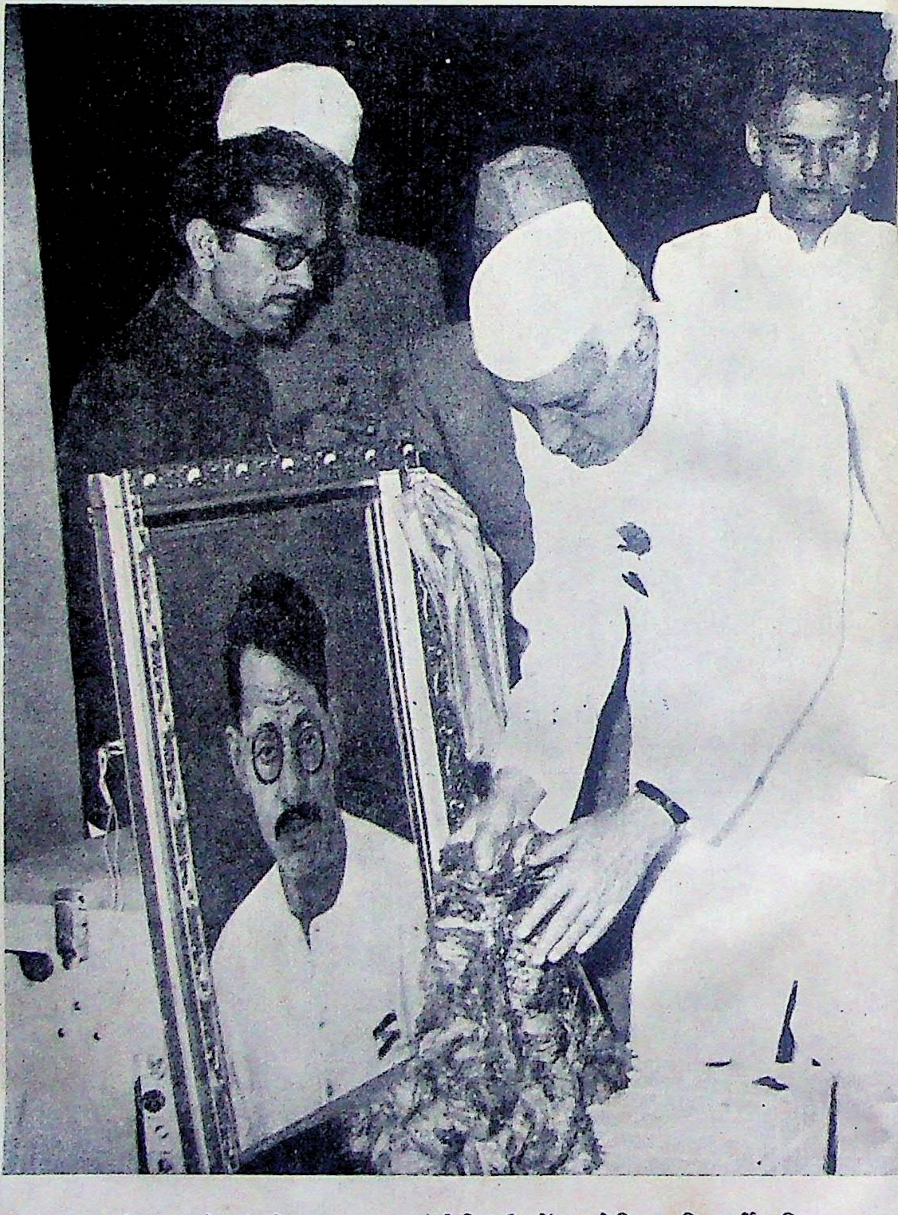

25 मार्च, 63 को कांस्टीट्यूशन क्लब नई दिल्ली में आयोजित 'विद्यार्थी बलिदान दिवस' पर प्रधान मंत्री पं० नेहरू विद्यार्थी जी के चित्र को माल्यार्पण कर रहे हैं। पंडित नेहरू के पीछे ग्रन्थ के संपादक श्री राधाकृष्ण खड़े हैं।

Ganesh Shankar Vidyarthi ka
Shat Nibandh.

गणेश शंकर विद्यार्थी
के
श्रेष्ठ निबन्ध

प्रस्तावना
लाल बहादुर शास्त्री
सम्पादक
राधाकृष्ण

ed Rada Krishna.

सलाहकार मंडल :—
श्रीकृष्णदत्त पालीवाल
श्रीराम शर्मा
बांकेबिहारी भटनागर
अक्षयकुमार जैन
ओंकारशंकर विद्यार्थी

Atma Ram & Sons Delhi

गणेश शंकर विद्यार्थी स्मारक शिक्षा समिति, कानपुर के लिए
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
द्वारा प्रकाशित

GANESH SHANKAR VIDYARTHI KE SHRESHTH
NIBANDH
Edited by
Radha Krishna
Rs. 4.00

COPYRIGHT © 1964, ATMA RAM & SONS, DELHI 6

प्रकाशक
रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-6

H 89
R11 G

शाखाएँ
हौज़ खास, नई दिल्ली
चौड़ा रास्ता, जयपुर
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीग
महानगर, लखनऊ–6
रामकोट, हैदराबाद

मूल्य : चार रुपए
प्रथम संस्करण, 1964

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

Acc. No 25367
Cost Rs 4.00
Date 15.3.66

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

देश के करोड़ों हिन्दी-भाषी भाई-बहिनों के लिए

राष्ट्रनायक पं० जवाहरलाल नेहरू

को

जिनके लिए 'गणेशजी'
एक उम्दा दोस्त, ऊँचे दर्जे के जर्नलिस्ट
और अपनी ज़िन्दगी तथा ख़ासकर क़ौम के लिए
जान देकर अपनी मौत से दुनिया को
एक शानदार सबक सिखाने वाले
आला दर्जे के खुशकिस्मत इंसान हैं

प्रस्तावना

इतिहास के पन्ने इस बात के साक्षी हैं कि देश और समाज की विशेष परिस्थितियों ने ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों को सामने ला खड़ा किया जो उस समय की माँग पूरी कर सकें। श्री गणेश शंकर विद्यार्थी भी ऐसे ही व्यक्ति थे। उन्होंने देश की विचार-धारा को एक नई दिशा दी जिसमें नये और मौलिक विचारों का समावेश तो था ही, साथ ही ओजस्वी विचारों को निर्भीकता के साथ रखने का साहस भी था।

विद्यार्थी जी ने जिस क्षेत्र में पदार्पण किया वह उनकी प्रतिभा से प्रकाशित हो उठा। उनका व्यक्तित्व इतना सरल, निश्छल तथा उदार था कि कुछ लोगों ने उन्हें अजातशत्रु का नाम दे दिया था। गांधी जी के आदर्शों को सच्चे मानों में उन्होंने आत्मसात् किया था और उन्हीं के पालन में एक धर्मान्ध की हिंसा के वे शिकार हुए। उन दिनों एक दल विशेष ने देश में साम्प्रदायिकता की अग्नि को भड़काना शुरू किया था। उसी को शान्त करने के लिए उन्होंने अपनी आहुति दे दी। उनका बलिदान व्यर्थ नहीं गया।

जीवन में उनका मुख्य कार्यक्षेत्र पत्रकारिता रही और इस माध्यम से वह जन-मानस को परिष्कृत करते रहे। अंग्रेज़ अधिकारीगण उनके नाम से डरते थे। उनकी वाणी इतनी सक्षम थी कि वह जनसमुदाय को अपने साथ बहा ले जाते थे और उनकी लेखनी इतनी समर्थ, निर्भीक और प्रवाहमयी थी कि मन और मस्तिष्क दोनों पर प्रभाव डालती थी। उनके जो थोड़े से लेख इस पुस्तक में संगृहीत हैं वे इस कथन का स्पष्ट प्रमाण हैं। उनके इन लेखों को पढ़ते समय कभी-कभी ऐसा लगता है जैसे स्वतंत्र भारत के स्वप्नद्दष्टा के स्वप्नों को हम स्वयं देख रहे हों। हिन्दी के प्रति उनके प्रेम से सब परिचित ही हैं। उन्होंने कहा था—और यह शब्द कितने सारगर्भित हैं—"हिन्दी भाषा और साहित्य···में निहित भवितव्यताएँ इस देश और उसकी भाषा द्वारा संसार-भर के रंगमंच पर एक विशेष अभिनय कराने वाली हैं।" उनके कुछ स्वप्न हमारे सामने ही पूरे होते जा रहे हैं और कुछ आने वाले समय में पूरे होंगे। मेरे ये कुछ शब्द इस पुस्तक का सही मूल्यांकन तो नहीं कर सकते परन्तु विद्यार्थी जी की महानता का शायद कुछ आभास दे सकें।

—लाल बहादुर

1, यार्क प्लेस, नई दिल्ली
20 मार्च, 1964

सम्पादकीय

अपने विद्यार्थी जीवन से ही श्रद्धेय गणेश शंकर विद्यार्थी के अमर बलिदान एवं पवित्र जीवन की कहानियाँ कानपुर की गली-गली में सुनने को मिलती रही हैं। अक्सर नेतागण कानपुर पधारते और सार्वजनिक सभाओं में विद्यार्थीजी को बड़ी श्रद्धा-भक्ति से स्मरण करते और कानपुर को 'गणेशजी की नगरी' कहकर संबोधित करते। कभी-कभी वे विद्यार्थीजी का कोई स्मारक न होने का उपालम्भ भी कानपुर के नागरिकोंको दे देते। स्वाभाविक ही था कि संवेदनशील तथा चुनौतियों को स्वीकार करने में पटु युवक-हृदयों में इस दिशा में कुछ कर गुज़रने एवं नगर पर से इस कलंक-कालिमा को धो डालने का संकल्प उठता। यह सब मेरे मन में भी हुआ और सौभाग्यवश इस भावना को प्रज्ज्वलित किया कानपुर के मनीषी, समाज सुधारक एवं विद्वद्वर महाशय काशीनाथजी ने। विद्यार्थीजी के वह परम हितैषी, सहायक एवं अग्रज के सदृश ही रहे। विद्यार्थीजी के जीवन की अनेक घटनाएँ उनसे सुनने को मिलीं। फलस्वरूप भावना से संकल्प और संकल्प से कार्य का समारम्भ हुआ।

किसी भी कार्य को आगे बढ़ाने के लिए व्यक्ति को प्रोत्साहन, सहयोग तथा सहानुभूति की आवश्यकता होती है। संसार में इसकी प्राप्ति का एकमात्र साधन होता है—'सच्चा मित्र'। जिसे एक भी ऐसा मित्र मिल गया, मेरा विश्वास है, कि वह कठिन से कठिन कार्य को भी पूर्ण कर सकता है। मैं इस सम्बन्ध में भाग्यशाली रहा—अपने बचपन के सखा श्री कैलाशनाथ त्रिपाठी, एम० ए०, एल० एल० बी०, एडवोकेट को पाकर।

अस्तु! जून, 1954 में 'गणेश शंकर विद्यार्थी माध्यमिक विद्यालय' का श्रीगणेश किया गया। स्थान था ए० बी० रोड के दुमंजिला मकान के 5 कमरे (जो कृपा करके श्री वीरेन्द्र बहादुरसिंह तथा श्रीमती शान्तिशिरोमणि उर्फ चच्चीजी ने अपने किराये के मकान में विद्यालय के लिए दे दिए थे) तथा धन के नाम पर केवल आठ रुपये। किन्तु लगन, उत्साह तथा परिश्रम की त्रिवेणी के बल पर स्कूल चल पड़ा। इसी वर्ष विद्यार्थीजी के जीवन तथा सिद्धान्तों के प्रचारार्थ 'अमर शहीद' नाटक खेला गया। नाटक के लेखक थे प्रो० अजित कुमार तथा निदेशक थे सिद्धहस्त

कलाकार श्री सिद्धेश्वर अवस्थी। विद्यार्थीजी का अभिनय किया था श्री कैलाशनाथ त्रिपाठी ने। नाटक का उद्घाटन वर्तमान समय में हमारी समिति के अध्यक्ष मा० चतुर्भुजजी शर्मा, स्वायत्त शासन तथा कारागार मंत्री, उत्तर प्रदेश ने किया था। यह स्वीकार करने में हमें तनिक भी संकोच नहीं है कि यदि शर्माजी का आशीर्वाद एवं संबल हमें प्राप्त न होता तो शायद अभी तक हम अँधियारे में ही होते।

इस नाटक से हममें विद्यार्थीजी की मूर्ति स्थापित करने का भाव उदय हुआ। मूर्ति स्थापित करने की विधिवत घोषणा कर दी गई। अब तक हमें यह ज्ञात हो चुका था कि विद्यार्थीजी के बलिदान के तत्काल बाद कराची कांग्रेस में पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमेटी बनी थी जिसने देश से एक लाख रुपया स्मारक-निर्माण के लिए माँगा था। हमें यह भी मालूम हुआ कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी विद्यार्थीजी के महान् बलिदान से इतने अधिक प्रभावित थे कि उन्होंने अनेक बार स्वयं अपने लिए ऐसी ही मृत्यु की कामना की थी। अब तो हम अपने कार्य की महत्ता से ओत-प्रोत थे। कार्य की महत्ता तथा पवित्रता और बड़े लोगों द्वारा उसका समर्थन मनुष्य में स्वाभिमान तथा आत्म-विश्वास के भाव सहज ही उदय कर देते हैं। हमने अनुभव किया कि जीवन की महत् धारा से हमने अपना सम्बन्ध जोड़ लिया है। एक ओर हम अपने परम श्रेष्ठ पूर्वज की स्मृति को साकार बनाकर समाज में उनके आदर्शों का प्रकाश स्तम्भ प्रज्ज्वलित कर रहे हैं और दूसरी ओर शिक्षा प्रसार द्वारा अपने क्षणभंगुर जीवन को उपयोगी बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

कार्य को ठीक-ठीक चलाने के लिए 'गणेश शंकर विद्यार्थी स्मारक शिक्षा समिति' गठित की गई और दिसम्बर, 1955 में वह रजिस्टर्ड करा ली गई। उद्देश्य थे—

(1) विद्यार्थीजी की मूर्ति स्थापित करना।
(2) माध्यमिक विद्यालय को कालेज तक बढ़ाना।
(3) ग्रन्थ प्रकाशित करना।
(4) पत्रकार विद्यापीठ स्थापित करना। (यह बाद में जोड़ा गया)

सौभाग्य से हमारे संकल्प के अनुसार उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्य मंत्री डा० सम्पूर्णानन्दजी ने स्मारक का शिलान्यास किया तथा प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने सितम्बर, 1961 में मूर्ति का अनावरण-कार्य सम्पन्न किया। अन्य कार्यों की प्रशंसा करते हुए प्रधानमंत्री जी ने विद्यार्थीजी की स्मृति में 'पत्रकार विद्यापीठ' स्थापित करने को सर्वोत्तम तथा विद्यार्थीजी का 'सच्चा स्मारक' बताया। पं० नेहरू की स्वीकृति व अशीर्वाद से अगस्त, 1963 से पत्रकार विद्यापीठ नई दिल्ली में

चल रहा है। मा० लालबहादुरजी शास्त्री की हमें विशेष कृपा प्राप्त है। वे हमारे कार्य में बड़ी रुचि ले रहे हैं। हमें पूर्ण आशा है कि पत्रकार विद्यापीठ निकट भविष्य में ही एक आदर्श संस्था के रूप में बढ़कर प्रधानमंत्रीजी की आशा के अनुरूप विद्यार्थीजी का सच्चा स्मारक बन सकेगा। कृषि मंत्री डा० रामसुभगसिंहजी इसकी प्रवन्ध-समिति के अध्यक्ष हैं।

हमें ग्रन्थ के सम्बन्ध में विशेष चिन्ता थी। जिसके बलिदान की इतनी महत्ता हो, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जिसकी मौत मरना चाहते थे और प्रधान मंत्री जिसकी मूर्ति का अनावरण करने में अत्यन्त आत्मीयता का अनुभव करें, उसके विचारों, लेखों तथा सम्पादकीय लेखों से लोग अनभिज्ञ रहें, यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है। अनेकानेक विद्वानों ने विद्यार्थीजी द्वारा संस्थापित तथा सम्पादित 'प्रताप' पत्र की फाइलें प्राप्त कर उनके बहुमूल्य विचारों का प्रसार करना चाहा था किन्तु कहीं भी वे फाइलें न मिल सकी थीं। हमारे सौभाग्य से यह व्यवधान भी टल गया। हमें 'प्रताप' की फाइलें उपलब्ध हो गईं। मध्य प्रदेश के ज़िला रीवा, ग्राम भरतपुर निवासी ठा० भानुसिंहजी बाघेल ही इस श्रेय तथा यश के भागी हैं, जिनके पास फाइलें सुरक्षित थीं और जिन्होंने बड़ी प्रसन्नता से समिति को वे प्रदान कीं। ठाकुर साहब विद्यार्थीजी के कृपापात्र थे तथा कई बार उनसे मिले भी थे। समिति के माध्यम से समस्त हिन्दी भाषी जनता सदा उनकी ऋणी रहेगी, जिनकी सदाशयता से विद्यार्थीजी के पवित्र विचार, भाषा तथा शैली प्रकाश में आ सकी। मैं समिति की ओर से ठाकुर साहब के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए समिति के अपने एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेकानेक धन्यवाद देते हुए भी उनका ऋणी अनुभव करता हूँ।

'प्रताप' की फाइलों में से हमने उन्हीं लेखों को इस निबन्ध-संग्रह में देने का प्रयास किया है, जो स्थायी महत्त्व के हैं। हाँ, कुछ पत्रकारिता तथा विद्यार्थीजी की विशिष्टता का दिग्दर्शन कराने वाले भी हैं। इन निबन्धों में आप विद्यार्थीजी की ओजपूर्ण, प्रवाह युक्त तथा हृदयस्पर्शी भाषा तथा शैली का अद्भुत आनन्द लेंगे। ठाकुर भानुसिंहजी के शब्दों में, "विद्यार्थीजी की शैली अत्यन्त ओजपूर्ण थी, वह उन्हीं के साथ चली गई" पूर्ण सच्चाई है। निबन्धों को पढ़कर आपको प्रत्येक स्थल पर यह अनुभव होगा कि उनका जीवन त्याग से ओत-प्रोत था, सत्य तथा न्याय के लिए पूर्ण निष्ठामय था तथा भीतर-बाहर समरस था। अपने आदर्शों के लिए जूझ जाने की अभिलाषा उनका स्वभाव बन चुकी थी। किसी भी सांसारिक प्रलोभन के लिए सत्य का त्याग उन्हें सर्वथा त्याज्य था। वह जो सोचते थे वही कहते थे और जो कहते थे वही करते थे। मनसा, वाचा, कर्मणा जो एक हो उसकी

लेखनी कितनी सशक्त, प्रभावपूर्ण व भविष्य-द्रष्टा होगी, यह आप इन निबन्धों में स्वयं ही अनुभव कर लेंगे। अनेक विद्वानों, लब्ध-प्रतिष्ठ सम्पादकों तथा विचारकों को इन निबन्धों को पढ़कर मुक्त कंठ से प्रशंसा करते व गद्गद होते हुए मैंने हाल ही में देखा है। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि यह निबन्ध-संग्रह, प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषी के लिए, चाहे वह राजनीतिज्ञ, समाजसुधारक, अध्यापक, लेखक अथवा विद्यार्थी, कोई भी हो, मनन के सर्वथा योग्य है।

ग्रन्थ के सलाहकार मंडल में देश के उत्कृष्ट सम्पादक और विद्यार्थीजी के अति निकट के व्यक्ति हैं। पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, संस्थापक 'सैनिक' तथा 'विशाल भारत' सम्पादक पं० श्रीराम शर्मा अनेक वर्षों तक विद्यार्थीजी के साथ 'प्रताप' में रहे हैं। उनको अपना गुरु मानते हैं। 'नवभारत टाइम्स' के सम्पादक श्री अक्षयकुमार जैन तथा 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के सम्पादक श्री बाँकेबिहारी भटनागर विद्यार्थीजी के जीवन, कार्य तथा लेखन से भली भाँति परिचित हैं। आप दोनों महानुभावों के अनुसार विद्यार्थीजी ने उस अविकसित काल में एक साप्ताहिक पत्र के द्वारा पत्रकारिता साहित्य के क्षेत्र में जो कार्य कर दिखाया, वह आज विकास के युग में भी आश्चर्यजनक है। प्रो० ओंकारशंकर विद्यार्थी श्रद्धेय विद्यार्थीजी के एकमात्र पुत्र हैं। मैं इन सभी वरिष्ठ महानुभावों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ। आप लोगों ने अत्यन्त कृपा करके निबन्धों के चयन तथा ग्रन्थ में उनके रखने के औचित्य आदि पर यथेष्ठ समय एवं परामर्श देकर इस कार्य में बड़ा योगदान दिया है। ग्रन्थ के प्रकाशक मेसर्स आत्माराम एण्ड संस के मालिक श्री रामलाल पुरी ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक इतने अल्प समय में निबन्ध-संग्रह का प्रकाशन कर दिया, यह उनके हिन्दी प्रेम, विद्यार्थीजी के प्रति श्रद्धा, स्वातंत्र्य आन्दोलन में भाग लेने तथा अच्छे ग्रन्थों को हिन्दी में लाने के पवित्र भावों का ही परिणाम है। वे धन्यवाद के पात्र हैं। श्री रामप्रताप मिश्र का लेख चयन तथा प्रूफ संशोधन में सहयोग भी प्रशंसनीय है। यदि धर्मपत्नी को भी धन्यवाद दिया जाना नीतिज्ञ उचित मानते हों तो श्रीमती सरला, एम० ए०, बी० टी० को भी ग्रन्थ के सम्पादन में पग-पग पर सहायता देने के लिए धन्यवाद दिये बिना कृतघ्नता का भागी ही बनूंगा।

अंत में मैं यह निवेदन करना अपना धर्म समझता हूँ कि ग्रंथ के सम्पादक के रूप में होनेवाली समस्त आय 'गणेश शंकर विद्यार्थी स्मारक शिक्षा समिति, कानपुर' को प्रदान की जावेगी।

—राधाकृष्ण

दिल्ली
24 मार्च, 1964

मंत्री, ग. शं. वि० स्मारक शिक्षा समिति

गणेश शंकर का मार्ग सर्वोत्तम है

[महात्मा गांधी]

हमें तो गणेश शंकर विद्यार्थी बनना चाहिए। गणेश शंकर की तरह आप एक-एक आदमी अपना-अपना अलग शान्ति-दल बना सकते हैं। लेकिन सवाल है कि विद्यार्थी की तरह ऐसे कितने आदमी हैं? गणेश शंकर ने अहिंसा की सेना का एक बहुत ऊँचा आदर्श हमारे सामने रख दिया। वह भले ही मर गया, लेकिन उसकी आत्माहुति व्यर्थ नहीं गई है। उसकी आत्मा मेरे दिल पर काम करती रहती है। मुझे जब उसकी याद आती है तो उससे ईर्ष्या होती है। इस देश में दूसरा गणेश शंकर क्यों नहीं पैदा होता है? हम थोड़ी देर के लिए मान सकते हैं कि उसकी परम्परा समाप्त हो गई, लेकिन वह इतिहास में अमर हो गया, उसकी अहिंसा सिद्ध अहिंसा थी। उसी की तरह कुल्हाड़ी के प्रहार सहते हुए मैं शान्तिपूर्वक मरूँ। एक तरफ से एक मनुष्य मुझ पर कुल्हाड़ी चला रहा हो, दूसरी तरफ से दूसरा बरछी मार रहा हो, तीसरा लाठी मार रहा हो और चौथा लात-घूँसे बरसाता जाता हो, ऐसी अवस्था में भी मैं खुद शान्त रहूँ और लोगों से शान्त रहने को कहूँ और खुद हँसता हुआ मरूँ, ऐसा भाग्य मैं चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मुझे ऐसा मौका मिले और आपको भी मिले। गणेश शंकर को ऐसा ही मौका मिला था, इसीलिए उसकी याद आने पर ईर्ष्या होती है। क्यों नहीं मुझे वह मौका मिलता? गणेश शंकर के जीवन से अहिंसा का पाठ सीखो। देखो, कितनी बाहदुरी से हँसते हुए बिना खाए-पिए अपने भाइयों के हाथ से उसने मृत्यु पाई। इसी तरह की लड़ाई हमें अंग्रेजों और गुण्डों-बदमाशों से लड़नी है। यदि हमारी ऐसी तैयारी नहीं है तो आप अहिंसा की पुकार करके घर आदि छोड़कर भागें नहीं, बल्कि आप अस्त्र-बल से उनका मुकाबला करके अपनी माँ-बहनों की रक्षा करें। परन्तु मैं जो चाहता हूँ वह तो गणेश शंकर का मार्ग है, और वही सर्वोत्तम सरल साधन अपने दुश्मनों से बचने का है। मुझे तो रह-रहकर गणेश शंकर की याद आती है। उसी का आदर्श मैं आप लोगों के सामने रखता हूँ। इसे समझें, हिन्दू-मुसलमानों की सच्ची सेवा गणेश शंकर की तरह करनी है। यही रास्ता दोनों को एक दिन मिला दे सकता है और एक-दूसरे को भाई बनाने में मदद दे सकता है।

सेनापति—गणेशजी

[जवाहरलाल नेहरू]

लखनऊ का स्टेशन था। मार्च का महीना। दिल्ली के समझौते होने पर सत्याग्रही कैदी जेलों से छूट रहे थे। और गणेशजी भी छूटकर आ रहे थे। हम लोग अपने प्रान्त के सेनापति का स्वागत करने स्टेशन पर गए और उनका हँसमुख चेहरा एक साल-भर बाद देखकर खुश हुए। बहुत कुछ बातें करनी थीं, बहुत कुछ मनसूबे गाँठने थे, लेकिन समय कम था। कुछ बातें हुईं, फिर कहा कि बाद में होंगी। वह 'बाद' फिर नहीं आया।

कराची कांग्रेस में वर्किंग-कमेटी की बैठक हो रही थी। एक तार आया और उसको देखते ही दिल बैठ गया और आँखों में अँधेरा छा गया। यकीन नहीं आता था कि गणेशजी गुज़र गए। कांग्रेस की भीड़ में भी सन्नाटा-सा मालूम होता था।

रंज हुआ और दिल को समझाने पर भी दिल समझा नहीं। लेकिन रंज की बात क्या? गणेशजी जैसे जिए, वैसे ही मरे और अगर हममें से कोई आरज़ू करे और अपने दिल की सबसे प्यारी इच्छा पूरी करना चाहे तो वह इससे अधिक क्या माँग सकता है कि उसमें इतनी हिम्मत हो कि मौत का सामना अपने भाइयों की और देश की सेवा में कर सके, और इतना खुशकिस्मत हो कि गणेशजी की तरह मरे। शान से वह जिए और शान से वह मरे और मरकर जो उन्होंने सबक सिखाया वह हम बरसों ज़िन्दा रहकर क्या सिखाएँगे!

पुण्यश्लोक गणेशजी

[बालकृष्ण शर्मा 'नवीन']

हिन्दी भाषाभाषी जनों को—चाहे वे आज की पीढ़ी के ही क्यों न हों—गणेश शंकर विद्यार्थी के परिचय की आवश्यकता नहीं है। हिन्दी-इतर भाषा-भाषियों के लिए उनके परिचय की आवश्यकता है। मोटे रूप में उनका परिचय यों दिया जा सकता है कि वे एक साधारण कुलोत्पन्न असाधारण जन थे। वे उत्तर प्रदेश के स्नेह प्राप्त, ख्यातिप्राप्त, निर्भीक, त्यागी, तपस्वी, अटल, अचल, ज्वलन्त आदर्शवादी, जनप्रिय लोकनायक थे। राजनीति, जनसेवा, हिन्दी पत्रकारिता, तत्कालीन देशीराज्य-प्रजा का नेतृत्व उनके विशेष कार्य क्षेत्र थे। अपनी ओजपूर्ण वाणी, अपने आकर्षक व्यक्तित्व, अपनी ज्वलन्त देशभक्ति, अपनी प्रखर लेखनी और अपनी सहज निडरता से लोकमानस का, देश की आकांक्षाओं और आशाओं का प्रतिनिधित्व करना उनका जीवन-धर्म था। नवयुवकों को परखना, उन्हें आश्रय देना, उन्हें अनुप्राणित करना, उनका जीवन बनाना, गणेश शंकर विद्यार्थी की बान थी। वे अच्युत थे। किसी प्रकार के प्रलोभन उनको डिगा नहीं सकते थे।

यह तो सभी जानते हैं कि कानपुर नगर में 'प्रताप' साप्ताहिक पत्र की स्थापना और उसका 18 वर्षों तक संचालन करके गणेश शंकर ने हिन्दी पत्रकार-कला में ऐसी क्रान्ति की जिसकी समता नहीं हो सकती। गणेश शंकर विद्यार्थी के लेखों ने सहस्रों हिन्दी भाषाभाषी जनों को देशभक्ति का पाठ पढ़ाया और उन्हें देश के स्वातन्त्र्य युद्ध में जूझने का साहस प्रदान किया।

सन् 1913 से लगाकर सन् 1930 तक इस देश में कोई भी ऐसा आन्दोलन नहीं है जिसका प्रसार, प्रचार और आंशिक नेतृत्व गणेश शंकर विद्यार्थी और उनके 'प्रताप' ने न किया हो। चम्पारन के निलहे गोरों के अत्याचार की कहानियाँ सर्वप्रथम गणेश शंकर के 'प्रताप' के द्वारा जनता के सम्मुख आईं। इसके उपरान्त कहीं गांधी बाबा का ध्यान उधर खींचा गया। देशी राज्यों में होनेवाले अनाचारों की कथाएँ सर्वप्रथम 'प्रताप' ने जनता के सम्मुख रखीं। देशी राजाओं के विरुद्ध 'प्रताप' द्वारा किये गए तीव्र आन्दोलन से घबड़ाकर ही तत्कालीन ब्रिटिश

भारतीय शासन ने देशी नरेश संरक्षक विधि (Princes' Protection Act) की सृष्टि की थी। विदेशों में कुली बनाकर भेजे गए भारतीयों के कष्टों का प्रकाशन 'प्रताप' में जिस निर्भीकता और निरन्तर रूप से हुआ उस रूप में भारतवर्ष के अन्य किसी पत्र में नहीं हुआ। बहुत वर्षों तक तो 'प्रताप' ही एक प्रकार से गांधीजी का मुखपत्र बना रहा। जब बहुत पहले, भारत के राजनीतिक नेतृत्व की बागडोर को हाथ में लेने से पूर्व, गांधीजी कानपुर पधारे थे तब 'प्रताप' कार्यालय में गणेशशंकर विद्यार्थी को ही उनके आतिथेय होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। गणेश शंकर के जीवन काल में हिन्दी पत्रों में 'प्रताप' का वही स्थान था जो लोकमान्य के जीवन काल में मराठी पत्रों में 'केसरी' का स्थान था। होमरूल आन्दोलन, कुली-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन, निलहे गोरों के विरुद्ध आन्दोलन, देशी नरेशों की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध आन्दोलन—ये 'प्रताप' की विशेषताएँ रही हैं। असहयोग आन्दोलन में 'प्रताप' के प्रचार का हिन्दी जगत् में बहुत बड़ा हाथ रहा है। आज यह सुनकर किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि हिन्दी पत्रकारिता के विकास में एक समय ऐसा रहा है जब बिहार और उत्तर प्रदेश की जनता समाचार-पत्र का अर्थ केवल 'प्रताप' ही समझती थी। और यह धारणा गणेश शंकर के लोकमानस का प्रतिनिधित्व करने के सामर्थ्य को दरसाती है। असहयोग काल में गणेश शंकर विद्यार्थी की वाणी जिन्होंने सुनी है उसे वे आज भी बड़ी ललक के साथ स्मरण करते हैं।

ऐसे जननायक, ऐसे आदर्शपुंज, ऐसे निश्चल, ऐसे परदुःखकातर, ऐसे ऊँचे मानव गणेश शंकर विद्यार्थी ने एक दिन अपने को होम दिया। दीनों, निरीहों, भयग्रस्तों की रक्षा करते हुए वे 25 मार्च सन् 1931 के दिन कानपुर के हिन्दू-मुस्लिम युद्ध में खेत रहे।

आज भी आपको अनेक ऐके जन मिलेंगे जो गणेशजी द्वारा उपकृत हुए हैं। अनेक ऐसे मिलेंगे और उनकी संख्या सहस्रों में है, जिन्होंने गणेशजी के लेखों से अनुप्राणित होकर देश के स्वातन्त्र्ययुद्ध में भाग लिया। सहस्रों, लक्षों हिन्दी भाषी जनों ने उनसे प्रेरणा प्राप्त की। आज हिन्दी क्षेत्र में अनेक सिद्धहस्त और रससाधक साहित्य स्रष्टा हैं जिन्हें गणेशजी ने प्रणोदना प्रदान की है। यही कारण था, कि हिन्दी जगत् ने कृतज्ञतापूर्वक, उनकी इच्छा न रहते हुए भी, गणेशजी को हिन्दी साहित्य सम्मेलन के गोरखपुर अधिवेशन का सभापति बनाया था। वे उत्तर प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। नमक सत्याग्रह के काल में उत्तर प्रदेश कांग्रेस के वे सर्वप्रथम प्रादेशिक एकाधिपति (डिक्टेटर) थे।

खुली राजनीति में तो गणेशजी नेतृत्व करते ही थे; पर, षड्यंत्रात्मक हिंसा-

वादी राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं और नेताओं में भी उनका अद्भुत सम्मान था। काकोरी षड्यंत्र अभियोग के अभियुक्त गणेशजी की शिष्य-मण्डली के युवक थे। स्वर्गीय हुतात्मा चन्द्रशेखर आज़ाद, स्वार्गीय हुतात्मा भगतसिंह, श्री बटुकेश्वर दत्त, श्री राजकुमारसिंह आदि गणेशजी के अनुजों और बच्चों के सदृश थे।

गणेश शंकर विद्यार्थी इस प्रदेश के द्वारा प्रदत्त भारत के उन नेताओं में हैं जो जन-साधारण के स्तर से ऊपर आए। साधारण शिक्षा, साधारण कोटि का बुद्धि-वभव, पर मानव गुण और आदर्श-आराधना इतनी प्रचुर मात्रा में कि गणेश शंकर के जीवन-यापन और जीवन-दान पर भगवत्-अंश अवतारी पुरुष बापू को भी ईर्ष्या होती थी। वे अनेक बार कह उठते थे कि मैं गणेश शंकर की-सी मृत्यु चाहता हूँ और भगवान् ने बापू का मनोरथ पूरा किया—उन्हें गणेश शंकर की-सी मृत्यु दे कर।

गणेशजी की याद में

[श्रीकृष्णदत्त पालीवाल]

श्रद्धेय गणेश शंकर विद्यार्थी को हम सब गणेशजी कहा करते थे, और सचमुच मेरे लिए तो वह राजनीति, पत्रकारिता और सार्वजनिक जीवन के गणेशजी ही थे। अनेक विद्वानों का मत है कि संसार के बड़े आदमी अनिवार्यतः भले नहीं होते और बहुधा भले आदमी बड़े नहीं हो पाते, लेकिन गणेशजी बड़े और भले दोनों थे या यों कहना अधिक सही होगा कि वे भले होते हुए भी बड़े हो गए, ऐसे बड़े कि महात्मा गांधी व त्यागमूर्ति पं० मोतीलाल नेहरू और जवाहर भाई ही नहीं पंजाब केसरी लाला लाजपतराय और महामना मदनमोहन मालवीय भी उनको अत्यन्त स्नेह और सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

गणेशजी का जीवन तप, त्याग और निःस्वार्थ सेवा का सुन्दर समन्वय था। वक्ता, लेखक, मनुष्य और पत्रकार सबकी दृष्टि से वे बड़े थे। हिन्दी में जन-साधारण के हृदय को अपनी ओर खींच लेने वाले उन जैसे वक्ता अँगुलियों पर ही गिने जा सकेंगे। उनकी लेखनशैली उनकी अपनी थी। ओजपूर्ण और स्फूर्ति प्रदायक, सरल और सुबोध होने के साथ-साथ मस्तिष्क और हृदय दोनों को गुदगुदा देने वाली। पत्रकारिता गणेशजी के लिए व्यवसाय कभी नहीं थी। उनके लिए वह सदैव राष्ट्र धर्म का प्रचार करने का एक साधन मात्र रही। इसी दृष्टि से भी वे हिन्दी पत्रकार जगत के गणेशजी थे। उन दिनों राष्ट्रीय जन जागरण में जो काम गणेश जी के 'प्रताप' ने किया वह शायद ही किसी दूसरे पत्र ने किया हो। सुदूर पहाड़ों तक में जब साप्ताहिक 'प्रताप' पहुँचता था तो उसे पढ़ने और सुनने के लिए लोग डाकखाने पर उसी श्रद्धा भक्ति के साथ इकट्ठे होते थे, जिस तरह धार्मिक कथाएँ सुनने के लिए।

प्रारम्भ में 'प्रताप' का सब काम—प्रूफरीडरी और सम्पादकी से लेकर पते लिखने और डिस्पेच करने तक का—गणेशजी और उनके सहयोगी स्वर्गीय शिवनारायण मिश्र को ही करना पड़ता था। बहुत कम लोगों को यह मालूम होगा कि महान् अर्थ संकट में इतना अधिक परिश्रम करने के कारण ही गणेशजी के

स्वास्थ्य का सर्वनाश हुआ और इन सब बातों के होने के साथ वह ब्रिटिश साम्राज्यशाही के प्रचण्ड प्रहारों के सामने कभी नहीं झुके। जमानतें और पत्र के बायकाट तथा अनेक देशी राज्यों में पत्र के प्रवेश-निषेध एवं मान-हानि आदि के मुकदमों की धमकियों की कौन कहे, जिस प्रहार के सामने बड़े-बड़े और प्रसिद्ध पत्र तक झुक गए, उसको भी गणेशजी ने वीरतापूर्वक सहा और उस सिलसिले में जेल की नारकीय यातनाएँ भी सहीं।

मानवी सहृदयता की दृष्टि से भी गणेशजी अद्वितीय महा मानव थे। राजनीति में अपने व्यक्तिगत विरोधियों की सहायता करना उनके लिए अपने दैनिक जीवन का एक अनिवार्य अंग था। महात्मा गांधी तथा उनकी अहिंसा में पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखते हुए भी अपनी जान जोखम में डालकर वह हिंसा से काम लेने वाले क्रान्तिकारियों की सहायता करते थे। शहीद शिरोमणि सरदार भगतसिंह, शौकत उसमानी आदि अनेक क्रान्तिकारी 'प्रताप' कार्यालय में गणेशजी की छत्रछाया में आश्रय पाते थे। अपने एक भाषण के कारण जेल जाते हुए उन्होंने जिस त्याग की भावना का परिचय दिया था उससे प्रेरित होकर मैंने 'प्रताप' 'में लड़ाई का पक्षपाती' शीर्षक एक लेख लिखा था। उस लेख में मैंने बताया कि जहाँ महाराणा प्रताप बिल्ली के रोटी ले जाने पर बेटी को भूख से बिलखती देखकर अकबर को पत्र लिख गए थे, वहाँ गणेशजी पिता और गर्भवती पत्नी की मृत्यु की आशंका से भी विचलित नहीं हुए।

गणेशजी ने न जाने कितने लेखक और पत्रकार बना डाले। बहुत कम लोग यह जानते होंगे कि संसार प्रसिद्ध हिन्दी कहानी और उपन्यास लेखक प्रेमचन्दजी को हिन्दी लिखने के लिए गणेशजी ने ही प्रेरित और प्रोत्साहित किया था। सही बात यह है कि स्वर्गीय लोकमान्य तिलक की तरह गणेशजी भी केवल एक व्यक्ति ही नहीं थे, वे स्वयं एक संस्था थे।

अपने लगभग 60 वर्ष के जीवन में मुझे आज तक गणेशजी जैसा महामानव नहीं मिला। इस छोटे-से लेख में तो इतना ही कह सकता हूँ कि जब कभी मुझे गणेशजी के गुणों की याद आ जाती है तब श्रीमद्भगवत गीता का अंतिम श्लोक याद आ जाता है। संजय की तरह मेरा भी यही हाल होता है कि गणेशजी के अद्भुत मानवीय रूप को स्मरण करके मुझे महान् विस्मय तो होता ही है, हृदय में बार-बार हर्ष की लहरें भी हिलोरें लेने लगती हैं।

गणेशजी की पुण्यस्मृति में

गणेशजी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम के चोटी के सेनानियों में थे। उनका स्मारक उनकी कर्मभूमि कानपुर में बनाना बहुत ही आवश्यक था। यह शुभ कार्य विद्यार्थी स्मारक शिक्षा समिति ने प्रारंभ किया। इसी समिति ने सर्वप्रथम विद्यार्थीजी की मूर्ति का निर्माण कराकर उनका स्मारक बनवाया। मूर्ति का अनावरण हमारे राष्ट्र-नायक और विद्यार्थीजी के मित्र और सहयोगी पं० जवाहरलाल नेहरू ने 25-9-61 को किया था। उसी समय पंडितजी ने यह विचार प्रकट किया था कि गणेशजी की स्मृति में पत्रकार विद्यापीठ की स्थापना होनी चाहिए। इसी पत्रकार विद्यापीठ का शुभारम्भ पंडितजी के द्वारा दिल्ली में 25-3-63 को किया गया जिससे सम्बंधित समारोह श्री लालबहादुर शास्त्रीजी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था। और बहुत-से साहित्यिकों एवं पत्रकरों ने उसमें अपना योगदान किया था। अब यह पत्रकार विद्यापीठ एक सक्रिय संस्था हो गई है और अच्छा कार्य कर रही है।

'विद्यार्थी स्मारक शिक्षा समिति' ने विद्यार्थीजी के लेखों का संग्रह किया है जिन्हें यह समिति प्रकाशित कर रही है। विद्यार्थीजी के लेख हिन्दी साहित्य के लिए एक महत्त्वपूर्ण सामग्री तो होगी ही, साथ ही साथ वे राष्ट्रीय चेतना और बलिदान की भावना भी पाठकों में उत्पन्न करते रहेंगे। यह बहुत ही अच्छा है कि उनकी लेख माला को पुस्तकाकार रूप में विद्यार्थीजी के सहयोगी और परम मित्र हमारे पूज्य राष्ट्र-नायक पंडित जवाहरलाल नेहरू जी को समर्पित किया जा रहा है। आशा है यह लेखमाला जनता के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

'विद्यार्थी स्मारक शिक्षा समिति' अपने ढंग से विद्यार्थीजी के आदर्शों पर चलकर सेवा-कार्य कर रही है और उसे पंडितजी और शास्त्रीजी ऐसे नेताओं का आशीर्वाद प्राप्त है। साहित्यिकों और जनसेवियों के सहयोग से यह शिक्षा समिति अधिक से अधिक जनोपयोगी कार्य कर सके, यही मेरी कामना है। इसमें हम सभी महानुभावों के सहयोग के इच्छुक हैं।

—चतुर्भुज शर्मा,

अध्यक्ष, ग. शं. वि. स्मारक शिक्षा समिति

साधुवाद

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि गणेश शंकर विद्यार्थी स्मारक शिक्षा समिति की ओर से स्वर्गीय श्रीगणेश शंकर विद्यार्थी जी द्वारा 'प्रताप' में प्रकाशित अग्र लेखों तथा निबन्धों का एक संग्रह उनकी आगामी पुण्य तिथि के अवसर पर प्रकाशित किया जा रहा है। यह तथ्य निर्विवाद है कि विद्यार्थी जी का नाम हिन्दी पत्रकारिता में सदैव अमर रहेगा। उन्होंने जिस निर्भीकता और साहसिकता के साथ उस नौकरशाही के गला घोंटने वाले वातावरण के अन्दर राष्ट्रीयता की ज्योति जलाई थी और हिन्दी भाषी जनता तक अपने प्रेरणादायक लेखों के द्वारा उत्साह का नया संचार किया था, वह इतिहास की एक अमर वस्तु है। मुझे पूरा विश्वास है कि इन लेखों के प्रकाशित होने से जहाँ उनकी पुण्य स्मृति को चिरस्थायी करने में सहयोग मिलेगा, वहाँ साथ ही हमारी वर्तमान पीढ़ी को भी उन लेखों तथा निबन्धों को पढ़कर एक नई प्रेरणा प्राप्त होगी। मैं इस शुभ कार्य के लिए आयोजकों को हार्दिक साधुवाद तथा शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

उप-शिक्षामंत्री, भारत

—भक्त दर्शन

नई दिल्ली-2, 16 मार्च, 1964 ई०

आवश्यक निवेदन

प्रस्तुत निबन्ध-संग्रह में श्रद्धेय विद्यार्थीजी द्वारा समय-समय पर 'प्रताप' में लिखे गए कुछ सम्पादकीय एवं अन्य लेख-टिप्पणियों को संग्रहीत किया गया है। 'प्रताप' का सम्पादन विद्यार्थीजी ने नवम्बर 1913 से मार्च, 1931 मृत्यु पर्यन्त किया। बीच-बीच में जेल यात्राओं तथा वीर पाल केस के समय वे 'प्रताप' के सम्पादक नहीं रहे। स्वाभाविक ही था कि इस काल में हुई विविध घटनाओं पर उनकी लेखनी चली। समय की गति विचित्र तथा कदाचित् गहन होती है। पहले के मित्र शत्रु एवं पदाक्रांत और अन्याय से पीड़ित राष्ट्र मुक्त होते ही न्याय-अन्याय का विवेक छोड़ आततायी तथा आक्रान्ता हो जाते हैं। आज की बदली हुई परिस्थितियों में उन विशेष निबन्धों का वर्तमान की पृष्ठभूमि में मूल्यांकन करना उचित न होगा। अतः ऐसे निबन्ध ऐतिहासिक महत्त्व के ही माने जाने चाहिए। वे अब इतिहास की वस्तु हैं।

पुनश्च, उपर्युक्त मनतव्य को ध्यान में रखकर सुविज्ञ पाठकों की विशेष सुविधा के लिए प्रत्येक निबन्ध के सामने तिथि अंकित है।

राधाकृष्ण
सम्पादक

विषय-सूची

प्रस्तावना (लालबहादुर शास्त्री) छ
सम्पादकीय ज
गणेशशंकर का मार्ग सर्वोत्तम है (महात्मा गाँधी) ठ
सेनापति गणेशजी (जवाहरलाल नेहरु) ड
पुण्यश्लोक गणेशजी (बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ढ
गणेशजी की याद में (श्रीकृष्णदत्त पालीवाल) थ
गणेशजी की पुण्य स्मृति में (चतुर्भुज शर्मा) ध
साधुवाद (भक्त दर्शन) न
1. हिन्दी भाषा का भविष्य (गणेशशंकर विद्यार्थी ग्रन्थ से) 1
2. पत्रकार का दायित्व (पत्रकार कला पुस्तक की भूमिका) 3
3. प्रताप की नीति (9-11-13) 5
4. महाराणा प्रताप (गणेशशंकर विद्यार्थी ग्रन्थ से) 7
5. मानव स्वत्व (17-5-14) 10
6. जातीय सुधार (सुधारकों की भूल) (14-6-14) 14
7. राष्ट्र की आशा (मेज़िनी का आदेश) (विक्रम 1971) 17
8. चीन में राज्य क्रान्ति होगी (22-2-15) 28
9. लोक सेवा (19-4-15) 29
10. सुरापान की भयंकरता (10-5-15) 32
11. राष्ट्रीयता (21-6-15) 35
12. राष्ट्र की नींव (28-6-15) 38
13. नगर जीवन (13-9-15) 41
14. षड्यंत्र और देशोद्धार (18-10-15) 45
15. राष्ट्रीय शिक्षा (विक्रम 1972) 47
16. वैद्यक को फांसी (6-12-15) 55
17. शिक्षा का प्रश्न (24-1-16) 58
18. किसे मेम्बर बनना चाहिए ? (6-3-16) 61
19. क्या लड़ाइयाँ बन्द हो जाएँगी ? (19-6-16) 63

20. शिक्षा का माध्यम	(3 9-17)	67
21. ग़रीबों का कष्ट	(21-1-18)	70
22. युद्ध और खेती	(13-5 18)	73
23. कर्मक्षेत्र	(विक्रम 1975)	76
24. भारतीय इतिहास की बानगी	(विक्रम 197)	82
25. सत्याग्रह	(31-3-19)	88
26. सत्याग्रह: उसकी उपयोगिता	(26-5-19)	91
27. चीन: 'आगामी एशिया' की पहेली	(16-6-19)	96
28. बोल्शेविज़्म की लहर	(2-2-20)	98
29. बोल्शेविक खतरा	(9-2-20)	102
30. आगामी महाभारत	(19 3 20)	106
31. सुगमता की माया !	(3-5-20)	109
32. मानव-हृदय का उन्माद	(8-3-21)	112
33. आदर्श और समझौता	(5-4-21)	115
34. सार्वजनिक सदाचार	(7-4-24)	119
35. स्वराज्य किसके लिए ?	(14-7-24)	123
36. चलिए गांव की तरफ	(19-1-25)	126
37. अंग्रेज़ी डींग ?	(6-7-25)	129
38. चुनाव के बन्धन-पाश में	(20-6-26)	131
39. नवयुवकों से दो बातें	(गणेशशंकर विद्यार्थी ग्रन्थ से)	134
40. माँ के आँचल में	(9-1 -25)	137
41. धर्म की आड़	(27-10-24)	140
42. भारतवर्ष और कम्युनिज़्म	(7-4-29)	143
43. अनुताप की महिमा	(12-4-21)	147
44. हमारी विशृंखलता	(3-5-21)	152
45. हमारे जातीय जीवन के दोष	(26-4-21)	155

1

हिन्दी भाषा का भविष्य

[हिन्दी साहित्य सम्मेलन के गोरखपुर अधिवेशन में अध्यक्ष पद से दिये हुए भाषण का कुछ अंश]

“....हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य का भविष्य बहुत बड़ा है। उसके गर्भ में निहित भवितव्यताएँ इस देश और उसकी भाषा द्वारा संसारभर के रंगमंच पर एक विशेष अभिनय कराने वाली हैं। मुझे तो ऐसा भासित होता है कि संसार की कोई भी भाषा मनुष्य-जाति को उतना ऊँचा उठाने, मनुष्य को यथार्थ में मनुष्य बनाने और संसार को सुसभ्य और सद्भावनाओं से युक्त बनाने में उतनी सफल नहीं हुई, जितनी कि आगे चलकर हिन्दी भाषा होने वाली है। हिन्दी को अपने पूर्व-संचित पुण्य का बल है। संसार के बहुत बड़े विशाल खण्ड में सर्वथा अन्धकार था लोग अज्ञान और अधर्म में डूबे हुए थे, विश्व-बन्धुत्व और लोक-कल्याण का भाव भी उनके मन में उदय नहीं हुआ था, उस समय जिस प्रकार इस देश से सुदूर देश-देशान्तरों में फैलकर बौद्ध-भिक्षुओं ने बड़े-बड़े देशों से लेकर अनेकानेक उपत्याकाओं, पठारों और तत्कालीन पहुँच से बाहर गिरि-गुहाओं और समुद्रतटों तक धर्म और अहिंसा का सन्देश पठाया था उसी प्रकार अदूर भविष्य में उन पुनीत सन्देश-वाहकों की सन्तति संस्कृत और पाली की अग्रजा हिन्दी द्वारा भारतवर्ष और उसकी संस्कृति के गौरव का सन्देश एशिया महाखण्ड के प्रत्येक मन्त्रणास्थल में, एशियाई महासंघ के प्रत्येक रंगमंच पर सुनाएगी। मुझे तो वह दिन दूर नहीं दिखाई देता, जब हिन्दी साहित्य अपने सौष्ठव के कारण जगत-साहित्य में अपना विशेष स्थान प्राप्त करेगा और हिन्दी, भारतवर्ष-ऐसे विशाल देश की राष्ट्रभाषा की हैसियत से न केवल एशिया महाद्वीप के राष्ट्रों की पंचायत में, किन्तु संसारभर के देशों की पंचायत में एक साधारण भाषा के समान न केवल बोली भर जाएगी किन्तु अपने बल से संसार की बड़ी-बड़ी समस्याओं पर भरपूर प्रभाव डालेगी और उसके कारण अनेक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बिगड़ा और बना करेंगे। संसार की अनेक भाषाओं के इतिहास, धमनियों में बहने वाले ठण्डे रक्त को उष्ण कर देने वाली उन मार्मिक

घटनाओं से भरे पड़े हैं, जो उनके अस्तित्व की रक्षा के लिए घटित हुई। फ्रांस की किरचों की नोंक छाती पर गड़ी हुई होने पर भी रूर प्रान्त के जर्मनों ने अपनी मातृ-भाषा के न छोड़ने की दृढ़ प्रतिज्ञा की और उसका अक्षर-अक्षर पालन किया। कनाडा के फ्रांसीसियों का अपनी मातृ-भाषा के लिए प्रयत्न करना किसी समय अपराध था, किन्तु घमण्डी मनुष्यों के बनायें हुए इस क़ानून का मातृ-भाषा के भक्तों ने सदा उल्लंघन किया। इटली, आस्ट्रेलिया के छीने हुए भू-प्रदेशों के गले के नीचे ज़बर्दस्ती अपनी भाषा उतारना चाहती थी, किन्तु वह अपनी समस्त शक्ति से भी मातृ-भाषा के प्रेमियों को न दबा सकी। आस्ट्रिया ने हंगरी को पद-दलित करके उसकी भाषा का भी नाश करना चाहा, किन्तु आस्ट्रिया-निर्मित राज-सभा में बैठकर हंगरी वालों ने अपनी भाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषा में बोलने से इन्कार कर दिया था। दक्षिण अफ्रीका के जनरल बोथा ने केवल इस बात के सिद्ध करने के लिए कि उनका देश विजित हुआ और न उनकी आत्मा ही, बहुत अच्छी अंग्रज़ी जानते हुए भी बादशाह जार्ज से साक्षात् होने पर अपनी मातृ-भाषा डच भाषा में ही बोलना आवश्यक समझा, और एक दुभाषिया उनके तथा बादशाह के बीच में काम करता था यद्यपि हिन्दी के अस्तित्व पर अब इस प्रकार के खुले प्रहार नहीं होते, किन्तु उन ढंके-मुंदे प्रहारों की कमी भी नहीं है, जो उस पर, और इस प्रकार देश की सुसंस्कृति पर, विजय प्राप्त करना चाहते हैं। साहस के साथ और उस अगाध विश्वास के साथ जो हमें हिन्दी भाषा और उसके साहित्य के परमोज्ज्वल भविष्यत् पर है, हमें इस प्रकार के प्रहारों का सामना करना चाहिए, और जितने बल और क्रियाशीलता के साथ हम ऐसा करेंगे, उतनी द्रुत गति के साथ हम अपनी भाषा की त्रुटियों को दूर करेंगे और उसे 32 करोड़ व्यक्तियों की राष्ट्रभाषा के समान बलशाली और गौरवयुक्त बनाएंगे, उतना ही शीघ्र हमारे साहित्य-सूर्य की रश्मियाँ दूर-दूर तक समस्त देशों में पड़कर भारतीय संस्कृति, ज्ञान और कला का सन्देश पहुँचाएँगी, उतनी ही शीघ्र हमारी भाषा में दिये गए भाषण संसार की विविध रंग-स्थलियों में गुंजरित होने लगेंगे और उससे मनुष्य-जाति मात्र की गति-मति पर प्रभाव पड़ता हुआ दिखाई देगा, और उतने ही शीघ्र एक दिन और उदय होगा और वह होगा तब, जब देश के प्रतिनिधि उसी प्रकार, जिस प्रकार आयरलैण्ड के प्रतिनिधियों ने इंग्लैण्ड से अन्तिम सन्धि करते और स्वाधीनता प्राप्त करते समय अपनी विस्मृत भाषा गैलिक में सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे, भारतीय स्वाधीनता के किसी स्वाधीनता-पत्र पर हिन्दी भाषा में और नागरी अक्षरों में अपने हस्ताक्षर करते हुए दिखाई देंगे।"

2

पत्रकार का दायित्व

[पं० विष्णुदत्त शुक्ल द्वारा लिखित 'पत्रकार-कला' पुस्तक की भूमिका से]

"....संसार के अधिकांश समाचार-पत्र पैसे कमाने और झूठ को सच और सच को झूठ सिद्ध करने में उतने ही लगे हुए हैं, जितने संसार के बहुत-से चरित्र-शून्य व्यक्ति। अधिकांश बड़े समाचार-पत्र धनी-मानी लोगों द्वारा संचालित होते हैं। इसी प्रकार के संचालन या किसी दल-विशेष की प्रेरणा ही से उनका निकलना सम्भव है। अपने संचालकों या अपने दल के विरुद्ध सत्य बात कहना तो बहुत दूर की वस्तु है, उनके पक्ष-समर्थन के लिए वे हर तरह के हथकंडों से काम लेना अपना नित्य का आवश्यक काम समझते हैं। इस काम में वे इस बात का विचार करना आवश्यक नहीं समझते कि सत्य क्या है ? सत्य उनके लिए ग्रहण करने की वस्तु नहीं है, वे तो अपने मतलब की बात चाहते हैं। संसार भर में यह हो रहा है। इने-गिने पत्रों को छोड़कर, सभी पत्र ऐसा कर रहे हैं। जिन लोगों ने पत्रकार-कला को अपना काम बना रखा है, उनमें बहुत कम ऐसे लोग हैं, जो अपने चित्त को इस बात पर विचार करने का कष्ट उठाने का अवसर देते हैं कि हमें सचाई की भी लाज रखनी चाहिए, केवल अपनी मक्खन-रोटी के लिए दिनभर में कई रंग बदलना ठीक नहीं है। इस देश में भी दुर्भाग्य से समाचार-पत्रों और पत्रकारों के लिए यही मार्ग बनता जाता है। हिन्दी पत्रों के सामने भी यही लकीर खिचती जा रही है। यहाँ भी अब बहुत-से समाचार-पत्र सर्वसाधारण के कल्याण के लिए नहीं रहे; सर्वसाधारण उनके प्रयोग की वस्तु बनते जा रहे हैं। एक समय था, इस देश में साधारण आदमी सर्वसाधारए के हितार्थ एक ऊँचा भाव लेकर पत्र निकालता था, और उसे पत्र को जीवन-क्षेत्र में स्थान मिल जाया करता था। आज वैसा नहीं हो सकता। आपके पास ज़बरदस्त विचार हों, और पैसा न हो, और पैसे वालों का बल न हो, तो आपके विचार आगे न फैल सकेंगे, आपका पत्र न चल सकेगा। इस देश में भी समाचार-पत्रों का आधार धन हो रहा है। धन ही से वे निकलते हैं, धन ही के आधार पर वे चलते हैं, और बड़ी वेदना के साथ कहना पड़ता है कि

उनमें काम करने वाले बहुत-से पत्रकार भी धन ही की अभ्यर्थना करते हैं। अभी यहाँ पूरा अन्धकार नहीं हुआ है, किन्तु लक्षण वैसे ही हैं। कुछ ही दिन पश्चात् यहाँ के समाचार-पत्र भी मशीन के सदृश हो जाएँगे, और उनमें काम करने वाले पत्रकार केवल मशीन के पुर्ज़े। व्यक्तित्व न रहेगा, सत्य और असत्य का अन्तर न रहेगा, अन्याय के विरुद्ध डट जाने और न्याय के लिए आफ़तों के बुलाने की चाह न रहेगी, रह जाएगा केवल खींची हुई लकीर पर चलना। मैं तो उस अवस्था को अच्छा नहीं कह सकता। ऐसे बड़े होने की अपेक्षा छोटे, और छोटे से भी छोटे, किन्तु कुछ सिद्धान्तों वाले होना कहीं अच्छा। पत्रकार कैसा हो, इस सम्बन्ध में दो राय हैं—एक तो यह कि उसे सत्य या असत्य, न्याय या अन्याय के झगड़े में नहीं पड़ना चाहिए। एक पत्र में वह नरम बात कहे, तो बिना हिचक दूसरे में वह गरम कह सकता है, जैसा वातावरण देखे, वैसा करे, अपने लिखने की शक्ति से डटकर पैसे कमाए, धर्म और अधर्म के झगड़े में न अपना समय खर्च करे और न अपना दिमाग़ ही। दूसरी राय यह है कि पत्रकार की अपने समाज के प्रति बड़ी ज़िम्मेदारी है, वह अपने विवेक के अनुसार अपने पाठकों को ठीक मार्ग पर ले जाता है, वह जो कुछ लिखे, प्रमाण और परिमाण का विचार रखकर लिखे, और अपनी मति-गति में सदैव शुद्ध और विवेकशील रहे। पैसा कमाना उसका ध्येय नहीं है, लोक-सेवा ही उसका ध्येय है, और अपने काम से जो पैसा वह कमाता है, वह ध्येय तक पहुँचाने के लिए एक साधन मात्र है। संसार के पत्रकारों में दो तरह के आदमी हैं। पहले दूसरी तरह के पत्रकार अधिक थे, अब इस उन्नति के युग में, पहली तरह के। उन्नति समाचारों-पत्रों के आकारों प्रकारों में हुई है। खेद की बात है कि उन्नति आचरणों में नहीं हुई। हिन्दी के समाचार-पत्र भी उन्नति के राजमार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं। मैं हृदय से चाहता हूँ कि उन्नति उधर हो या न हो, किन्तु कम-से-कम वे आचरण क्षेत्र में पीछे न हटें, और जो सज्जन इन पंक्तियों को पढ़ें, वे आचरण सम्बन्धी आदर्श को सदा ऊँचा समझें। पैसे का मोह और बल की तृष्णा भारतवर्ष के किसी भी नए पत्रकार को ऊँचे आचरण के पवित्र आदर्श से बहकने न दे।"

3

प्रताप की नीति

['प्रताप' के प्रथम अंक का अग्रलेख]

"आज अपने हृदय में नई-नई आशाओं को धारण करके और अपने उद्देश्यों पर पूर्ण विश्वास रखकर प्रताप कर्म-क्षेत्र में आता है। समस्त मानव-जाति का कल्याण हमारा परमोद्देश्य है और इस उद्देश्य की प्राप्ति का एक बहुत बड़ा और बहुत जरूरी साधन हम भारतवर्ष की उन्नति को समझते हैं। उन्नति से हमारा अभिप्राय देश की कृषि, व्यापार, विद्या, कला, वैभव, मान, बल, सदाचार और सच्चरित्रता की वृद्धि से है। भारत को इस उन्नतावस्था तक पहुँचाने के लिए असंख्य उद्योगों, कार्यों और क्रियाओं की आवश्यकता है। इनमें से मुख्यतः राष्ट्रीय एकता, सुव्यवस्थित, सार्वजनिक और सर्वांगपूर्ण शिक्षा का प्रचार, प्रजा का हित और भला करने वाली सुप्रबन्ध और सुशासन की शुद्ध नीति का राजकार्यों में प्रयोग, सामाजिक कुरीतियों का निवारण तथा आत्मावलम्बन और आत्म-शासन में दृढ़ निष्ठा है। हम इन्हीं सिद्धान्तों और साधनों को अपनी लेखनी का लक्ष्य बनावेंगे। हम अपनी प्राचीन सभ्यता और जातीय गौरव की प्रशंसा करने में किसी से पीछे न रहेंगे, और अपने पूजनीय पुरुषाओं के साहित्य, दर्शन, विज्ञान और धर्म-भाव का यश सदैव गावेंगे। किन्तु अपनी जातीय निर्बलताओं और सामाजिक कुसंस्कारों तथा दोषों को प्रकट करने में हम कभी बनावटी जोश या मसलहत-वक्त से काम न लेंगे, क्योंकि हमारा विश्वास है कि मिथ्या अभिमान जातियों के सर्वनाश का कारण होता है। किसी की प्रशंसा या अप्रशंसा, किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता, किसी की घुड़की या धमकी, हमें अपने सुमार्ग से विचलित न कर सकेंगी। साम्प्रदायिक और व्यक्तिगत झगड़ों से प्रताप सदा अलग रहने की कोशिश करेगा। उसका जन्म किसी विशेष सभा, संस्था व्यक्ति या मत के पालन-पोषण, रक्षण या विरोध के लिए नहीं हुआ है, किन्तु उसका मत स्वातंत्र्य-विचार और उसका धर्म सत्य होगा।···मनुष्य की उन्नति भी सत्य की जीत के साथ बँधी है। इसीलिए सत्य का दबाना हम महापाप समझेंगे, और उसके प्रचार

श्रौर प्रकाश को महापुण्य। हम जानते हैं कि हमें इस काम में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, श्रौर इसके लिए बड़े भारी साहस श्रौर श्रात्म-बल की श्रावश्यकता है। हमें यह भी श्रच्छी तरह मालूम है कि हमारा जन्म निर्बलता, पराधीनता श्रौर श्रल्पज्ञता के वायुमण्डल में हुश्रा है। तो भी हमारे हृदय में सत्य की सेवा करने के लिए श्रागे बढ़ने की इच्छा है, श्रौर हमें श्रपने उद्देश्य की सच्चाई तथा श्रच्छाई का श्रटल विश्वास है। इसीलिए हमें श्रन्त में इस शुभ श्रौर कठिन कार्य में सफलता मिलने की श्राशा है।

लेकिन जिस दिन हमारी श्रात्मा इतनी निर्बल हो जाय कि श्रपने प्यारे श्रादर्श से डिग जावें, जान-बूझकर श्रसत्य के पक्षपाती बनने की बेशरमी करें, श्रौर उदारता, स्वतंत्रता श्रौर निष्पक्षता को छोड़ देने की भीरुता दिखावें, वह दिन हमारे जीवन का सबसे श्रभागा दिन होगा श्रौर हम चाहते हैं कि हमारी उस नैतिक-मृत्यु के साथ-ही-साथ हमारे जीवन का भी श्रन्त हो जाय।"

4

महाराणा प्रताप

"बलिदान—केवल बलिदान—चित्तौड़ की स्वतन्त्रता देवी बलिदान चाहती है। बादल उमड़े थे, बिजलियाँ कड़की थीं, और घोर अन्धकार छा गया था। अपवित्रता पवित्रता पर क़ब्ज़ा करना चाहती थी और अनाचार, आचार और व्यवहार की ईंट से ईंट बजा देने वाला था। हृदय काँप उठे थे। अशान्ति की लहरें बड़े ज़ोरों से शान्ति के किले के कंगूरों को एक-एक करके ढा रही थीं। सूर्यदेव भी अपने वंशजों को सदा अन्धकार में छोड़ देने के लिए तैयार थे। और चित्तौड़ की दीवारें भी ऊँचा सिर रखते हुए नीची नज़र कर चुकी थीं। बेढब बाजी लगी थी। पद्मिनी का दावा था। पाँसे उल्टे पड़ रहे थे। लेकिन रुख बदला। किसी की दया या कृपा से नहीं, और किसी की कमज़ोरी या नीचता से भी नहीं। रक्त की वर्षा हो गई। रक्त की प्यासी भूमि की प्यास मिट गई। चित्तौड़ की देवियों की राख का ढेर होते देखकर चित्तौड़ की स्वतन्त्रता देवी के हृदय की ताप मिट गई।

"फिर वही दृश्य और वही कार्य। समय के पहिये और घूमे, और चित्तौड़ की स्वतन्त्रता देवी ने, दया से या निर्दयता से, फिर अपना खप्पर हाथ में लिया। वीरों ने फिर उसे अपने अमूल्य खून से भर दिया। लेकिन जयमल और उसके वीर सिपाहियों का रक्त उसकी प्यास न बुझा सका। चित्तौड़ की देवियों ने अपने कोमल शरीरों को उसके लिए अग्नि के सुपुर्द किया, लेकिन उन्हें मुट्ठीभर ही खाक में पलट जाते हुए देखकर उसके हृदय की जलन और बढ़ी, और इतनी बढ़ी कि वह स्वयं चित्तौड़ से आगे बढ़ गई। चित्तौड़ खाली हुआ। अकबर का झंडा उस पर फहराने लगा। चित्तौड़ के दरो-दीवार ने आँसू बहाए। हाथ उठाकर उसने अपने कुल-संरक्षक सूर्य और गम्भीर आकाश की दुहाइयाँ दीं, लेकिन सूर्य से न किसी अग्नि की चिनगारी ने गिरकर इसलामी झंडे को जला दिया और न आकाश की गम्भीरता ही ने उसकी दासता की मात्रा को कम किया। चित्तौड़ की स्वतन्त्रता देवी चाहती है, बलिदान।

o o o

"उदयसिंह ! आगे बढ़ और अपने प्राण उसकी पवित्र वेदी पर कुरबान कर। लेकिन, अरे ! यह क्या ? देवी की प्रतिष्ठा करने के लिए उठकर आगे बढ़ने के बजाय तू पीठ देकर भागता है। याद रख, तेरी इस भीरुता का फल अच्छा न होगा, और आने वाली सन्तानें बड़ी ही शर्म से तेरा नाम लेंगी। सचमुच वह दिन चित्तौड़ के लिए बड़ा ही अभागा था, जिस दिन पन्ना ने तेरे लिए अपने बच्चे के पेट में कटारी घुसने दी। हत्यारे का शिकार तो तुझी को होना था, जिससे फिर चित्तौड़ की लाज का शिकार इस निर्लज्जता के साथ न करने पाता। चित्तौड़ ने स्वतंत्रता के दिन भोगे थे, और अब काल-चक्र तेरी आड़ लेकर उसे परतंत्रता की सुनहली ज़ंजीर से जकड़ने के लिए आगे बढ़ा है। हे भीरु, और पतित आत्मा ! चल आगे बढ़ और दूसरे के लिए स्थान छोड़। ईश्वर के लिए नहीं, देश और जाति के लिए नहीं, जिन्होंने तेरे पूर्वजों की आन-बान क़ायम रखने के लिए अपने को रण-कुण्ड में आहुति दे दी थी, वल्कि अपनी ही आत्मा की शान्ति के लिए। जा, इस संसार से उठ जा और उस महापुरुष के लिए स्थान खाली कर, जिसके और राणा संग्रामसिंह के बीच में, यदि तूने जन्म लेने का कष्ट न उठाया होता, तो चित्तौड़ को अपनी स्वाधीनता शत्रुओं के हाथ मिट्टी के मोल न दे देनी पड़ती।

"आओ, प्रताप ! आओ ! लेकिन पहले परीक्षा दो ! स्वतंत्रता देवी के पवित्र मन्दिर में उनके लिए स्थान नहीं, जिनके हृदय का स्थान छोटा है। कैसे परीक्षा दोगे ? अपने सिर को कटा कर ? नहीं, वल्कि अपने सिर को अपने धड़ पर क़ायम रख कर, बराबर उसके काटे जाने का कष्ट सहते हुए। महलों ही को छोड़कर नहीं, लेकिन इस भीष्म शपथ को लेकर, कि जब तक चित्तौड़ स्वाधीन नहीं होता, जब तक उसकी दीवारें सिर उठाकर संसार के साथ नज़र न मिला सकें, जब तक उन वीर पुरुषों और वीर स्त्रियों की आत्माएँ, जिनके खून से चित्तौड़ की भूमि सिंची हुई है अपने मनोवांछित काम को पूरा होते देखकर प्रसन्न न हो जाएँ, तब तक फूस पर सोएँगे, पत्तों पर खाएँगे और शारीरिक सुखों का स्वप्नों में भी ख्याल न करेंगे ! तपस्या का यहीं अन्त नहीं। जो सिर स्वतन्त्रता देवी के सामने झुका, याद रखो, उसे अधिकार नहीं कि संसार की किसी भी शक्ति के सामने झुके। तलवार की धार पर चलना है, लेकिन याद रखो, तुम्हारे मुँह से उफ भी न निकली, और तुम गए ! ऐसे जाओगे कि कहीं भी पता न लगेगा और अपने साथ ही कितनी ही आशाओं और देश के कितने ही शुभ गुणों को लेते जाओगे।

○ ○ ○

"....महान पुरुष-निःसन्देह महान पुरुष ! भारतीय इतिहास के किस रत्न में इतनी चमक है ? स्वतन्त्रता के लिए किसने इतनी कठिन परीक्षा दी ? जननी-

जन्मभूमि के लिए किसने इतनी तपस्या की ? देश-भक्त, लेकिन देश पर एहसान ज़माने वाला नहीं, पूरा राजा, लेकिन स्वेच्छाचारी नहीं। उसकी उदारता और दृढ़ता का सिक्का शत्रुओं तक ने माना। शत्रु से मिले भाई शक्तिसिंह पर उसकी दृढ़ता का जादू चल गया। अकबर का दरबारी पृथ्वीराज उसकी कीर्ति गाता था। भील उसके इशारे के बन्दे थे ! सरदार उस पर जानें न्योछावर करते थे। भामाशाह ने उसके पैरों पर सब कुछ रख दिया। विभीषण मानसिंह उससे नज़र नहीं मिला सकता था। अकबर उसका लोहा मानता था। खानखाना उसकी तारीफ में पद्य-रचना करना पुण्य-कार्य समझता था। जानवर भी उसे प्यार करते थे, और घोड़े चेतक ने उसके ऊपर अपनी जान न्योछावर कर दी। स्वतन्त्रता देवी को वह प्यारा था, और वह उसे प्यारी थी। चित्तौड़ का वह दुलारा था, और चित्तौड़ की भूमि उसे दुलारी थी। उदार इतना कि बेगमें पकड़ी गईं और मान सहित वापस भेज दी गईं। सेनापति फरीदखाँ ने क़सम खाई कि प्रताप के खून से मेरी तलवार नहाएगी, प्रताप ने सेनापति को पकड़कर छोड़ दिया।

* * *

"अन्तिम काल ! जान नहीं निकलती ! लेकिन, राणाजी, क्यों ? मुझे विश्वास नहीं कि मेरे बाद चित्तौड़ की स्वाधीनता क़ायम रह सके। क्यों ? राजकुमार अमरसिंह इतना दृढ़ नहीं। राजकुमार दृढ़ न सही, मेवाड़ के सोलह सरदार, राणाजी, क़सम खाते हैं कि हम अपने खून से स्वतन्त्रता के उस बीज को, जो तूने बोया, सींचेंगे। शान्ति हुई, और उसकी आत्मा शरीर से बाहर होकर स्वतन्त्रता देवी की गोद में जा विराजी। प्रताप! हमारे देश का प्रताप! हमारी जाति का प्रताप! दृढ़ता और उदारता का प्रताप ! तू नहीं है, केवल तेरा यश और कीर्ति है। जब तक यह देश है और जब तक संसार में दृढ़ता, उदारता, स्वतन्त्रता और तपस्या का आदर है, जब तक हम क्षुद्र प्राणी ही नहीं, सारा संसार तुझे आदर की दृष्टि से देखेगा। संसार के किसी भी देश में तू होता, तो तेरी पूजा होती और तेरे नाम पर लोग अपने को न्योछावर करते। अमेरिका में होता, तो वाशिंगटन और इब्राहिम लिंकन से तेरी किसी तरह कम पूजा न होती। इंग्लैण्ड में होता, तो वेलिंगटन और नेल्सन को तेरे सामने सिर झुकाना पड़ता। स्काटलैण्ड में वालेस और राबर्ट ब्रूस तेरे साथी होते। फ्रांस में जोन ऑफ आर्क तेरे टक्कर की गिनी जाती, और इटली तुझे मेज़िनी के मुकाबले में रखती। लेकिन हा ! हम भारतीय निर्बल आत्माओं के पास है ही क्या, जिससे हम तेरी पूजा करें, और तेरे नाम की पवित्रता को अनुभव करें। एक भारतीय युवक आँखों में आँसू भरे हुए नेत्रों सहित अपने हृदय को दबाता हुआ लज्जा के साथ, तेरी कीर्ति गा—नहीं, रो—नहीं, कह भर लेने के सिवा और कर ही क्या सकता है ?"

5

मानव स्वत्व

संसार की स्वाधीनता के विकास का इतिहास उस अमूल्य रक्त से लिखा हुआ है, जिसे संसार के भिन्न-भिन्न भाग के कर्त्तव्यशील वीर पुरुषों ने स्वत्व की रण-भूमि में करोड़ों मूक और निर्बल प्राणियों की जिह्वा में बोलने की शक्ति, और भुजाओं में स्वरक्षा का बल उत्पन्न करने के लिए निर्मोह होकर गिराया है। स्वाधीनता का पहला युद्ध घर में ही लड़ना पड़ता है। घर के सिर बड़े भूतों को उतार कर धरती पर पटकना पड़ता है। जो देश या जाति अपने स्वच्छाचारी व्यक्तियों की स्वेच्छाचारिता की जड़ पर कुठार चलाना अपना कर्त्तव्य समझती वह स्वेच्छाचारिता की कठोरता को भूलती जाएगी, और अंत में निरंकुशता का पाश उसे मानसिक शिथिलता के उस गहरे गड्ढे में ला फेंकेगा, जहाँ उसे श्रावण के अन्धे के समान हर ओर हरियाली ही हरियाली दीख पड़ेगी और जिसका अंधकार उसके नेत्रों को स्वाधीनता के प्रकाश की एक झलक को भी देखने में असमर्थ बना देगी। धन्य है वे देश और वे जातियाँ जिन्हें स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध घोर संग्राम करना पड़ा और जिन्हें इस प्रकार मनुष्य की स्वाधीनता के विकास के क्षितिज को अधिक बढ़ाने का अवसर प्राप्त हुआ। इंग्लैण्ड और उसके निवासी अंग्रेज़ भी उन देशों में और उन लोगों में से हैं, जिन्हें इस संग्राम में अपना रक्त अच्छी तरह बहाना पड़ा, और जिन्हें इस महान कार्य में कम सफलता भी नहीं हुई।

अंग्रेज़ जाति स्वाधीनता प्रिय है। अपनी स्वाधीनता के लिए उसे बड़े-बड़े संग्राम लड़ने पड़े। बाहरी संग्राम ही नहीं, भीतरी भी। बाहर के आक्रमण करने वालों ही का तलवारों से स्वागत नहीं करना पड़ा, घर के उन निरंकुश शासकों के भी होश ठिकाने करने पड़े जो प्रजा के सिर पर पैर रखकर चले। तेरहवीं शताब्दी का आरम्भ था। उस समय इंग्लैण्ड का राजा जॉन था। जॉन पूरा स्वेच्छाचारी और प्रजा को हर तरह से कष्ट देने वाला शासक था। अंत में उसकी निरंकुशता का पात्र एक दिन पूरा भर गया, और 1215 में जाति के कुछ प्रतिनिधियों ने इकट्ठा होकर जॉन को धर दबाया और उससे उस स्वाधीनता के पत्र पर हस्ताक्षर करवा

लिए, जो आज 'मेगना चार्टा' के नाम से प्रसिद्ध है। गला दबाये जाने पर उसने हस्ताक्षर तो कर दिए लेकिन वह उसके अनुसार काम करने को तनिक भी तैयार न था। उसने फ्रांस की ओर सहायता के लिए हाथ बढ़ाया परन्तु प्रजा उसके पीछे पड़ गई। अन्त में वह देश छोड़कर भागा और रास्ते में मर गया। 17वीं शताब्दी के मध्य में इंग्लैण्ड का राजा चार्ल्स प्रथम था। हज़रत को युद्धों का खर्च पूरा करने के लिए मनमानी टैक्सों के लगाने का बड़ा चस्का था। रुपये भी खूब उधार लिया करते थे। बार-बार पार्लियामेण्ट तोड़ा और बनाया भी करते थे। इसके समय की तीसरी पार्लियामेंट ने इसे उस समय रुपया दिया, जब उसने उससे 'पिटीशन ऑफ राइट' नाम के पत्र पर हस्ताक्षर करा लिये। लेकिन चार्ल्स का सुधार कुछ भी न हुआ। कभी जहाज पर नया टैक्स लगता और कभी किसी युद्ध के लिए रुपये की चिन्ता होती। चार्ल्स की धींगा-धींगी बहुत बढ़ गई। उसका हाथ पार्लियामेंट के मेम्बरों पर बे-तरह पड़ने लगा, और वह जिसे चाहता उसे कैद कर देता। प्रजा ने उसका खुल्लमखुल्ला विरोध किया। युद्ध हुए। वर्षों देश में अशान्ति रही। अन्त में, प्रजा की अदालत से चार्ल्स को फाँसी की सजा हुई और उसका सिर उसकी स्वेच्छाचारिता की वेदी की भेंट हुआ। चार्ल्स प्रथम के पुत्र चार्ल्स द्वितीय के समय में राजद्रोह के कितने ही षड्यन्त्र पकड़े गए, और इसका फल यह हुआ कि राज-विद्रोहियों को नाना प्रकार के कष्ट दिए जाते थे। इस अत्याचार की भी रोक हुई और 'हाबीस कार्पस' ऐक्ट पास हुआ।

लोगों के हृदय-मंदिर में स्वाधीनता की मूर्ति स्थापित करने वाले इन तीन क़ानूनों पर अंग्रेज जाति को गर्व है, और हमारे विचार से यह गर्व उचित है। हमें उस जाति के दोषों—अत्याचारों पर दृष्टि नहीं डालनी है। निर्दोष है ही कौन? अत्याचारों से भी किसी का दामन बिलकुल साफ होना असम्भव है। किन्तु वैसे अंग्रेज़ जाति ने संसार की अच्छी सेवा की है। और यह सेवा अधिकतर इसी कारण हो सकी कि उसके व्यक्तियों के हृदयों में स्वाधीनता का गर्व और प्रेम है। इसी प्रेम और गर्व की प्रेरणा से समय-समय पर उन्होंने अपनी स्वाधीनता में भाग लेने के लिए संसार के अगणित प्राणियों को निमन्त्रण दिया है। हाल ही में पार्लियामेंट के हाउस आफ कामंस से एक प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ है कि अंग्रेज़ी साम्राज्य भर की प्रजा को उक्त तीनों क़ानूनों के अनुसार लाभ पहुँचना चाहिए। कौन कह सकता है कि प्रस्ताव में उदारता कूट-कूटकर नहीं भरी है? कौन कह सकता है कि स्वाधीनता के संग्रामों के लड़ने वाले लेंगटन, हेम्पडन आदि की सन्तानों में स्वाधीनता के प्रेम का रक्त ठंडा पड़ गया है? कौन कह सकता है कि वे अपनी प्यारी स्वाधीनता के सुख को नीचातिनीच स्वार्थ के वश होकर अपने ही

तक रखना चाहते हैं ?

परन्तु हमें दूर से सुहावना शब्द निकालने वाले ढोल के अन्दर पोल ही मालूम होती है। विश्वास की कमी नहीं है, परन्तु केवल लड्डुओं के खाने की कल्पना भूख को दूर नहीं कर सकती। हाउस आफ कामंस के इस प्रस्ताव के अनुसार अंग्रेजी राज्य के अन्य प्रस्ताव के अनुसार अंग्रेज़ी राज्य अन्य देशों में जो चाहे सो किया जाय, लेकिन हमारे देश की, जिसके कारण अंग्रेज़ी साम्राज्य के नाम से पुकारा जाता है, दशा में कुछ भी परिवर्तन नहीं होना है। इंग्लैंड के उक्त तीनों क़ानूनों की बात ही जाने दीजिए, हम पूछते हैं कि महारानी विक्टोरिया की घोषणा के अनुसार ही क्यों नहीं काम किया जाता ? महारानी विक्टोरिया ने उस निरंकुशता के साथ तो वह घोषणा की न थी, जिसके अभ्यासी उनके पूर्वज जॉन और चार्ल्स थे ? उन्होंने जो कुछ कहा था, वह सब पार्लियामेंट की अनुमति से जिसका वही हाउस ऑफ कामंस एक बड़ा भाग है, जो आज इस प्रस्ताव को पास कर रहा है। भारतीय विदेशों में अंग्रेज़ी झंडे तले धक्के खाते फिरते हैं, देश में तरह-तरह के गलाघोंटू क़ानून पास होते जाते हैं, जिससे प्रजा की स्वाधीनता दिन ब दिन कम होती जाती है, देश वालों को अपने ही देश के उच्च पद नहीं मिलते, गोरे और काले का रंग-भेद दिन-ब-दिन बढ़ता जाता है, और शासक गोरे रंग का पक्ष लेकर अन्याय के गढ़े में गिर रहे हैं। संसार से गुलामी उठ गई है, लेकिन हमारे शासकों की कृपा से हमारे लिए वह शर्त बँधे कुलियों की भरती के रूप में मौजूद है, 1818 का वह निरंकुश क़ानून मौजूद है जिसके अनुसार कितने ही सज्जन बिना कारण देश से निकाले गए, और अभी न मालूम कितने निकाले जाएँगे,—और ये सब अत्याचार और अन्याय उस हालत में हो रहे हैं, जब हमें महारानी का स्वत्व-पत्र प्राप्त है और जिसके अनुसार हम संसार-भर की अंग्रेजी प्रजा के बराबर हैं, हमारे देश में काले-गोरे का भेद न होना चाहिए और हमें उच्च से उच्च पद मिलने चाहिए।

पर, स्वत्व सहज ही प्राप्त नहीं होते। संसार में उनके लिए नदियों रक्त बहा है। स्वत्व की वेदी पर सिर चढ़ाने का साहस उन्हीं को हुआ, जिनमें कर्त्तव्य का भाव था, जिन्हें निरंकुशता से घृणा थी, जो उसका मूलोच्छेदन करना अपना धर्म समझते थे और जिनमें इस काम के लिए प्राणों का तनिक भी मोह न था। उनकी तत्परता के सामने संसार को उन्हें रास्ता देना पड़ा। वे मनुष्य समझे गए और उन्हें मानव स्वत्व प्राप्त हुए। परन्तु जिन्होंने रक्त की जगह पसीना भी न बहाया हो, जो स्वयं निरंकुश हों और जिन्होंने करोड़ों भाई-बहिनों को गुलामी की बेड़ी से जकड़ रखा हो, उन्हें हाथ-पैर हिलाए और ऊँचे उठे बिना आशा भी न रखनी

चाहिए कि संसार उन्हें मनुष्य भी समझेगा। भारतीयों के लिए पेरिया और नामशूद्र घृणा के पात्र हैं, पर संसार के पेरिया और नामशूद्र भारतीय स्वयं ही हैं। मानव स्वत्व मिला नहीं करते, उन्हें लेना पड़ता है। बल चाहिए—बल। संसार की कोई भी शक्ति ऐसी नहीं—इंग्लैंड के उदार हाउस ग्राफ कामन्स से लेकर स्वाधीनता की भूमि में आकर पराधीनता के सूर्य के ताप को अपने हृदय की पराधीनता का सारा रस भेंट दे देने वाले निरंकुश अंग्रेज़ शासक तक जो हृदय में बल रखने वाले वेग को आगे बढ़ने से रोक सके, और उसे मानव स्वत्व की ड्योढ़ी महारानी की घोषणा या विलायती क़ानूनों की नदी तक न पहुँचने दे।

6

जातीय सुधार

सुधारकों की भूल

जिस देश में सुधार की आवश्यकता नहीं, वह इस परिवर्तनशील संसार का भाग नहीं हो सकता। यहाँ तो सदा पुरानी इमारतों को नमस्कार किया जाता है और नए महल खड़े होते हैं। स्थिति के अनुसार रूप में परिवर्तन करना पड़ता है। जिनमें परिस्थिति के अनुसार बनने का गुण नहीं रहा, वे बिगड़ गए। उनका नामोनिशान मिट गया और इतिहास के पन्ने या उनकी शानदार इमारत की बची-खुची ठीकरी संसार को कभी-कभी उनके अस्तित्व की याद दिला देती है। हमारे देश में सुधार की बड़ी भारी आवश्यकता है, केवल इसीलिए नहीं कि वह संसार का एक भाग है, किन्तु इसलिए भी कि उसे आगे बढ़ने वाले संसार का भाग बना रहना है। यद्यपि हमारा देश संसार के उन देशों में से है, जो पुरानी लीक ही पीटते रहना अधिक अच्छा समझते हैं तो भी परिस्थितिके अनुसार अपनी करवट बदलने के भाव का यह कुछ अस्तित्व अवश्य है। देश में एक दल है, जो देश की भलाई के नाम पर आगे बढ़-सा रहा है। उसका यह काम देखने में अच्छा है, सुनने में भला है, परन्तु विचार की कसौटी पर हम उसे अधिक दूरदर्शिता और अधिक दृढ़ता से भरा हुआ नहीं पाते।

जातीय सुधार का कोई प्रश्न उठाइए। देश में भिक्षुकों की संख्या कैसे घटाई जाय, बालकों को किस तरह साधू न बनने दिया जाय, देहात में सफाई का भाव किस तरह उत्पन्न कराया जाय, किसानों की दशा किस तरह सुधारी जाय, स्त्रियों को किस भाँति उठाया जाय—छोटे-से-छोटे प्रश्न से लेकर बड़े-से-बड़े प्रश्न को उठाइए और उस पर देश के सुधारक दल के अर्ध-शिक्षित आदमी से लेकर कुर्सी-तोड़ सुशिक्षित नेता तक घूम-फिरकर एक ही ठिकाने पहुँच जाएँगे। वे कहेंगे कि एक क़ानून बना दिया जाय और यह बात उस क़ानून से दूर हो जाएगी। इन बातों पर विचार करने का तनिक भी कष्ट नहीं उठाते कि पहले तो क़ानून बनवाने में कठिनाइयाँ हैं, फिर क्या उस क़ानून से वह बुराई दूर हो ही जाएगी। और फिर

क्या उस क़ानून में दूसरी बुराई न उठ खड़ी होगी ? रोग के ऊपरी इलाज का फल यह होता है कि वह रोग तो दब जाता है, परन्तु उसका विष दूसरे रूप में प्रकट होकर मनुष्य को तंग करता है। हमारे सुधारक अधिक ग़लती पर न भी हों तो भी देश की स्थिति और उसके शासकों की अवस्था पर विचार करते हुए इसमें संदेह भी नहीं कि उनका हर बात में 'क़ानून' की शरण ढूंढ़ना अच्छा तो नहीं है। यह कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव तक है, कि हम इस बात को भूल जाएँ कि हमारे शासक देशी नहीं है और वे हमारी बातों को अच्छी तरह नहीं समझ सकते। उस समय तक जब तक देश का शासन देशवालों ही के हाथ में नहीं आ जाता, या वर्तमान शासन का रूप इतना मृदुल नहीं हो जाता कि उसे हम जातीय शासन के नाम से पुकार सकें, तब तक जातीय सुधार के काम में क़ानून का सब रूपों में हस्तक्षेप अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। हमारे इन शब्दों का यह मतलब नहीं कि जातीय सुधार में क़ानून की सहायता की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है परन्तु बहुत सोच-विचार के पश्चात्। जातीय सुधार के काम में शासकों के हस्तक्षेप की प्रायः उस समय तक आवश्यकता नहीं, जब तक उनका और जाति का स्वार्थ एक नहीं हो जाता।

सुधारकों की दूसरी भूल इससे भी भयंकर है। वे सुधार नहीं कर रहे नक़ल कर रहे हैं। उनके कामों और उनकी बातों से कुछ भी पता नहीं चलता कि वे नक़ल करना भी कभी छोड़ेंगे या नहीं ? पराधीनता की घटा देश पर छाई है हृदय के प्रकाश तक पर उसने अंधेरा कर दिया है। सुशिक्षित-सुधारक दल इस मानसिक अंधकार या मानसिक पराधीनता का प्रकाशमान उदाहरण है। कोई यह नहीं कहता कि तुम आधुनिक सभ्यता के उत्तम फलों को न चखो। परन्तु आधुनिक सभ्यता के केन्द्रों में आग लग रही है और उस पर विचार करना और उसके बुरे असर से अपनी रक्षा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। ज़बर्दस्त लहर के सामने कमजोर पौदों की क्या हकीकत जो अपने पैरों पर खड़े रहें। भयंकर तूफान ने बड़े-बड़े वृक्षों के सिर नीचे कर दिए तो पराधीनता के वायुमंडल में पलने वालों वृक्षों की क्या मजाल कि जो सीधे तने रहें ? जिन सुधारकों में इतना भी चरित्र-बल नहीं कि वे उसकी उज्ज्वलता का सिक्का अपने देश वालों के हृदयों पर जमा सकें, जिनमें सत्य के लिए लोगों का अत्याचार सहने की शक्ति नहीं, जिनमें इतना प्रेम का भाव नहीं कि वे उसके बल से अपने कट्टर से कट्टर शत्रु को जीत लें, वे एक क्षण भी इस बढ़ती हुई लहर के सामने कैसे टिक सकते हैं ? जिसने बिलासिता में न बहकर संसार की सेवा का दृढ़ प्रण किया तो वही आत्मा आधुनिक सभ्यता के उस बुरे प्रभाव का

मुकाबला कर सकेगी। जो प्रेम और उपकार, कर्तव्यता और उदारता के उच्च भावों को सख्त धक्का पहुँचा, बात-बात में क़ानून की शरण ढूँढ़ने तथा हर बात में बिना सोचे-विचारे नक़ल करने वाले लोगों से संसार का विशेष उपकार नहीं हो सकता। भले ही वे अपने को सुधारक कहें, परन्तु यथार्थ में वे केवल स्वरचित 'सुधार के ठेकेदार' हैं और उनमें सबसे पहले सुधार होने की आवश्यकता है।

7

राष्ट्र की आशा

मेज़िनी का आदेश

"हम में से प्रत्येक का कर्त्तव्य है कि वह अपनी आत्मा को एक देवालय के समान पवित्र बनावे। उससे अहंकार को दूर भगा दे, और सच्चे धार्मिक भाव के साथ निज जीवन के महान् प्रश्न (उद्देश्य) को अध्ययन द्वारा हल करने का प्रयत्न करे। फिर इस बात की खोज करे कि जिन स्त्री-पुरुषों के बीच वह रहता है उनकी सबसे प्रबल तथा सबसे भारी आवश्यकता क्या है? इसके पश्चात् अपनी व्यक्तिगत शक्तियों तथा अपनी योग्यता की परीक्षा करे, और फिर दृढ़ संकल्प के साथ तथा बिना विश्राम किये निज शक्तियों तथा योग्यता का उस आवश्यकता के पूरा करने में प्रयोग करे।"

इटली देश के सुप्रसिद्ध देशभक्त जौज़फ मेज़िनी के पूर्वोक्त वाक्यों का स्मरण कराते हुए आज हम विजयादशमी के इस शुभ अवसर पर 'प्रताब' के नवयुवक पाठकों को उनके कर्त्तव्य-पथ की एक झलक दिखलाने का साहस करते हैं।

एशिया का प्राचीन गौरव

पाठक! तुममें से बहुतों को पता होगा कि संसार के इतिहास में वह भी एक समय था जब भारत तथा एशिया महाद्वीप की अन्य विविध जातियाँ न केवल धर्मक्षेत्र में ही वरन् दर्शन, विज्ञान, शिल्प, वाणिज्य तथा राजशासन में भी समस्त संसार की अग्रगामी थीं। आज से सहस्रों वर्ष पूर्व जबकि वर्तमान इंग्लैंड तथा जर्मनी निवासियों के पूर्व पुरुष अन्य असभ्य जातियों के समान पहाड़ी कन्दराओं तथा जंगल के गड्ढों में निवास करते थे और वस्त्रों के स्थान पर वृक्षों के पत्तों और छालों से अपना शरीर ढकते थे, भारत के रहने वाले न केवल सुन्दर से सुन्दर प्रासाद तथा उत्तम से उत्तम वस्त्र ही बना सकते थे, वरन् भाषा, दर्शन, गणित, वैद्यक तथा ज्योतिष में भी उन्नति के एक अत्युच्च शिखर तक पहुँच चुके थे। वह भी एक दिन था जबकि भारत के वैद्य तथा शिल्पज्ञ अत्यन्त आदर के साथ

ग्रीस तथा रोम में बुलाये जाते थे और वहाँ के निवासी उनकी योग्यता को देखकर चकित रह जाते थे। इस देश की कारीगरी तथा व्यापार के सम्बन्ध में आज से प्रायः 2000 वर्ष पूर्व का एक रोमन इतिहास लेखक प्लीनी (Pliny) हमको बतलाता है कि उन दिनों प्रतिवर्ष कम से कम 55 करोड़ सेस्टर अर्थात् लगभग 7 करोड़ रुपये का बना हुआ माल भारत से जाकर अकेले रोम में बिकता था। अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं, आज से सौ-डेढ़ सौ वर्ष पूर्व तक भी ढाका की मलमल तथा मुर्शिदाबाद के रेशमी कपड़े लन्दन तथा पेरिस में जाकर बिकते, और वहाँ बड़े शौक के साथ पहने जाते थे। इसके अतिरिक्त यदि राजनैतिक सत्ता की ओर दृष्टि डाली जाय तो भी स्वीकार करना पड़ता है कि किसी समय में जल तथा स्थल दोनों पर भारत-निवासियों का असंदिग्ध प्रभुत्व था। यदि अधिक प्राचीन भारत के इतिहास को छोड़ दें तो भी अभी कल की बात है कि मरहठों की जल सेना उस समय के स्पेन-निवासियों तथा पुर्तगाल-निवासियों की जल-सेनाओं से कहीं अधिक प्रबल थी, और स्मरण रहे कि स्पेन तथा पुर्तगाल के निवासी उन दिनों यूरोप की विविध जातियों में सबसे अधिक उन्नत माने जाते थे। यूरोप की विविध जातियाँ 15वीं शताब्दी के अन्त से यहाँ आने लगी थीं किन्तु उन गिरे हुए दिनों में भी जल तथा स्थल दोनों पर भारत का बल इतना बढ़ा हुआ था कि लगभग 250 वर्ष तक इन विदेशियों में से किसी को भारत में किसी प्रकार की राजनैतिक आकांक्षा प्रकट करने का साहस न हो सका। सच तो यह है कि जिस समय तक इस अभागी भूमि में फूट की खेती खूब पककर तैयार नहीं हो गई, उस समय तक किसी भी विदेशी जाति को भारत के राजनैतिक जीवन में हस्तक्षेप करने का साहस होना असम्भव था। अस्तु! भारत के समान एशिया के अन्य बड़े-बड़े देश भी इसी प्रकार किसी समय उन्नति के शिखर तक पहुँच चुके हैं। इतिहास हमें स्पष्ट बतलाता है कि अरब-निवासियों ने किसी समय यूनान के विद्वानों को दर्शन की शिक्षा दी थी और चीनवालों ने आज से सहस्रों वर्ष पूर्व ज्योतिष विद्या को परिपक्वता तक पहुँचाया था। चीनवाले ही थे जिनसे यूरोप के नाविकों ने पहले-पहल कम्पास का प्रयोग सीखा, और जिन्होंने संसार को सबसे पहले टाइप द्वारा पुस्तकों का छापना सिखलाया।

एशिया का पतन तथा पाश्चात्य जातियों का उत्थान

किन्तु धीरे-धीरे आपस की फूट विशेषकर यहाँ के शासकों तथा शासक-कुलों में पारस्परिक ईर्ष्या, ऊँच-नीच के भेद, जन-समूह में राजनैतिक ज्ञान के अभाव, अर्थ संचय और वैज्ञानिक उन्नति की ओर से उदासीनता तथा इन सब से बढ़कर

अंध-स्थितिपालकता ने एक-एक कर पूर्वी जातियों को गिराना आरम्भ कर दिया, और दूसरी ओर साहस, सार्वजनिक-समता, राष्ट्रीय एक्य, वैज्ञानिक उन्नति, अर्वाचीन शिक्षा तथा परिवर्तनशीलता ने पाश्चात्य जातियों को उभारना। परिणाम यह हुआ कि आज से सहस्रों वर्ष पूर्व न केवल एशिया की उन्नति ही रुक गई वरन् गत शताब्दी के आरम्भ तक प्रायः समस्त एशियायी जातियाँ यूरोप वालों के चरणों पर आ गिरीं। यहाँ तक कि लालसिंह, तेजसिंह तथा मीरकासिम जैसे देश-घातकों ने भारत के भाग्य का निपटारा विदेशियों के हाथों में सौंप दिया। चीन का समृद्ध साम्राज्य विविध पाश्चात्य जातियों की दृष्टि में सहज शिकार होने लगा। फारिस, रूस तथा इंगलिस्तान दोनों के पंजों में काँपने लगा और 19वीं शताब्दी के मध्य का इतिहास हमको बतलाता है कि वह जापान भी, जो इस समय संसार की सबसे प्रबल शक्तियों में गिना जाता है, केवल 50 वर्ष पूर्व प्रबल यूरोपियन जातियों के सम्मुख अपनी स्वतंत्रता को मानो हथेली पर लिये हुए था।

भारत की अवनति

हम इस विषय को अधिक बिस्तार न देकर इस स्थान पर केवल यह दिखलाना चाहते हैं कि इस एशियायी अधःपतन के समय अवनति के सबसे नीचे गढ़े में गिरना भी उसी देश के भाग्य में बदा था, जो इससे पूर्व समस्त एशियायी देशों में उन्नति के सर्वोच्च शिखर तक पहुँच चुका था। पाठक! यदि भारत के प्राचीन गौरव तथा उसके वर्तमान अधःपतन की ओर एकसाथ दृष्टि डाली जावे, तो उसके भेद के सामने आकाश-पाताल का भेद भी तुच्छ प्रतीत होता है और वह दृश्य भी इतना हृदय-विदारक है कि कोई सहृदय अन्य देश-निवासी भी देखकर बिना आँसू बहाए नहीं रह सकता। यदि प्राचीन भारत को समस्त संसार के गुरु होने का सौभाग्य प्राप्त था तो अर्वाचीन भारत को एशियायी जातियों में सबसे पूर्व यूरोप के चरण चूमने के लिए सिर झुकाना पड़ा। जिस देश के राजा किसी समय चक्रवर्ती कहलाते थे, हाँ! आज उसी देश के रहनेवाले अपने ही घर में परतन्त्र हैं। निस्सन्देह राजनैतिक पराधीनता किसी जाति में उस समय तक घर नहीं करती जिस समय तक वह जाति अपने चरित्र से न गिर गई हो। यदि भारत की भूमि जयचन्द, मीर कासिम, लालसिंह जैसे देशघातक उत्पन्न करने में उपजाऊ न होती तो आज इस देश की यह दशा होना असम्भव था। तथापि इसमें भी सन्देह नहीं कि अर्वाचीन समय में राजनैतिक पराधीनता ही संसार के अनेक देशों के समस्त दुखों का मूल है। इस उत्तरोत्तर अवनति तथा पराधीनता का परिणाम यह हुआ कि वह देश जो किसी समय सभ्यता का मूल स्रोत माना जाता था, आज

कई पीढ़ियों से नहीं, बल्कि कई शताब्दियों से असभ्य लोगों का देश गिना जाने लगा। वह भारत जो किसी समय संसार का सबसे अधिक धनसम्पन्न देश समझा जाता था, 19वीं शताब्दी के पहले ही संसार का सबसे अधिक निर्धन देश बन गया। जिस देश में मुसलमानी राज्य के अन्त के दिनों तक मनमाना अन्न होता था और दूध तथा घी की नदियाँ बहती थीं वहाँ आज $\frac{1}{3}$ आबादी अर्थात् 10 कोटि से अधिक मनुष्य तनुधारी ऐसे हैं, जिन्हें 24 घंटे में एक समय रूखी रोटी मिलना भी कठिन है! वह देश जिसे वैद्यक, गणित, भूगोल तथा ज्योतिष-जैसी विद्याओं को जन्म देने और उपनिषद् रचने का अभिमान था, आज अज्ञान के अन्धकार में इतना लिपटा हुआ है कि संसार के किसी भी देश में फीसदी अशिक्षितों की संख्या इतनी अधिक नहीं मिलती, जितनी भारत में, लक्ष्मी आज लगभग एक शताब्दी से हमारा साथ छोड़ ही चुकी, किन्तु सरस्वती भी हमें इतनी घृणा की दृष्टि से देखती है कि आज सौ पीछे 94 भारतवासी ऐसे हैं जिन्हें संसार की किसी एक भाषा में अपना नाम तक लिखना नहीं आता। जिस देश ने किसी समय राम-जैसे वीर, कपिल जैसे मस्तिष्कधारी, तथा बुद्ध-जैसे आचार्य उत्पन्न किये वह आज कायरता, अज्ञानता तथा अनेक प्रकार के असंख्य मूढ़-विश्वासों का घर बना हुआ है!

पाठक! हमें दुख होता है कि इस विजयादशमी के शुभ दिन हमारे सम्मुख तुम्हारी विजयों की गाथा गाने के स्थान पर हम तुम्हारी पराजयों ही का रोना रोने लगे हैं। किन्तु हम विवश हैं। हमारा भरा हुआ हृदय हमें इस बात की इजाज़त नहीं देता कि हम तुम्हारे और तुम्हारे देश के वर्तमान जीवन के साथ किसी प्रकार की भी विजय का संपर्क घटा सकें। हमारा हृदय फटता है यह देखकर कि विदेशीय वाणिज्य के इन्द्रजाल द्वारा हमारी भूमि से उत्पन्न हुआ धन दूसरे देशों के कारीगरों तथा व्यापारियों को करोड़पति तथा अरबपति बना देवे और हमारे बालक तथा बालिकाएँ प्रतिवर्ष के दुष्काल में एक-एक दाने के लिए तरसते फिरें! हमें रोना आता है यह देखकर कि अज्ञान तथा अशिक्षा का हमारे देश में सबसे अधिक राज्य हो और इस पर भी हमारे नेता अपने देश के बच्चों को शिक्षा देने तक के कार्य में स्वतन्त्र न हों। हम अपनी इस दुर्गति को विस्तारपूर्वक वर्णन करने की आवश्यकता नहीं समझते और न इसके लिए समय ही है किन्तु यह स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि वीर शिरोमणि श्रीराम की लंका-विजय का स्मारक यह शुभ दिन भी हमारे दुखित नेत्रों को अधिक आर्द्र किये बिना नहीं रह सकता। इसके अतिरिक्त हम यह भी अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि अवसर-अवसर पर निज देशवासियों को राष्ट्र की वास्तविक स्थिति का बोध कराते रहें जिससे कि हमारे कर्त्तव्यपरायण नवयुवक

किसी भी झूठे अथवा व्यक्तिगत सुख में पड़कर अपने वास्तविक धर्म से विमुख न होने पावें, और निज देश की वास्तविक स्थिति को समझते हुए उसकी दशा सुधारने में तत्पर रहें। हम नहीं समझ सकते कि देश की वर्तमान स्थिति में किसी भी सच्चे भारतवासी को एक क्षण-भर के लिए आनन्द अथवा सुख अनुभव करने का अवसर किस प्रकार मिल सकता है? जो हो, हमें इस अवस्था में सबसे अधिक शोक केवल इस बात का है कि इस अधोगति के होते हुए भी हमारे देश के नवयुवकों की एक बहुत बड़ी संख्या अभी तक अपने कर्त्तव्य-पालन से सर्वथा विमुख है।

आशा की छटक

तथापि निज मातृभूमि की वर्तमान दुर्गति को पूरी तरह समझते हुए भी हम कदापि हताश नहीं। हमें स्पष्ट दिखाई देता है कि रूस-जापान युद्ध तथा सुप्रसिद्ध कर्जनी बंगभंग के समय से समस्त भारत में एक नये जीवन का संचार हुआ है। हम गत नौ वर्ष से निज देश के राष्ट्रीय जीवन तथा उसकी उन्नति और अवनति की विविध लहरों की ओर ध्यानपूर्वक निहार रहे हैं, और हमें निज राष्ट्रीय दुर्गति के भयंकर मेघों पर बारम्बार, नहीं-नहीं, लगातार आशारूपी बिजली की दमक दिखाई देती है। प्रिय पाठक! सच तो यह है कि हमारे हृदय-मंदिर का दीपक इसी आशा पर टिमटिमाता है कि एक दिन इस फुलवाड़ी में भी फिर से वसन्त का आगमन होगा, और शीघ्र ही इस देश के कर्त्तव्य-परायण युवक उन्नत देशों का अनुसरण और धीरे-धीरे अर्वाचीन सभ्यता के विविध अंगों में उन्नति करते हुए अपनी माता के समस्त दुखों को दूर करेंगे। हमें अपने युवकों के परिश्रम तथा उनकी निस्वार्थता पर भरोसा है और हमारे हृदय में इस बात का अटल विश्वास है कि एक दिन हमारी आशा अवश्य पूरी होगी।

एशिया की जागृति

वास्तव में जिस एशियायी अधःपतन की ओर हम ऊपर संकेत कर आए हैं, उसकी लहर बहुत दिन हुए मुड़ चुकी। एशिया की विविध जातियों में सबसे पहले वीर जापानियों ने इस लहर के मुख को मोड़ने तथा एशिया के विगलित शरीर पर स्वतन्त्र जापान रूपी एक झूमर लटकाने का बीड़ा उठाया। हम समझते हैं कि इस सम्बन्ध में गत 50 वर्ष का जापानीय इतिहास प्रत्येक देशभक्त एशिया-निवासी के लिए चाहे वह किसी भी देश का हो ध्यानपूर्वक पढ़ने योग्य है। इसके पश्चात् चीन ने जापान का अनुसरण करना आरम्भ किया और यद्यपि अभी तक जापान के

समान चीन संसार के सर्व-प्रबल देशों में नहीं गिना जाता तथापि इसमें सन्देह नहीं कि चीन का भविष्य अब असंदिग्ध है। भारत की मृतप्राय अस्थियों में भी नये जीवन का संचार हुआ है। भारत में भी राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। यद्यपि इस नई लहर को अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ा, यद्यपि हमारे अनेक अदूरदर्शी शासकों ने भ्रम में पड़कर नई लहर और राजद्रोह को एक तक समझ डाला, और इसी से सरकार ने उस दमन-नीति का प्रयोग किया जिसकी भयंकर लपेट में पड़कर अनेक ऐसे निर्दोष सज्जनों को बड़े-बड़े कष्ट सहने पड़े जो निज मातृभूमि के सच्चे भक्त होने के साथ-साथ मनुष्य जाति के सच्चे प्रेमी थे, तथापि जिस किसी के नेत्र खुले हुए हैं वह इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं कर सकता कि इन सात वर्षों के भीतर ही राष्ट्रीयता ने भारतवासियों के हृदय पर अपना अखण्ड शासन जमा दिया है। आज प्रत्येक शिक्षित भारतवासी चाहे वह नैतिक निर्बलता के कारण अपने कर्त्तव्य पालन से विमुख हो तथापि इस बात को भली प्रकार समझता है कि भारत में एक स्वतन्त्र, समृद्ध तथा सुसंगठित राष्ट्र की रचना करना उसके जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है।

हमारे शासक भी धीरे-धीरे अपने भ्रम तथा राष्ट्रीय लहर की अदम्यता को समझते जाते हैं और गत नौ वर्ष का इतिहास हमें इस सत्यता का उपदेश देता है कि भारत की अधोगति अब सदा के लिए रुक चुकी है और यद्यपि चाल कितनी भी मन्द क्यों न हो, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि यह देश धीरे-धीरे अवनति से हटकर उन्नति की ओर आगे पग बढ़ा रहा है।

भारत में उन्नति की मन्द-गति

इस मन्द-गति का मुख्य काररण केवल यह है कि जैसा हम ऊपर कह आए हैं, हमारे देश के अधिकांश युवक अभी तक अपने कर्त्तव्य-पालन से विमुख हैं। हमारे नवयुवक पाठको ! हम तुम्हारे पुरुषार्थ की निन्दा नहीं करते। किन्तु तुम्हें यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि भविष्य के लिए राष्ट्र की आशा का निर्भर केवल मात्र तुम्हारे ही ऊपर है। स्मरण रखो कि संसार के किसी भी नए आन्दोलन में वृद्धजनों, धनाढ्यों तथा उच्च पदवी-धारियों का भाग अत्यन्त कम होता है। जिस प्रकार अधिक आयु प्रायः मनुष्य को कायर बना देती है, उसी प्रकार अधिक धन तथा उच्च पदवियाँ मनुष्य को स्वार्थी बना देती हैं। संसार के समस्त उन्नतिशील आन्दोलनों का इतिहास हमें स्पष्ट बतलाता है कि यदि उन आन्दोलनों में से देश के नवयुवकों का भाग उड़ा दिया जाता तो उनमें से किसी भी आन्दोलन का फलीभूत होना सर्वथा असम्भव था। गत नौ वर्ष के भीतर हमारे जिन नवयुवकों

ने देश की उन्नति में भाग लिया है उनकी हम हृदय से प्रशंसा करते हैं। किन्तु उनकी संख्या अत्यन्त तुच्छ तथा असंतोषदायक है और हमें दुख के साथ कहना पड़ता है कि यदि हमारे अधिकांश युवकों में अब भी राष्ट्र की ओर से इसी प्रकार उदासीनता बनी रही तो परिणाम अत्यन्त भयंकर होगा। हमारे देश के नवयुवको! हम तुमसे प्रश्न करते हैं कि तुममें से कितने हैं जिन्होंने अपनी साधारण शिक्षा के साथ-साथ निज देश की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा हर प्रकार की स्थिति के अध्ययन करने का संकल्प किया हो? तुममें से कितने हैं जिन्हें इस बात का पता हो कि तुम्हारे करोड़ों देशवासियों को पेट-भर अन्न तथा अपना अंग ढकने को वस्त्र तक प्राप्त नहीं। तुममें से कितने हैं जिन्हें इस बात का पता हो कि तुम्हारे देश के सहस्रों ग्रामों में प्लेग, हैज़ा तथा मलेरिया ने सदा के लिए घर बना रखा है? तुममें से कितने हैं जिन्हें इस बात का पता हो कि आए दिन के दुष्कालों में इस उर्वराभूमि के सहस्रों तथा लाखों निर्धन किसानों को प्रतिवर्ष अपने बच्चों का पेट पालने के लिए अपने पशु तक बधिक के हाथ बेचने पड़ते हैं? तुममें से कितने हैं, जिन्होंने इस बात की खोज की हो कि इस अत्यन्त उर्वरा-भूमि में भी आए दिन दुष्काल क्यों पड़ते हैं? तुममें से कितने हैं जिन्हें इस बात का बोध हो कि अर्वाचीन उन्नति के समय में, जबकि इंग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी तथा जापान-जैसे देशों में 99 फीसदी तक पुरुष तथा स्त्रियाँ शिक्षित हैं, इस देश में 94 फीसदी पुरुष तथा स्त्रियाँ ऐसे हैं जो शिक्षा रूपी सूर्य के उजियाले से कोसों दूर हैं? तुममें से कितने हैं जिन्होंने इस भयंकर दारिद्रय तथा अज्ञानान्धकार को यथाशक्ति दूर करने का बीड़ा उठाया हो? कितने हैं जिन्हें इस बात पर दर्द आता हो कि आज तुममें से ७ करोड़ से अधिक अछूत कहलाने वाले भारतवासी तुम्हारे शताब्दियों के घोर अन्याय के कारण घृणित पशुओं के समान अपने दिन बिताकर तुम्हारे राष्ट्र संगठन के कार्य को और भी अधिक दुष्कर बना रहे हैं? तुममें से कितने हैं जिन्हें इस बात की फिक्र हो कि तुम्हारे घरों की माताएँ और स्त्रियाँ शिक्षा की अत्यन्त न्यूनता के कारण तुम्हारे हर प्रकार के मूढ़-विश्वासों तथा अंध-स्थितिपालन को देश में चिरस्थायी बना रही हैं? कितने हैं जिन्हें यह ज्ञान हो कि आज इस देश की लाखों ही बाल-विधवाएँ अपनी पाशविक प्रवृत्तियों में फँसकर तुम्हारे नाम को कलंकित तथा तुम्हारे राष्ट्रीय चरित्र को पतित बना रही हैं?

भारत के नवयुवकों का कर्त्तव्य

भारत के युवको! अब भी समय है कि तुम चेतो और अपने कर्त्तव्य को समझो। इस बात को सदा के लिए अपने हृदयों पर अंकित कर लो कि इस देश के

भविष्य का निपटारा तुम्हारे ही हाथों में है। दुखित माता अपने समस्त दुःखों को दूर करने के लिए तुम्हारे ही मुखड़ों की ओर निहार रही है। तुम्हारे ही कंधों पर राष्ट्र की रचना का समस्त भार है। सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि तुम उस कार्य की महानता, गम्भीरता तथा पवित्रता को अनुभव करो, जिसको पूरा करने का भार तुम्हारे ऊपर है। संक्षेप से तुम्हारा कार्य भारत में एक 'राष्ट्र की रचना करना' है। जिन चार शब्दों को हमने चिह्नों के अन्दर बन्द किया है, उस पर एक लेख नहीं, अगणित लेख तथा अगणित पुस्तकें रची जा सकती हैं। इसलिए आवश्यक है कि तुम पहले भारत के इतिहास तथा भारत की वर्तमान स्थिति का ध्यानपूर्वक अध्ययन करो। उसके पश्चात् वर्तमान उन्नत जातियों, विशेषकर इंग्लैण्ड, जर्मनी, अमेरिका तथा जापान के इतिहास को आँख खोलकर पढ़ो और साथ-साथ अपने देश की स्थिति के साथ तुलना करते हुए इस बात का निश्चय करो कि तुम अपने देश की दशा सुधारने में उन देशों के इतिहास से क्या उपदेश ग्रहण कर सकते हो ? फिर निज देश की उन्नति के विविध क्षेत्रों में से जिस क्षेत्र में कार्य करने की ओर तुममें अधिक योग्यता तथा अधिक रुचि हो, उसमें अपने तन-मन के साथ प्रवृत्त हो जाओ। यही तुम्हारे जीवन का पवित्र लक्ष्य है।

युवको ! स्मरण रखो, केवल दूसरों की प्रशंसा करने, यूरोप अथवा जापान के गुण गाने अथवा प्राचीन भारत की डींग हाँकने से ही काम न चलेगा। दूसरों के उदाहरण से तुम निस्सन्देह उपदेश ग्रहण और प्राप्त कर सकते हो किन्तु दूसरों की केवल मात्र प्रशंसा करने और स्वयं निष्क्रिय बैठे रहने से तुम्हारे देश का उपकार न होगा। इसके अतिरिक्त हमारे अनेक युवकों को प्राचीन भारत के विषय में उचित से अधिक डींग मारने की भी आदत है। किन्तु यदि तुम्हारे पूर्वज महान् थे, और हम स्वीकार करते हैं कि वे अनेक अंशों में महान् थे तो तुम्हारे लिए और भी अधिक लज्जा की बात है और तुम्हें और भी अधिक परिश्रम के साथ अपने देश की वर्तमान दशा को सुधारने में तत्पर हो जाना चाहिए।

नवयुवकों से प्रार्थना

भारत के नवयुवको ! तुम्हारे सन्मुख कार्य अति महान् है। सैंकड़ों नहीं, सहस्रों नहीं, लाखों ही माता के लाल जिस समय तक निज देशवासियों की अनन्य सेवा में अपने समस्त जीवन व्यतीत न करेंगे उस समय तक इस महान कार्य का सिद्ध होना असम्भव है। यदि तुम सच्चे मनुष्य बनना चाहते हो, तो अपनी शिक्षा का उचित प्रयोग करना सीखो। इस शिक्षा ने वकील, बैरिस्टर तथा सरकारी कर्मचारी बहुतेरे पैदा किये। अब माता को सच्चे देशभक्तों तथा सच्चे देश सेवकों

की आवश्यकता है। स्वार्थ को त्याग दो! दारिद्र्य-वृत धारण करो! और हर प्रकार के व्यक्तगत सुख-सौख्य को तिलांजलि दे निज देशवासियों की सेवा में लग जाओ। तिलक, लाजपत, हंसराज, मुंशीराम, गोखले, अश्विनीकुमार आदि के अनेकानेक उदाहरण तुम्हारे सन्मुख हैं। शिक्षा, स्त्री शिक्षा, नीच जातियों का उद्धार, सामाजिक सुधार, पत्र-सम्पादन, राजनैतिक आन्दोलन जिस कार्य में भी तुम प्रवेश करो, उसमें अपना सर्वस्व अर्पण कर दो। निज मातृभूमि को मृत्यु से बचाकर अमरत्व की ओर ले जाने का यही उपाय है।

ऊपर के कामों में से तुम्हारा कर्मक्षेत्र चाहे कुछ भी हो तथापि एक-दो बातों की ओर से तुम्हें सावधान कर देना हम आवश्यक समझते हैं। एक यह कि निर्धनता, कष्ट सहन तथा किसी प्रकार के सांसारिक भय अथवा सांसारिक प्रलोभन तुम्हें तुम्हारी मर्यादा से न डिगा सकें। दूसरे यह कि किसी प्रकार का भी मज़हबी पक्षपात तुम्हारे हृदय में स्थान न कर सके। स्मरण रहे, एकता—किसी भाव की भी एकता—राष्ट्रीय उन्नति का मूलमंत्र है। अर्वाचीन राष्ट्रीयता की नींव मज़हब नहीं, वरन् देश है। इस सम्बन्ध में जापान तथा चीन का अर्वाचीन इतिहास ही तुम्हें बहुत शिक्षा दे सकता है। गत वर्षों के मोहर्रमी झगड़े और गोहत्या तथा गोबध के टंटे प्रत्येक सच्चे देशभक्त को दुख देते रहे हैं। विशेषकर गोबध सम्बन्धी झगड़ों के विषय में हमें दुख किन्तु निर्भयता के साथ कहना पड़ता है कि इन झगड़ों में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही एक तुल्य मूर्खता, अदूरदर्शिता तथा देश-शत्रुता दर्शाते रहे हैं। इस प्रकार के झगड़ों का कारण केवल यह है कि इस देश के अधिकांश रहने वाले अभी तक देशभक्त तथा देश-सेवा के अर्थों को नहीं समझते। प्रिय युवको! हम इस छोटे-से लेख में इस विषय पर अधिक लिखने में असमर्थ हैं। किन्तु इससे मिलती-जुलती एक और तीसरी बात है जिसकी ओर से तुम्हें सावधान कर देना भी हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं। वह यह है कि तुममें किसी प्रकार की नैतिक निर्बलता (Moral weekness) अथवा आत्मबल की न्यूनता न होनी चाहिए। तुम्हरा कर्मक्षेत्र चाहे कुछ भी हो, किन्तु सामाजिक कुरीतियों को तुमसे तनिक मात्र भी सहायता न मिले। ध्यान रखो, संस्थाएँ मनुष्य के लिए रची जाती हैं, मनुष्य संस्थाओं के लिए नहीं रचा गया। संसार की समस्त संस्थाएँ, चाहे वे आरम्भ में कैसी भी लाभदायक रही हों समय पाकर मनुष्य जाति की उन्नति में बाधा डालने लगती हैं और उस समय उनका विध्वंस कर देना ही बुद्धिमत्ता है। उन्नतिशीलता तथा अन्धस्थितिपालन दोनों परस्पर विरोधिनी शक्तियाँ हैं। हम यह नहीं कहते और न यह चाहते हैं कि भारतवासी यूरोपवालों के अवगुणों को भी ग्रहण कर लें, और न हम यह चाहते हैं कि अधिकांश यूरोप निवा-

सियों के समान हम सब सामान्य अर्थों में ला-मज़हब हो जावें, किन्तु हम यह कहे बिना भी नहीं रह सकते कि जो लोग कुछ युवकों को सड़ी-गली हानिकारक रूढ़ियों को तोड़ते हुए देखकर चिल्लाने लगते हैं कि 'क़ौम डूबी ! क़ौम डूबी', वे चाहे कितने भी सच्चे देशभक्त क्यों न हों, किन्तु राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता के वास्तविक अर्थों को कदापि नहीं समझते। हम किसी भी मज़हब के विरोधी नहीं। हम इस बात में पूर्ण विश्वास रखते हैं कि प्रत्येक उन्नत राष्ट्र में प्रत्येक पुरुष तथा स्त्री को मज़हबी विचार रखने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए। किन्तु हमारे दुखित हृदय से यह आवाज़ उठे बिना नहीं रह सकती कि आज शताब्दियों से मज़हबी झगड़े हमारे देश की अधोगति का एक मुख्य कारण हैं। देशभक्त हिन्दुओं तथा देशभक्त मुसलमानों—दोनों को अपने-अपने मज़हबों पर दृढ़ रहते हुए भी स्मरण रखना चाहिए कि राष्ट्र की रक्षा का निर्भर हिन्दू कर्मकाण्ड तथा हिन्दू रसमो-रिवाज़, अथवा मुसलमानी कर्मकाण्ड तथा मुसलमानी रसमो-रिवाज़ के बनाए रखने पर नहीं है, और मज़हबी कर्मकाण्ड तथा रसमो-रिवाज़ की रक्षा करने के स्थान पर देश तथा राष्ट्र की रक्षा करना अपनी तथा मनुष्य जाति की उन्नति के लिए कहीं अधिक आवश्यक है।

जो हिन्दू स्वराज्य अथवा हिन्दू साम्राज्य के स्वप्न देखते हैं, वे ऐसे ही भ्रम में हैं, जैसे टर्की को अपना वतन समझने वाले भारतीय मुसलमान। हम मज़हब की वास्तविक स्पिरिट को अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखते हैं, किन्तु जो मज़हब हमें उदारता नहीं सिखाता और विचारों का भेद होते हुए भी निज देशवासियों को अपनाना नहीं बतलाता, वह इस 20वीं शताब्दी में तिलांजलि देने के योग्य है। इसी प्रकार जो विचार हमें सार्वजनिक समता के पवित्र सिद्धान्त से हटाकर ऊँच-नीच के गड्ढों में गिराए रखते हैं, अथवा हमारे मार्ग में रुकावट डालते हैं, उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया कर डालना ही इस समय राष्ट्र-संगठन के कार्य को सच्ची सहायता देना है।

अन्त में इस लेख को समाप्त करते समय महात्मा मेज़िनी ही के शब्दों में हम भारत के युवकों से अन्तिम निवेदन करते हैं :

"देश के नवयुवको ! जब तुम एक बार विचारपूर्वक अपनी आत्मा के भीतर अपने जीवन के उद्देश्य को स्थिर कर चुको, तो फिर संसार की कोई शक्ति तुम्हारे पैरों को आगे बढ़ने से न रोक सके ! उस उद्देश्य को अपनी सम्पूर्ण शक्ति द्वारा पूरा करो ! पूरा करो !! चाहे तुम पर प्रेम की वर्षा हो, और चाहे घृणा की बौछार, चाहे दूसरों की सहायता द्वारा तुम्हें बल प्राप्त हो, और चाहे तुम्हें उस शोकमय निर्जनता में रहना पड़े जिसका प्रायः सर्वदा ही निज आदर्श के शहीदों को सामना

करना पड़ता है। तुम्हारे सन्मुख तुम्हारा मार्ग स्पष्ट है। फिर तुम कायर हो, तथा स्वयं अपने देश के भविष्य के घातक हो, यदि तुम कष्टों तथा आपत्तियों के होते हुए भी अन्त तक उस मार्ग का अनुसरण न करो।"

हमारा आशान्वित हृदय भीतर से साक्षी देता है कि हमारे राष्ट्र की आशा के स्तम्भ, हमारे नवयुवक, मेज़िनी की इस लांछना के कदापि भागी न होंगे।

8

चीन में राज्य-क्रान्ति होगी

महायुद्ध ने चीन को आत्मसुधार के लिए समय दे दिया है। उसको नोच खाने की ताक में रहने वाली शक्तियों का बल लड़ाई में लगा है, इधर चीन अपने को सम्भाल रहा है। बड़े-बड़े नगरों में बिजली लग गई है, नल-कल स्थापित हो गए हैं और रेलें बन गई हैं। क़ानून बनाने वाली सभाएँ स्थापित हो गई हैं और उसके मेम्बरों के चुनाव का ढंग अच्छा है, रिश्वत का बाज़ार ठण्डा हो गया है, सरकारी एहलकारों को अच्छी तनख्वाहें और पेंशन देने की व्यवस्था की गई है। अर्थ-विभाग का पूरा सुधार हुआ है। अफीम खोरी बन्द कर दी गई है। भूमि-कर के सुधार के लिए देश-भर की पैमाइश होने वाली है, डाकखाने का काम बढ़ गया है, पाँच वर्ष पहले सालभर में तीस लाख पारसलें गई थीं, गत वर्ष यह संख्या पैंसठ लाख तक पहुँची थी। चीन में भीतरी शान्ति पूरी है। इस समय बाहर वाले भी उसे नहीं सताते। हाँ युद्ध के बाद उसे केआ चाओ आदि के विषय में महा राष्ट्रों से कुछ कहना-सुनना पड़ेगा। इसके लिए वह तैयार है क्योंकि अब वह पहले का-सा मक्खन का लड्डू नहीं रहा। यहाँ चीन के एक परिवर्तन की बात और कहनी है। प्रजातन्त्र शासन का तो यह प्रभाव होना ही था कि समानता की लहर बहती। चीन के च्युत पेंशनवाले राजपरिवार ने अपने टीम-टाम छोड़कर साधारण वस्त्र में और साधारण ढंग से रहना आरम्भ कर दिया है, पर राष्ट्रपति यूआन शिकाई की गति कुछ इसके विपरीत है। उसने अपनी ऊपरी शान बढ़ाई है नवीन वर्ष पर जो पूजा पुराने नरेश करते थे वह अभी धूम-धाम से उसने की है। और अपने तीन उत्तराधिकारी नियत करने का स्वत्व पार्लियामेंट से प्राप्त किया है। ये बातें यह आशंका उत्पन्न करती हैं कि चीनियों में पूरा बल आते ही चीन में एक राज्य-क्रान्ति और होगी।

९

लोक-सेवा

वर्तमान युग अधिकारों का युग है। संसार के कोने-कोने से अधिकारों की ध्वनि उठ रही है। अत्याचारों से पीड़ित व्यक्तियों और समूहों से लेकर स्वतन्त्र और शक्तिसम्पन्न व्यक्तियों और समूहों तक सभी ने वर्तमान युग के इस देवता ही की उपासना करना अपना परम धर्म समझ रखा है। जीवन के प्रत्येक विभाग में अधिकारों की शंख-ध्वनि की जाती है कि काल की गति परखने वाले, बुद्धिमत्ता से और विश्वास से अधिकारों के मोहनमंत्र की शक्ति का लोहा मान रहे हैं और मनवा रहे हैं। आयुर्वेदिक औषधि मकरध्वज की भांति प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में अधिकारों के मंत्र का प्रयोग किया जाता है। हमें अमृत का पता नहीं परन्तु इस युग के अमृत की तलाश में अधिक दूर जाने की आवश्यकता भी नहीं। यह अमृत मृग-तृष्णा सदृश है। अधिकार-लोलुप उत्साह और आकांक्षा की मूर्ति, और उन्नति और अभ्युदय का परमोपासक होता हुआ भी अधिकारों की देवी के पास नहीं फटकने पाता। सच्चे अधिकारों की विभूति उस पर क़हक़हा मारती है, और कहती है, उस ड्योढ़ी पर चढ़ने की योग्यता तुझ में नहीं, जा और अधिकांश की सत्ता का प्रचार उस छोटे-से-छोटे स्थल पर कर, जो सारे अधिकारों का केन्द्र है, जो सारी इच्छाओं का आरम्भ स्थान है, और जो संसार पर अपने अधिकारों की दुंदुभी बजाने की शक्ति की प्राप्ति का मुख्य साधन है। परन्तु जहाँ प्रकृति की इस टेर की अवहेलना की जाती है और दुर्भाग्य से वर्तमान युग इस टेर की परवा नहीं करता—वहाँ मानव हृदय के उस पवित्र मंदिर का ह्रास आरम्भ हो जाता है, जो मनुष्य को मनुष्य बनाता है। और जो उसे ऊपर उठाता है। आडम्बर ऐसी वस्तु नहीं, जिसके सामने सिर झुकाया जाय, परन्तु धर्म की शक्ति, उसकी उज्ज्वलता और उसकी जीवन-संचालिनी, संदेशदायिनी और मर्म-स्पर्शिनी सत्ता से किसे इन्कार है? धर्म मनुष्य को मनुष्य बनाता है। वह उसकी शक्तियों को केन्द्रित और प्रभावशालिनी बनाता है। वह उसे उच्च, पवित्र और सच्चे अधिकारों का अधिकारी बनाता है। कोरे अधिकारों के विचार में यह बात नहीं उसमें तड़क-भड़क है, उसमें तीव्रता और

प्रखरता है, परन्तु प्रत्येक ज्वर के चढ़े हुए पारे को नीचे गिरना पड़ता है। मनुष्य का हृदय शान्ति चाहता है। वह शान्ति नहीं, जो यथार्थ में मुर्दापन है। शान्ति अपने हृदय के भीतर कर्मण्यता की ज्योति रखती है ! उसी के लिए अधिकारों के मैदान में सरपट दौड़ लगाई जाती है। आशाएँ की जाती हैं, परन्तु अधिकारों की चपलता से अवश्य उत्पन्न होने वाली क्षीणता, उद्विग्नता और निराशामयी अशान्ति के कारण आशा का प्याला ओठों तक आ-आकर छलक जाता है। धर्म मनुष्य के हृदय की इस प्यास को बुझाता है। अधिकारवादी इस घात की परवा नहीं करता। सच्चे अधिकार उसकी परवा नहीं करते।

लोक-सेवा बीसवीं शताब्दी का सांकेतिक शब्द है। लोक-सेवा के भाव ने मनुष्यता के शासन का झंडा बागी हृदयों तक पर गाड़ दिया है। कुलीनता के शुद्ध रक्तकणों का जादू टूट गया, और अप्राकृतिक असमानता के किले की दीवारें टूट-फूट गईं। तलैयों के बाँध टूट गए। सहानुभूति का स्रोत अब किसी समूह विशेष के लिए सुरक्षित नहीं रहा। मनुष्यता की इस विजय पर सहृदयता के आनन्द का पार नहीं। पर एक बात खटकती है। अधिकार और धर्म का यहाँ भी द्वन्द्व युद्ध हो रहा है। लोक-सेवा लोक-सेवा के लिए नहीं, आत्मा को उच्च और पवित्र बनाने के लिए नहीं, अधिकारों के अधिकार-स्थल हृदय पर अधिकार जमाने के लिए नहीं, किन्तु आत्मगौरव के लिए, ऊपरी वैभव के लिए और विश्व पर धाक जमाने के लिए की जाती है। यह तो लक्ष्य से भटक जाना है।

देश के नवयुवको ! तुम्हारे हृदय में लोक-सेवा का भाव जागा है। यह अच्छी बात है। वह देश धन्य है, जिसके होनहार लालों के हृदयों में उसकी सेवा के लिए कर्मण्यता की लहरें हिलोरें मारती हैं ! परन्तु मातृ-भूमि के नाम पर—उस पवित्र जननी के नाम पर जिसकी आराधना करने की लालसा तुम्हारे हृदय में प्रज्वलित हुई है—तुमसे यह प्रार्थना है कि तुम अपने सेवापथ के उन प्रलोभनों में मत फँस जाना, जो संसार की वर्तमान गति—अधिकारों की आड़ में, तुम्हें छिछोरा, अदृढ़ और उच्छृंखल बनाने के लिए तुम्हारे सामने पेश करे। इस जाल से सदा बचो। तुम एक नेक काम करते हो। यदि तुम गीता की शिक्षा के अनुसार उसे निष्काम करने में समर्थ नहीं हो तो स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में, तुम्हें यह क्या कम लाभ है कि उसके करने से तुम्हें उच्च और महान बनने का अवसर मिला ? जिस काम को हाथ में लो, उसे धर्म-कर्त्तव्य की प्रेरणा से लो, और भले ही वह अत्यन्त तुच्छ हो, पर, तुम उसे अपने उच्च लक्ष्य की ओर दृष्टि रख ही करा करो। तुच्छ कार्य की सात्विक सफलता महान कार्य को आपसे आप तुम्हारे हाथों में ला डालेगी। देश के आशा फल नवयुवक ! जब तुम अपना काम पवित्र भार के इस

Sri Pratap Singh Library Srinagar

अनुभव के साथ करोगे, तब तुम्हारा नैतिक प्रभाव देश के प्रत्येक युवक के हृदय को जगाकर उस प्रकार के लाखों वीर पैदा कर देगा, जिस प्रकार की 300 मूर्तियाँ हम इस समय हरिद्वार के कुम्भ में अपने लाखों भाइयों की निष्काम सेवा करते हुए देखते हैं, तुम्हारे कृत्य का पुण्य तुम्हारे करोड़ों भाइयों के उस उत्थान का कारण होगा, जिसे संसार की कोई भी शक्ति नीचे दबा नहीं सकेगी और तुम्हारा व्यापी त्याग मनुष्यत्व के विश्वव्यापी शुभ साम्राज्य के झंडे को इतना अधिक ऊँचा करेगा कि अन्य गिरे हुए देश उससे जीवन और आशा का पुनीत संदेश पावेंगे।

10

सुरापान की भयंकरता

इस महायुद्ध के साथ यूरोप में एक महा संग्राम ऐसा हो रहा है, जिसमें रक्त-पात नहीं होगा, पर जिसकी जीत यूरोप वालों को इतना अधिक देगी, जितना कि वे और किसी प्रकार कदाचित् ही पा सकते। यह युद्ध है उनका सुरादेवी के साथ। एक समय था कि उसे त्यागना तो दूर, हज़ार समझाने पर भी यूरोप वाले शराब की बुराइयाँ तक न समझते, परन्तु आज बड़े-बड़े शराबियों के हाथ के प्याले नीचे गिर रहे, और गिराए जा रहे हैं। दो-तीन वर्ष हुए, जर्मनी के कैसर ने भाषण करते हुए कहा था कि आगामी युद्ध में विजयलक्ष्मी उसी देश के साथ रहेगी, जो सुरादेवी का सबसे अधिक बायकाट करेगा। कैसर के शब्दों की सच्चाई को कैसर के साथियों ने इतनी अच्छी प्रकार नहीं समझा है, जितना कि उसके शत्रुओं ने। रूस अपनी उस हार को नहीं भूला है, जो उसने जापान के हाथों खाई। उस हार के कारणों में एक कारण रूसी सिपाहियों की वह बदमस्ती भी थी, जो वोडका की बोतलें उनमें उत्पन्न करती थी। बहुत खोकर रूस ने इस छोटे-से मन्त्र को सीखा, और आज हम देखते हैं कि लगभग डेढ़ अरब की वार्षिक आय पर लात मारकर रूस ने अपने यहाँ से शराब को बिलकुल देश-निकाला दे दिया। सुरापान के बहिष्कार ने रूसियों को बहुत लाभ पहुँचाया, और इस लाभ को देखकर रूस के मित्र फ्रांस और इंग्लैण्ड ने भी इस मैदान में आगे क़दम बढ़ाया है। फ्रांस के होटलों में शराब का प्रवेश बन्द हो गया, और इंग्लैण्ड में सम्राट् जार्ज के आगे बढ़ने पर सर्व-साधारण में शराब के विरुद्ध उत्तेजना फैल गई है, और अब वहाँ शराब पर टैक्स बढ़ाने की योजना हो रही है। शराब की रोक-थाम में फ्रांस और इंग्लैण्ड में उतनी सफलता नहीं हुई, जितनी रूस में। इसका यही कारण हो सकता है कि रूस में प्रजा के अधिकार उतने नहीं जितने इंग्लैण्ड और फ्रांस में, और इसीलिए वहाँ राजा के एक ही इशारे से वह काम हो गया जो इन देशों में केवल प्रजा की इच्छा बिना हो ही नहीं सकता। वह काम स्थायी नहीं होता जिसके लाभ और हानि के विषय में भली प्रकार सोच-समझ नहीं लिया जाता। यूरोप के जिन देशों ने सुरापान का त्याग

किया है, उन्होंने ऐसा उसकी हानियों को अच्छी तरह समझ और अनुभव करके किया है। राणा संग्रामसिंह के मुकाबले में अपनी सेना को हताश होती हुई देखकर बाबर को कुरान की शिक्षा याद आई थी। उसने पाक-परवरदिगार से प्रार्थना करते हुए प्रायश्चित्त के रूप में अपने सब शराब-पात्र तुड़वा दिए थे, और प्रतिज्ञा की थी कि अब शराब कभी न पीऊँगा। पता नहीं उसने फिर शराब पी या नहीं, पर उसका यह काम क्षणिक जोश के आधार पर हुआ था, और इसका प्रभाव उसके साथियों पर बहुत ही कम पड़ा, क्योंकि इतिहास हमसे कहता है कि विपत्ति में पड़े हुए बाबर के बेटे हुमायूँ ने फारस में अपने बहुत-से दिन शराब के सहारे काटे थे। पर, बाबर और उसके साथियों की बात सम्राट् जार्ज और उनके साथियों पर लागू नहीं है, क्योंकि इन्होंने जो कुछ किया है, वह केवल क्षणिक जोश के प्रभाव से ही नहीं किया, किन्तु उसकी बुराई और भलाई को समझकर किया है। उन्होंने समझ लिया है कि सुरा का गुणगान धोखे की टट्टी है, सुरा से लाभ नहीं हानि है। हानि अन्न की और धन की, हानि शरीर की और पुरुषार्थ की। शराब खाद्य पदार्थों को सड़ाकर बनाई जाती है। इस सड़ी चीज के बनाने में प्रत्येक वर्ष इंग्लैण्ड चार करोड़ मन अन्न, शकर आदि नष्ट करता है। ऐसे समय में जब कि अन्न के लिए इंग्लैण्ड दूसरों का मुँह ताक रहा है, अन्न का यह नाश कैसी मूर्खता का काम होता। इंग्लैण्ड हर साल सुरादेवी को अपने 2 अरब 40 करोड़ रुपये की भेंट देता है। और इस खर्च का शरीर पर क्या फल होता है। वह स्वर्गीय लार्ड राबर्ट्स फील्ड मार्शल वोल्सले और इंग्लैण्ड के पाँच नामी डाक्टरों के इन शब्दों में प्रकट होता है, "सुरापान से सिपाही के संकेतों की देखने की शक्ति कम हो जाती है, उसकी तत्परता जाती रहती है, वह ठीक निशाना नहीं लगा सकता, वह जल्दी थक जाता है, उसकी सहनशीलता लोप हो जाती है और पीड़ाएँ उसे अधिक कष्ट देने लगती हैं।"

यूरोप के शीत देशों ने सुरा की भयंकरता को भली-भाँति समझ लिया है, पर गरम देश भारत इस स्पष्ट बात को समझने के लिए तैयार नहीं। वहाँ अधिकारीगण लोगों की इस लत के छुड़ाने की बातें सोच रहे हैं, और काम कर रहे हैं, परन्तु भारत में अधिकारियों को इन बातों की परवाह नहीं, और वहाँ भी शराब की दूकानें खुल रही हैं जहाँ पहले नहीं थीं। 1901-2 में देश में लगभग 6 करोड़ की शराब खर्च हुई थी। चक्र को आगे ही बढ़ाना चाहिए, क्योंकि इसी में उन्नति है, इसी हिसाब से 1910-11 में देश में शराब का खर्च साढ़े दस करोड़ रुपये का हो गया। अकेले इंग्लैण्ड से हर साल 60 लाख गैलन शराब आती है, अन्य देशों से आने वाली शराब का हिसाब नहीं, और उस अन्न के नाश का भी कोई हिसाब

नहीं, जो देश के भूखे बच्चों के पेट से निकालकर इस विष के लिए सड़ाया जाता है। अधिकारियों से यह आशा करना कि वे भी इंग्लैण्ड या फ्रांस के अधिकारियों की भाँति आगे बढ़ने की आवश्यकता समझेंगे, व्यर्थ है, क्योंकि हमारे अधिकारियों के मन बात तभी आती है, जब वह उन्हींके मन में होती है। हाँ, देश के जिन लोगों के हृदयों में देश के इस नाश को देखकर आह उठती हो, जो देश के स्वास्थ्य और जलवायु, और उसकी अवस्था को देखते हुए, सुरापान को हानिकारक और देश को दरिद्र, निकम्मा और चरित्रहीन बनाने वाला समझते हों, वही अपने प्रयत्न से सुरापान की हानियों को लोगों के कान तक पहुँचावें और उसकी रोक के लिए अपना नैतिक प्रभाव काम में लाएँ।

11

राष्ट्रीयता

देश में कहीं-कहीं राष्ट्रीयता के भाव के समझने में गहरी और भद्दी भूल की जा रही है। आये दिन हम इस मुल्क के अनेकों प्रमाण पाते हैं। यदि इस भाव के अर्थ भली-भाँति समझ लिये गए होते तो इस विषय में बहुत-सी अनर्गल और अस्पष्ट बातें सुनने में न आतीं। राष्ट्रीयता जातीयता नहीं है। राष्ट्रीयता धार्मिक सिद्धान्तों का दायरा नहीं। राष्ट्रीयता सामाजिक बन्धनों का घेरा नहीं है। राष्ट्रीयता का जन्म देश के स्वरूप से होता है। उसकी सीमाएँ देश की सीमाएँ हैं। प्राकृतिक विशेषता और विभिन्नता देश को संसार से अलग और स्पष्ट करती है और उसके निवासियों को एक विशेष बन्धन—किसी सादृश्य के बंधन—से बाँधती है। राष्ट्र पराधीनता के पालने में नहीं पलता। स्वाधीन देश ही राष्ट्रों की भूमि है क्योंकि पुच्छविहीन पशु हों, तो हों, परन्तु अपना शासन अपने हाथों में न रखने वाले राष्ट्र नहीं होते। राष्ट्रीयता का भाव मानव उन्नति की एक सीढ़ी है। उसका उदय नितान्त स्वाभाविक रीति से हुआ। यूरोप के देशों में यह सबसे पहले जन्मा। मनुष्य उसी समय तक मनुष्य है, जब तक उसकी दृष्टि के सामने कोई ऐसा ऊँचा आदर्श है, जिसके लिए वह अपने प्राण तक दे सके। समय की गति के साथ आदर्शों में परिवर्तन हुए। धर्म के आदर्श के लिए लोगों ने जान दी, और तन कटाया। परन्तु, संसार के भिन्न-भिन्न धर्मों के संघर्षण, एक-एक देश में अनेक धर्मों के होने, तथा धार्मिक भावों की प्रधानता से देश के व्यापार, कला-कौशल और सभ्यता की उन्नति में रुकावट पड़ने से, अन्त में, धीरे-धीरे धर्म का पक्षपात कम हो चला और लोगों के सामने देश-प्रेम का स्वाभाविक आदर्श सामने आ गया। जो प्राचीन काल में धर्म के नाम पर कटते मरते थे, आज उनकी संतति देश के नाम पर मरती है। पुराने अच्छे थे, या ये नये, इस पर बहस करना फजूल है, पर उनमें भी जीवन था, और इनमें भी जीवन है। वे भी त्याग करना जानते थे, और ये भी, और ये दोनों उन अभागों से लाख दर्जे अच्छे और सौभाग्यवान हैं, जिनके सामने कोई आदर्श नहीं और जो हर बात में मौत से डरते हैं। ये पिछले आदमी

अपने देश के बोझ, और अपनी माता की कोख के कलंक हैं। देश-प्रेम का भाव इंग्लैंड में उस समय उदय हो चुका था, जब स्पेन के कैथोलिक राजा फिलिप ने इंग्लैंड पर अजेय जहाज़ी बेड़े आरमेडा द्वारा चढ़ाई की थी, क्योंकि इंग्लैंड के कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट दोनों प्रकार के ईसाइयों ने देश के शत्रु का एक-सा स्वागत किया था। फ्रांस की राज्यक्रांति ने राष्ट्रीयता को पूरे वैभव से खिला दिया। इस प्रकाशमान रूप को देखकर गिरे हुए देशों को आशा का मधुर सन्देश मिला। 19वीं शताब्दी राष्ट्रीयता की शताब्दी थी। वर्तमान जर्मनी का उदय इसी शताब्दी में हुआ। पराधीन इटली ने स्वेच्छाचारी आस्ट्रिया के बंधनों से मुक्ति पाई। यूनान को स्वाधीनता मिली, और बालकन के अन्य राष्ट्र भी कब्रों से सिर निकालकर उठ पड़े। गिरे हुए पूर्व ने भी अपनी विभूति दिखाई। बाहर वाले उसे दोनों हाथों से लूट रहे थे। उसे चैतन्यता प्राप्त हुई। उसने अंगड़ाई ली, और चोरों के कान खड़े हो गए। उसने संसार की गति की ओर दृष्टि फेरी। देखा, संसार को एक नया प्रकाश मिल गया है, और जाना कि स्वार्थ-परायणता के इस अन्धकार को बिना उस प्रकाश के पार करना असम्भव है। उसके मन में हिलोरें उठीं, और अब हम उन हिलोरों के रत्न देख रहे हैं। जापान एक रत्न है, ऐसा चमकता हुआ कि राष्ट्रीयता उसे कहीं भी पेश कर सकती है। लहर रुकी नहीं। बढ़ी और खूब बढ़ी। अफीमची चीन को उसने जगाया और पराधीन भारत को उसने चेताया। फारस में उसने जागृति फैलाई और एशिया के जंगलों और खोहों तक में राष्ट्रीयता की प्रतिध्वनि इस समय किसी न किसी रूप में उसने पहुँचाई। यह संसार की लहर है। इसे रोका नहीं जा सकता। वे स्वेच्छाचारी अपने हाथ तोड़ लेंगे, जो उसे रोकेंगे और उन मुर्दों की खाक का भी पता नहीं लगेगा, जो इसके संदेश को नहीं सुनेंगे। भारत में हम राष्ट्रीयता की पुकार सुन चुके हैं। हमें भारत के उच्च और उज्ज्वल भविष्य का विश्वास है। हमें विश्वास है कि हमारी बाढ़ किसी के रोके नहीं रुक सकती। रास्ते में रोकने वाली चट्टानें आ सकती हैं। बिना चट्टानों के तो कोई रास्ता बड़ा और विशेष महत्त्व का रास्ता नहीं हो सकता। पर, ये चट्टानें पानी की किसी बाढ़ को नहीं रोक सकतीं। परन्तु एक बात है। हमें जान-बूझकर मूर्ख नहीं बनना चाहिए। ऊटपटांग रास्ते नहीं नापने चाहिए। कुछ लोग 'हिन्दू राष्ट्र', 'हिन्दू राष्ट्र' चिल्लाते हैं। हमें क्षमा किया जाय, यदि हम कहें—नहीं, हम इस बात पर जोर दें—कि वे एक बड़ी भारी भूल कर रहे हैं। और उन्होंने अभी तक राष्ट्र शब्द के अर्थ ही नहीं समझे। हम भविष्यवक्ता नहीं, पर अवस्था हमसे कहती है कि अब संसार में हिन्दू राष्ट्र नहीं हो सकता। क्योंकि राष्ट्र का होना उसी समय सम्भव है, जब देश का शासन देश

वालों के हाथ में हो। और यदि मान लिया जाय, कि आज भारत स्वाधीन हो जाय, या इंग्लैंड इसे औपनिवेषिक स्वराज्य दे दे, तो भी हिन्दू ही भारतीय राष्ट्र के सब कुछ न होंगे, और जो ऐसा समझते हैं—हृदय से या केवल लोगों को प्रसन्न करने के लिए वे भूलकर रहे हैं और देश को हानि पहुँचा रहे हैं। वे लोग भी इसी प्रकार की भूलकर रहे हैं, जो टर्की या काबुल या मक्का या जेद्दा का स्वप्न देखते हैं, क्योंकि वे उनकी जन्म-भूमि नहीं और इसमें कुछ भी कटुता नहीं समझी जानी चाहिए यदि हम यह कहें, कि उनकी कब्रें इसी देश में बनेंगी। और उनके मर्सिये—यदि वे इस योग्य होंगे तो—इसी देश में गाये जाएँगे। परन्तु हमारा प्रतिपक्षी, नहीं, राष्ट्रीयता का विपक्षी—मुँह बिचका कर कह सकता है कि राष्ट्रीयता स्वार्थों की खान है, देख लो इस महायुद्ध को, और इन्कार करने का साहस करो, कि संसार के राष्ट्र पक्के स्वार्थी नहीं हैं। हम इस विपक्षी का स्वागत करते हैं, परन्तु संसार की किस वस्तु में बुराई और भलाई दोनों बातें नहीं हैं? लोहे से डाक्टर का घाव चीरने वाला चाकू और रेल की पटरिया बनती हैं, और इसी लोहे से हत्यारे का छुरा और लड़ाई की तोपें भी बनती है। सूर्य का प्रकाश फूलों को रंगबिरंगा बनाता है, पर वह बेचारा उस मुर्दा लाश का क्या करे, जो उसके लगते ही सड़कर बदबू देने लगती है। हम राष्ट्रीयता के अनुयायी हैं, पर वही हमारी सब कुछ नहीं, वह केवल हमारे देश की उन्नति का उपाय भर है।

12

राष्ट्र की नींव

राष्ट्र महलों में नहीं रहता। प्रकृत राष्ट्र के निवास-स्थल वे अगणित झोंपड़े हैं जो गाँवों और पुरवों में फैले हुए खुले आकाश के देदीप्यमान सूर्य और शीतल चन्द्र और तारागण से प्रकृति का सन्देश लेते हैं। और इसीलिए राष्ट्र का मंगल, और उसकी जड़ मज़बूत उस समय तक नहीं हो सकती जब तक इन अगणित लहलहाते पौदों की जड़ों में जीवन का मज़बूती का जल नहीं सींचा जाता। भारतीय राष्ट्र के निर्माण के लिए उसके गाँव और पुरवों में जीवन की ज्योति की आवश्यकता है। आवश्यकता है कि हम अपने हाथ-पैर और कान-नाक को भी उस मिठास की कल्पना करने का निमंत्रण दें, जिसकी कल्पना हमारे मन में है। करोड़ों प्राणियों की जागृति के लिए हम आगे बढ़ें, और उन्हें आगे बढ़ावें, जिनके बढ़ाने की शक्ति हमारे हाथों में है।

देश की म्युनिसिपैलिटियों को अधिक स्वतन्त्र बनाने के लिए सरकार ने कृपा करके अभी एक प्रस्ताव प्रकाशित किया था। यद्यपि उसमें सकपकाहट भरी हुई है, और सरकार उन्नति के नाम पर भी अपनी ही लाठी के सहारे एक क़दम भी आगे बढ़ाने का साहस प्रकट नहीं कर सकी है, तो भी यह नहीं कहा जा सकता, कि उस प्रस्ताव में अच्छी बातें नहीं हैं। एक अच्छी बात यही थी कि गाँवों में पंचायतें स्थापित की जाएँ और जहाँ-जहाँ वे हैं, वहाँ दृढ़ की जाएँ। काम होने पर पता लग सकेगा कि सरकार गाँवों के लिए कितना आगे बढ़ सकती है? यह बात उलटी भले ही प्रकट हो, पर एक समय था कि हमारे गाँव प्रजा-सत्ता के उस बड़े भाव के केन्द्र-स्थल थे, जिसके आधार पर आगे बढ़ना आज प्रत्येक उन्नतिशील देश अपना कर्त्तव्य समझता है। मुसलमानों ने देश के अधिकांश भाग पर अपना झंडा फहरा दिया, पर बड़े से बड़े मुसलमान सम्राट् का शासन या तो देश के बड़े-बड़े नगरों पर था और या उसी भूमि पर जिस पर उसकी सेना के क़दम पड़ते थे, पर देश के लाखों गाँवों में उन्हीं की तूती बोलती थी, जो उन्हीं के थे, और उन्हें पता ही न लगता था, कि कौन आया, और कौन गया? परन्तु अंग्रेज़ी राज्य के स्थापित

होते ही गाँवों की स्वाधीनता लोप हो चली। उन्हें मालूम हुआ कि हमारे हलके सिरों पर शासकों का ज़बर्दस्त लोहा पड़ गया है। पंचायतें टूट चलीं, और गाँव की कभी न टूटनेवाली शान्ति ने अपना बोरियाँ-बँधना सँभाला। जहाँ प्रजा-सत्ता आनन्द से विचरती थी, वहाँ स्वेच्छाचारिता का राज्य हुआ। कोयल के घोंसले में काक का निवास हुआ। चौकीदारों और पुलिस वालों ने सबको एक ही डंडे से हाँकना आरम्भ कर दिया। जहाँ प्यार और आदर के सूत्र से सब बँधे हुए थे, वहाँ स्वेच्छाचारिता की छत्रछाया में विरोध और कलह, उत्पात और नालिशबाजी ने अपना रंग जमाया। बना बनाया—खेल बिगड़ गया, और इस टूटी हुई अट्टालिका के सुधार, या उसकी नींव पर दूसरी अट्टालिका की नींव रखने का विचार भी उनके हृदयों में न पैदा हुआ, जिनके हाथों में बिगड़े हुओं के भाग्य की डोरी थी। वर्षों से देश के गाँव की बुरी दशा है। प्रतिवर्ष वे उजड़ते जाते हैं। प्रतिवर्ष लाखों आदमी उनसे निकलकर नगरों में आ बसते हैं, कुछ रोज़ी कमाने के लिए और कुछ अपने गाँव के स्वेच्छाचारी सरकारी प्रतिनिधि की ज़ोर ज़बर्दस्ती से बचने के लिए। पर, अब सरकार की दृष्टि इन पर पड़ी है। उसने उनमें पंचायतों के स्थापित करने की आवश्यकता समझी है। बात अच्छी है, और भविष्य की उज्ज्वलता की कुछ आशा की जा सकती है। परन्तु उस समय तक आशाओं के बहुत बड़े महल बनाने की आवश्यकता नहीं है, जब तक काम का रुख न देख लिया जाय। यदि कार्य उसी ढंग से आरम्भ किया गया, जिस ढंग से आरम्भ करने के अभ्यासी हमारे शासकगण हैं, तो विशेष लाभ की कोई आशा नहीं।

पंचायत स्वराज्य का एक रूप है। पंचायत को अपने गाँव के भीतरी मामलों में पूरी स्वाधीनता थी। वर्तमान आवश्यकताओं के लिहाज़ से एक पंचायत को अपने गाँव की पाठशाला उसकी स्वास्थ्य-रक्षा, उसके छोटे-छोटे मामलोंके निपटारे आदि विषयों की पूरी स्वाधीनता प्राप्त होनी चाहिए। परन्तु आज वर्षों से गाँवों में स्वाधीनता का ह्रास हो रहा है और स्वेच्छाचारी शक्तिमान लोग गाँव वालों पर अत्याचार करने, उन्हें धूल के बराबर समझने, उन्हें लड़ा मारने, उनकी कलह और मुकदमेबाजी से लाभ उठाने के पूरे अभ्यासी हो चुके हैं। इन स्वेच्छाचारियों को दाँव में रखने से गाँव वाले कुछ स्वाधीन हो सकते हैं। परन्तु क्या ये लोग किन्हीं बंधनों में रखे जा सकेंगे? हमें सन्देह है, क्योंकि इन स्वेच्छाचारियों में अधिकांश हमारे अधिकारी हैं, और उनका दाबा जाना उस समय तक अत्यन्त कठिन जान पड़ता है, जब तक देश के शासन में देश वालों का हाथ बहुत कुछ नहीं होता। और जब तक सरकार की वर्तमान नीति, अपने आदमियों का अनुचित पक्ष लेने की नीति, का अन्त नहीं होता। परिस्थिति चाहे जो हो, इसमें किसी को सन्देह

नहीं हो सकता कि गाँवों को उठाने की बड़ी भारी आवश्यकता है, न केवल गाँवों की दुर्दशा का मूलोच्छेदन करने के लिए, उनमें से कलह, अज्ञान और मुकदमेबाज़ी दूर करने के लिए, परन्तु देश में राष्ट्रीय भाव की जड़ों को पाताल तक पहुँचाने के लिए सरकार कुछ करना चाहती है। वह बुरा हो या भला, इस आलोचना ही से हमारा काम समाप्त नहीं होता। हम, जिनके हृदयों में जागृति के कुछ भाव हैं, और जो देश के अलग-अलग अंगों को जुड़ा हुआ देखना चाहते हैं, और जो एक महान् राष्ट्र का स्वप्न देखते हैं; हम, जो देश और देशवासियों के पूर्ण विकास और उनकी उन्नति रोकने पर दूसरों का तिरस्कार करते हैं और जो मनुष्यता के कल्याण में ही संसार का कल्याण समझते हैं, उस समय तक अपने कर्त्तव्य से गिरे हुए रहेंगे, जब तक हम स्वयं अपने हाथों से इस बड़े महल की नींव रखने के लिए आगे न बढ़ेंगे, और आगे बढ़कर उन अपने करोड़ों भाइयों को आगे बढ़ने का रास्ता न देंगे, जो स्तब्ध होने के कारण हमें पीछे घसीटने वाले, और देश के बोझ बन रहे हैं।

13

नगर जीवन

सभ्यता की वर्तमान गति नगर की उन्नति का मूल कारण है। गाँव मिटते जाते हैं, नगर बसते जाते हैं, जिसे अपनी बाहरी उन्नति की उत्कट अभिलाषा होती है वह मुँह उठाता है और नगरों की ओर पैर बढ़ा देता है। जो नगर पहले छोटे थे, वे लोगों की इस रुचि के कारण बड़े हो गए और जो फैले हुए थे, वे घने हो गए। नगर उन्नति के केन्द्र हैं, वे सुधार के तत्त्व स्थल हैं और विद्या के मन्दिर हैं। धन और ऐश्वर्य, विद्वत्ता और महत्ता का नगर ही में अड्डा है। नगर इस महत्त्व को सभी आगे बढ़ाते हैं, परन्तु हवा के इस रुख में लोग भूल जाते हैं कि वस्तु का कोई दूसरा रूप भी है। जो शक्तियाँ नगर को इतना बढ़ाती हैं, वे ही उसे इतना गिराती भी हैं कि नगरों का भीतरी रूप देखने वाला विवेकी मनुष्य लज्जा और घृणा के कारण गड़-सा जाता है। उन देशों में जहाँ समाज-शास्त्र के तत्त्वों को लोग जानने लगे हैं, जहाँ सामाजिक प्रश्नों पर पूरा विचार होता है, जहाँ की शिक्षा इतनी परिमित नहीं कि वह समाज-सुधार के यही अर्थ बतलाए कि दहेज और बाल-विवाह की कुप्रथा दूर कर दो और लोग एक-दूसरे का छुआ हुआ भोजन खाने से घृणा न करें—उन देशों में नगर जीवन की बुराइयों की ओर विचारशील लोगों का पूरा-पूरा ध्यान जाने लगा है और वे इन बुराइयों के निवारण के लिए निश्चेष्ट भी नहीं हैं। हिन्दी पत्रों के एक साधारण पाठक को तो यह समझाना ही कठिन है कि नगर जीवन में कुछ खराबियाँ भी हैं। वह अधिक-से-अधिक यही कह सकता है कि नगर में आदमी को अधिक खर्च करना पड़ता है। परन्तु यथार्थ में नगर जीवन की खराबियों में अधिक खर्च की बात बहुत ही कम आती है। यदि नगरों में अधिक खर्च होता है, तो यहाँ लोगों की आमदनी गाँव की अपेक्षा अधिक भी होती है।

नगर की सबसे पहली खराबी है उसका बहुत अधिक आदमियों का निवास-स्थान होना। आबादी की अधिकता के कारण इने-गिने धन-कुबेरों और उनके साथियों को छोड़कर, जिनकी हर तरह चाँदी है, शेष आदमियों की बहुत ही बुरी कटती है। अन्तर इतना ही है कि किसी पर अधिक बोझ पड़ता है और किसी पर

कम और किसी को थोड़ी कसकती है और किसी को अधिक । साधारण आमदनी के आदमी ऊपर से भले दीख पड़ने वाले घरों में रहते हैं, परन्तु एक-एक बड़े घर में गाँव का गाँव बसता है । एक घर में रहने वाले लोग एक-दूसरे के उठने और बैठने, निकास और प्रवेश में बाधक नहीं बनते और बहुत-सी हालतों में एक-दूसरे के बड़े सहायक और मित्र बन जाते हैं । परन्तु वे न तो घर के नीचे की दूकानों की खट-खट और बमचख, इक्के और गाड़ियों की खड़खड़ाहट और धूल और धुआँ की बाढ़ को रोक सकते हैं, और न वे प्रकृति ही को इस बात से मना कर सकते हैं कि वह दिन-भर बन्द स्थानों में गुजर करने वाले लोगोंके तन क्षीण और मन मलीन न रखे । अच्छी धूप, साफ हवा और शुद्ध जल की कमी के कारण इन घरों के कबूतरखानों में रहने वाले अधिकांश लोग अपने स्वास्थ्य धन के विषय में एक बहुत दरिद्री आदमी से भी अधिक दरिद्री हो जाते हैं । नगर जीवन इस श्रेणी के लोगों को कुछ विशेष बातें भी सिखा देता है जिनका वे या उनके पूर्वज गाँव में रहते समय भूलकर भी स्वप्न न देखते थे । उनकी स्त्रियाँ बड़ी इज़्ज़त वाली होने के लिए नहीं, परन्तु अपना स्वास्थ्य पूर्णतया खोने के लिए, अपना रंग हल्दी का सा सुन्दर करने तथा निर्बल सन्तानों की जननी बनने के लिए पर्दा के अन्दर रहने लगती हैं और अपने स्वास्थ्य के टैक्स के साथ अपने कमाने वालों पर यह टैक्स और लगने देती हैं कि वे घर के छोटे-मोटे कामों तक के लिए नौकरानियाँ रखें, और बाकायदा डाक्टर के बिल के अदा करने के अभ्यासी हो जाएँ । यह उनकी दशा है, जिनके हाथ में कुछ पैसा है । और जो फाकेमस्त हैं, या जो रोज़ कुआँ खोदते हैं और तब पानी पीते हैं, उनकी अवस्था बहुत ही बुरी है । यदि नगर औद्योगिक केन्द्र हुआ तो ग़रीबों की दशा और भी बुरी समझिए । हमारे सामने कानपुर का विशाल नगर उपस्थित है । नगर के उन मुहल्लों में चले जाइए, जहाँ कुली रहते हैं, और मज़दूर पेशा लोगों का निवास है केवल गंदगी और तंगी ही नहीं दीख पड़ेगी, आपको ऐसे-ऐसे घर मिलेंगे जिनको घर के नाम से पुकारना अनुचित है । कोठरियाँ क्या हैं खोहे हैं । हवा आने के लिए नाम को रास्ता नहीं । बहुधा भूमि की सतह से हाथ-डेढ़ हाथ नीची-बड़ी शील और बदबू वाली । लोग इनमें रहते हैं और इन छोटी-छोटी कोठरियों में—औसत कोठरी लगभग 6 × 4 गज की समझिए—एक या दो ही मनुष्य नहीं रहते, पाँच-पाँच, सात-सात आदमियों के परिवार तक रहते हैं । कल्पना कीजिए—विशेषकर आराम से दिन काटने वाले लोग कल्पना करने का कष्ट उठावें कि मनुष्यता के इस बड़े भाग का जीवन कैसे कटता होगा ? हाँ कुछ स्वार्थी लोग कहेंगे कि वे इस जीवन के अभ्यासी होंगे । निःसन्देह वे अभ्यासी हैं और तुम भी डरो मत इसी प्रकार के स्थान में ज़बर्दस्ती डालकर

उनके सदृश अभ्यासी बनाए जा सकते हो। वे इस जीवन के अभ्यासी हैं। परन्तु वे हैजा और प्लेग के अणुओं के क्यों नहीं अभ्यासी बन जाते? क्यों प्लेग और कालरा उन्हें अधिक प्यार करते हैं? मलेरिया उन्हें क्यों अपने अंक का खिलौना बनाता है? और क्यों तुम्हें अधिक अवसरों पर इनके चंगुल से रक्षा मिलती है? तुम्हारी रक्षा के भाव ऐसे हैं जो बहुत कुछ तुम्हें बचा देते हैं। परन्तु तुम्हारे हृदय के भाव ऐसे नहीं?

नगर जीवन ग़रीब को अधिकांश रूप से नीचे ही गिराने वाला है। यदि वह बेकार हो जाय तो वह भिखमंगों की संख्या बढ़ाता है, और यदि रोज़गार से लगा रहता है तो कम-से-कम दुराचार अवश्य बढ़ाता है। नगर बड़े-बड़े कारखानों के घर होते हैं। उनमें स्त्री पुरुष साथ-साथ काम करते हैं और यह उन लोगों की नापी-तोली बात है, जो औद्योगिक क्षेत्रों के अच्छे निरीक्षक हैं कि कारखानों के मज़दूर दुराचार बहुत बढ़ाते हैं। स्वर्गीय रमेशचन्द्र दत्त ने एक बार अपने भाषण में यही बात कही थी और जिन लोगों ने बम्बई-कानपुर ऐसे औद्योगिक क्षेत्रों के कारखानों की आबादी के जीवन का निरीक्षण किया है उनका कथन इस बात की सचाई का प्रमाण है। जिन छोटे-छोटे लड़कों को स्कूलों में होना चाहिए था, मिलों में जाने पर उनके मुँह से दो चीज़ें बाहर निकलती देखी जाती हैं, सिगरेट का धुआँ और लम्बी-चौड़ी गन्दी गलियाँ। पुरुष गंदा मज़ाक करने के अभ्यासी हो जाते हैं, और पवित्रता के तो वे शत्रु बन जाते हैं। वही हालत स्त्रियों की होती है। बम्बई का एक समाज सेवक कहता है—विवाहिता स्त्रियों के मार्ग में बहुत-से प्रलोभन हैं और प्रत्येक तनिक भी सुन्दर लड़की की इज़्ज़त किसी समय ख़तरे से बाहर नहीं। क्योंकि आपस में ही कुटनापे का रोज़गार चला करता है। कितना घृणित व्यापार है और नगर-जीवन का यह कितना काला अंग है! परन्तु नगर का इससे भी अधिक भयंकर और कृष्ण अंग है उसमें वेश्याओं की अधिकता। पतित स्त्रियों के अड्डे दूसरों के पतन के अड्डे हैं, न केवल पतन के, किन्तु धन-क्षय के और शरीर-क्षय के भी। बर्रों के छत्ते की भाँति मुहल्लों के मुहल्ले उनके हैं इस पर भी उनके लिए शहरों की प्रत्येक गली और सड़क खुली हुई है। एक अंग्रेज लेखक वेश्याओं की आवश्यकता बतलाता हुआ उनके गुण की यह प्रशंसा करता है कि वे समाज की अधिष्ठात्री हैं क्योंकि उनका अस्तित्व केवल इसलिए है कि दूसरी स्त्रियों और उनके घरों की पवित्रता का विनाश न हो। परन्तु क्या यह स्त्री जाति के लिए कलंक की बात नहीं है कि लाखों स्त्रियाँ इसलिए अपवित्रता का जीवन बसर करें और अपना शरीर और मन दोनों बेच डालें कि उनकी बहनों की रक्षा हो परन्तु रक्षित परन्तु बहनें अपनी इन त्यागिनी बहिनों की कुछ ख़बर ही न लें? और क्यों पुरुष

जाति के लिए इस पर डूब मरने का स्थान नहीं है कि वे वेश्याओं की आवश्यकता को सिद्ध करें परन्तु उन्हें समाज में स्थान देने से हिचकें, अपनी नीच इच्छाओं की प्रेरणाओं से उनका सब कुछ नाश कर चुकने पर उन्हें पशु की मौत से भी बदतर मौत मर जाने के लिए छोड़ दें—मौत जो एक पतित जीव का अन्त तो कर देगी, परन्तु उस ज़िन्दगी का अन्त न कर सकेगी जो उस जीव ने समाज से बहिष्कृत और घृणित होने की हैसियत से फैलाई।

हम बहुत आगे बढ़ गए। नगर की अवस्था में घोर परिवर्तन होना चाहिए।

14

षड्यंत्र और देशोद्धार

देश की वर्तमान स्थिति को देखते हुए हमें इस प्रश्न पर गम्भीरता के साथ विचार करना है कि क्या षड्यंत्र हमारे देश के उद्धार के उचित उपाय हैं। इस बात से इन्कार करना यथार्थ अवस्था से इन्कार करना है कि देश में एक ऐसा दल मौजूद है जो समझता है कि षड्यंत्रों से, मार-काट से, हत्याओं से वह देश का उद्धार कर लेगा। हम इस बात पर विश्वास कर सकते हैं कि इस दल के लोगों में देश प्रेम है परन्तु पूर्ण विश्वास के साथ हमारी यह दृढ़ धारणा है कि इन लोगों का मार्ग ठीक नहीं, वे अपनी शक्तियों को ग़लत रास्ते में लगाये हुए हैं। हत्याकांड और षड्यंत्रों ने भले ही किसी पाश्चात्य राष्ट्र का निर्माण और उसका उत्थान किया हो परन्तु इस बात को स्वीकार करते हुए भी कि हम संसार से अलग नहीं हैं, हमारा विश्वास है कि पाश्चात्य देशों की यह लीला हमारे जातीय चरित्र और उसकी आध्यात्मिक रचना के बिलकुल विरुद्ध है। एक पल के लिए भी हमारा जातीय जीवन हमें उस कार्यक्रम से हाथ मिलाकर चलने की आज्ञा नहीं दे सकता। उस सारी घृणा के साथ, जो हमारी आज्ञा में है, हम इस गति की अवहेलना करते हैं। हम इस बात को भी नहीं भुला सकते कि मनुष्य में कार्य करने, आगे बढ़ने की स्वाभाविक लालसा और गुप्त शक्तियाँ हैं, और हमारे देश वालों की इन शक्तियों को पूरा रास्ता नहीं मिल रहा, जो आज मनचले डाकू हैं और जो आज षड्यंत्र रचने में प्रवीण हैं, यदि उनकी शक्तियों को रास्ता मिला होता वे आज देश के अच्छे सिपाही और अच्छे नागरिक हो सकते। हम इस बात को भी पाप नहीं समझते कि वर्तमान बुरी अवस्था के परिवर्तन के लिए ऐड़ी से लेकर चोटी तक का बल लगा देना चाहिए। परन्तु हम यह मानने के लिए तैयार नहीं कि इस काम के लिए, इसके बजाय कि लोग सिर उठाकर आगे बढ़ें और कठिनाइयों का धीरता और वीरता के साथ मुकाबला करें, वे कोनों और जंगलों में छुपे-छिपे फिरें, और दूसरों के खून से अपने हाथ रंगें, और षड्यंत्रों के विचारों से अपना हृदय काला करें। बहुत-सी कठिनाइयों के होते हुए भी हम यह नहीं समझते कि हमारे लिये सिर

उठाकर आगे बढ़ने का मार्ग नहीं है। देश में इस समय में जिस शासन प्रणाली का दौर-दौरा है निःसन्देह उसमें शासक दल के अधिकार बहुत बढ़े-चढ़े हैं, कहीं-कहीं स्वेच्छाचारिता का अंधकार भी है। प्रेस ऐक्ट, मीटिंगस ऐक्ट आदि कड़े-कड़े क़ानून भी हैं, परन्तु इन सबके होते हुए भी देश में एक क़ानून है और सबसे बड़े संतोष की बात है कि हर ओर यह स्वीकार किया जाता है कि वह क़ानून राजा और प्रजा दोनों के लिए मान्य है और उसे देश का बड़े से बड़ा अधिकारी भी नहीं तोड़ सकता। बस यही क़ानून हमारे कार्य-क्षेत्र की नींव है। यही क़ानून हमारे सभी कामों का आधार-स्तंभ होना चाहिए। यह खटका हो सकता है कि क़ानून का अधिक लाभ उन्हें मिलेगा, जिनके हाथों में शक्तियाँ हैं। हम ऐसा नहीं समझते। परन्तु यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय कि ऐसा होगा, तो हानि ही क्या ? अपने मार्ग पर अटल रहने की आवश्यकता है। अटल रहने से अनेकों क्लेशों का सामना करना पड़ेगा। क्लेशों बिना बड़े-बड़े फल चाहना चन्द्र खिलौना के लिए हाथ बढ़ाना है। ऊँचे स्थान और ऊँचे मान के वही सच्चे अधिकारी हैं, जो क्लेश सहकर भी अपने मार्ग से हिलने का नाम न लें। क्लेशों का सहना एक महाकार्य है। जिनकी आत्माओं में बल नहीं, वे क्लेशों का सहन नहीं कर सकते, और जो ऐसे हैं, वे बड़े स्थान के पात्र नहीं। यदि हम खुल्लमखुल्ला रीति से अपनी आत्मा और विश्व के परमात्मा को साथ लेकर काम करते रहें, जो क्लेश पड़े उन्हें झेलें—किसी चिड़चिड़ेपन के साथ नहीं ईर्ष्या और द्वेष से नहीं परन्तु हँसी-खुशी से, धीरता के उस बल के साथ जो तपस्वियों ही को प्राप्त होता है और त्याग की उस शक्ति से जो केवल उसी को प्राप्त होती है जिसका बहुत ऊँचा त्याग होता है। तो हमें संसार को विश्वास दिला देने में अधिक दिन नहीं लगेंगे कि इन सूखी हड्डियों में बल का भंडार है, इस शान्त कर्मण्यता में शक्ति का वह स्रोत भरा है जिसका एक अणु भी पाश्चात्य प्रणाली के हत्याकांड और षड्यंत्रों के करने और छुपे-लुके फिरने वाले दलों में नहीं है और साथ ही इंग्लैंड को—स्वाधीनता की भूमि इंग्लैंड तथा स्वाधीनता प्रेमी अंग्रेज़ जाति को—भी विश्वास करना पड़ेगा कि अधिक काल तक इन सबल हृदयों से स्वाधीनता दूर नहीं रखी जा सकती।

15

राष्ट्रीय शिक्षा

शिक्षा की आवश्यकता

"शिक्षा, स्वदेशी तथा स्वराज्य—राष्ट्रीयता के तीन प्रधान स्तम्भ हैं। जिस समय तक कि तुम अपने परिश्रम तथा प्रयत्नों द्वारा उन्हें सुदृढ़ न कर लो उस समय तक विश्राम न लो···

"जब मैं 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग करता हूँ तो समझ लो कि मेरा सम्पूर्ण सिद्धान्त इस महान् शब्द के अन्तर्गत तथा सार रूप से उसके भीतर समाविष्ट है। वर्तमान समय के आन्दोलन में सबसे अधिक महत्त्व तथा गौरव का प्रश्न शिक्षा का प्रश्न है।···

"जगत के रचयिता ने तुम्हें शिक्षा पाने के योग्य बनाया है। इसलिए तुम्हारा यह परम कर्त्तव्य है कि तुम जहाँ तक भी तुम्हारी शक्ति में है वहाँ तक अपने को शिक्षित बनाओ। और तुम्हें इस बात का अधिकार है कि वह समाज जिसमें तुम रहते हो तुम्हारी शिक्षा में बाधा न डाले, वरन् उसमें सहायक हो और यदि तुम्हारे पास शिक्षा प्राप्त करने के साधनों की कमी हो तो समाज तुम्हें वे साधन प्रदान करे।

"तुम्हारी स्वतंत्रता, तुम्हारे अधिकार, निज सामाजिक स्थिति के विविध अन्यायों से तुम्हारा छुटकारा, वह कार्य जिसका इस पृथ्वी पर पूरा करना तुममें से प्रत्येक के लिए आवश्यक है—ये सब बातें शिक्षा के उस परिमाण पर निर्भर करती हैं जिसे तुम प्राप्त कर सको।

"बिना शिक्षा के तुम भलाई तथा बुराई में ठीक-ठीक भेद करने में असमर्थ हो, तुम्हें अपने अधिकारों का ठीक-ठीक बोध नहीं हो सकता, तुम (देश के) राजनैतिक जीवन में वह भाग नहीं ले सकते जिसके बिना कि सामाजिक अन्याय से तुम्हारा पूरी तरह छुटकारा पा लेना असम्भव है, तुम अपने (जीवन के) पवित्र उद्देश्य की ठीक-ठीक परिभाषा करने तथा उसे समझने में भी असमर्थ हो।

"शिक्षा तुम्हारी आत्मा का आहार है। बिना शिक्षा के तुम्हारी शक्तियाँ ठीक

उस ही प्रकार दबी हुई तथा निष्फल पड़ी रहती हैं जिस प्रकार कि जागरूक किसान के परिश्रम के बिना, जल से रहित तथा बिना जोती हुई भूमि में पड़े हुए बीज की उत्पादक शक्ति।"

—जौज़फ मेज़िनी

निःसन्देह समस्त संसार के देशभक्तों के पूजास्पद इटली देश के प्रसिद्ध देशभक्त तथा अर्वाचीन राष्ट्रीयता के जन्मदाता जौज़फ मेज़िनी के गम्भीर शब्दों के अनुसार ही आज समस्त संसार में विविध उन्नतिशील राष्ट्रों के विचारवान् नेता इस बहुमूल्य सत्यता को भली प्रकार समझने लगे हैं कि प्रत्येक राष्ट्र के बालक तथा बालिकाएँ ही उस राष्ट्र की सबसे अधिक मूल्यवान् वस्तु हैं।

यद्यपि प्रत्येक राष्ट्र के जीवन-निर्वाह के लिए यह आवश्यक है कि देश की प्राकृतिक सम्पत्ति की रक्षा की जावे तथा उस सम्मत्ति को उन्नति देने के पूरे-पूरे प्रयत्न किये जाएँ। देश की कृषि, देश की खानों की पैदावार तथा देश की दस्तकारियों की बिना रक्षा किये, बिना उन्हें उन्नति दिए तथा बिना देश के धन को देश से बाहर जाने से रोके किसी भी देश के बच्चों का अच्छी तरह पेट पालना अथवा उन्हें दरिद्रता, दुष्काल तथा महामारियों के भयानक परिणामों से बचाना सर्वथा असम्भव है। तथापि साथ ही हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि राष्ट्रीय-जीवन तथा राष्ट्रीय उन्नति के लिए देश की प्राकृतिक सम्पत्ति को उन्नति देने की अपेक्षा देश की मानसिक तथा नैतिक सम्पत्ति को उन्नति देना अधिक पूर्व का तथा कहीं अधिक आवश्यक कार्य है। राष्ट्र के बालक तथा बालिकाएँ ही राष्ट्र की मानसिक तथा नैतिक सम्पत्ति हैं और यह सम्पत्ति राष्ट्र की प्राकृतिक सम्पत्ति की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान तथा कहीं अधिक महत्त्व की है।

जो राष्ट्र अपनी इस मानसिक सम्पत्ति अथवा मूलधन की उचित रक्षा करता है तथा उसे उन्नति देने के पूरे-पूरे प्रयत्न करता है केवल वह राष्ट्र ही राष्ट्रीय उन्नति के पवित्र पथ पर आगे को पग बढ़ाते हुए मान, उत्साह तथा स्वतंत्रता के साथ इस संसार में जीवित रह सकता है। किन्तु इसके विपरीत जो राष्ट्र अपने इस मूलधन की उचित रक्षा नहीं करता, अथवा उचित शिक्षा द्वारा उसे उन्नति देने के यथायोग्य प्रयत्न नहीं करता, वह राष्ट्र राष्ट्रीय उन्नति के पथ से हटकर धीरे-धीरे अवनति के गड्ढे की ओर फिसलने लगता है और अन्त को अपने इस आत्महत्यारूपी पाप के बदले परतंत्रता, परपीड़न तथा असंख्य अन्य अपमानों को सहन करते हुए शीघ्र ही संसार के जीवित राष्ट्रों की श्रेणी तक से अपना नाम कटा लेता है।

जिस प्राकृतिक सम्पत्ति की ओर हम अभी संकेत कर आए हैं, उसकी रक्षा

तथा वृद्धि भी केवल उस ही समय ठीक-ठीक सम्भव हो सकती है जिस समय कि देश के अधिकांश स्त्री-पुरुष शिक्षा के प्रताप से अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों को समझें और उन कर्त्तव्यों को पूरा करने तथा अधिकारों को प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हों। जिस प्रकार कर्तव्यविमूढ़ परतंत्र देशों के लोग अत्यन्त शस्यप्रद तथा उपजाऊ भूमि में रहते हुए भी निर्धन तथा कंगाल बने रहते हैं, जबकि उनकी ही भूमि से उत्पन्न हुआ धन दूसरे देशों के लोगों को मालामाल कर देता है, ठीक उसी प्रकार अशिक्षित तथा अज्ञानान्धकार में डूबे हुए दक्षिणी अफ्रीका जैसे देशों के असली बाशिन्दे अपने पैरों के ठीक नीचे अनन्त सोने की खानें रखते हुए भी आहार के लिए मारे-मारे फिरते हैं, जबकि उनकी भूमि से निकले हुए स्वर्ण के प्रताप से ही यूरोप तथा कनाडा के बंज़र मरुस्थलों में रहने वाले शिक्षित लोग हर प्रकार के आनन्द भोग करते हैं। वास्तव में किसी भी देश की प्राकृतिक सम्पत्ति की रक्षा तथा वृद्धि उस देश की मानसिक सम्पत्ति की रक्षा तथा वृद्धि पर ही अधिकतर निर्भर करती है।

इसके अतिरिक्त यदि हम ध्यानपूर्वक अर्वाचीन उन्नत राष्ट्रों की गति की ओर दृष्टि डालें तो हमें इस सत्यता में तनिक मात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि वर्तमान समय की राष्ट्रीय घुड़दौड़ में केवल वे राष्ट्र ही दूसरों के अग्रगामी बन सकते हैं जो उन दूसरों की अपेक्षा अधिक मात्रा में बुद्धिबल का प्रयोग कर सकते हों। राष्ट्र का यह बुद्धिबल केवल मात्र राष्ट्र के व्यक्तियों की मानसिक तथा नैतिक शक्तियों के यथोचित विकसित होने पर ही निर्भर करता है और केवल उचित शिक्षा द्वारा ही राष्ट्र के व्यक्तियों की मानसिक तथा नैतिक शक्तियों को विकास दिया जाना सम्भव है। आज जर्मनी की सेनाएँ संसार की बड़ी-से-बड़ी शक्तियों के सन्मुख दुर्जेय प्रतीत होती हैं किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि जर्मनी वैज्ञानिक उन्नति में संसार के समस्त देशों से आगे है। जर्मनी की शिक्षा-प्रणाली संसार की सर्वोत्तम शिक्षा-प्रणालियों में से है और जर्मनी ही संसार में पहला देश था जिसने आवश्यक प्रारम्भिक शिक्षा-प्रणाली को धारण किया। यह स्पष्ट है कि जिस राष्ट्र के अधिकांश पुरुष तथा स्त्रियों की मानसिक तथा नैतिक शक्तियाँ शिक्षा के अभाव के कारण बिना विकास पाये ही मुरझा जाती हैं, वह राष्ट्र उस रोगी मनुष्य के समान है जिसकी नाड़ियों में नए रक्त का प्रवाह बन्द हो गया हो और जो ज्यों-त्यों कर केवल मात्र अपने दुखित जीवन की अन्तिम घड़ियाँ पूरी करता है।

सच यह है कि इस परिवर्तनशील संसार में कोई भी जीवन बिना परिवर्तन के नहीं चल सकता। अतः स्वस्थ राष्ट्रीय जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि

राष्ट्र के पुरुष तथा स्त्रियाँ संसार के विविध राष्ट्रों की पारस्परिक स्थिति तथा समय की आवश्यकताओं के अनुसार आत्म-रक्षा के विचार से अपने राष्ट्रीय जीवन में भी उचित परिवर्तन करते रहें।

शिक्षित मनुष्य थोड़ा-बहुत संसार के अन्य राष्ट्रों की दशा तथा उनकी गति से परिचित हो जाता है। वह उन राष्ट्रों की अपेक्षा अपने राष्ट्र की स्थिति को भी थोड़ा-बहुत समझने लगता है। इस कारण वह स्वभावतः थोड़ा-बहुत उदार, परिवर्तनशील तथा उन्नतिशील होता है और निज शक्ति अनुसार राष्ट्र को भी उन्नति की ओर ही खींचता है। किन्तु अशिक्षित मनुष्य प्रायः इन सब बातों से अनभिज्ञ होता है। वह प्रायः मूढ़ अन्धविश्वासी तथा स्थितिपालक अर्थात् लकीर का फकीर होता है और अज्ञानान्धकार ग्रस्त होने के कारण अपनी शक्ति के अनुसार राष्ट्र को भी अवनति तथा मृत्यु की ओर ही ढकेलता है। इस प्रकार जिस राष्ट्र में शिक्षित पुरुष तथा स्त्रियों की संख्या अधिक होती है वह राष्ट्र अवश्य धीरे-धीरे उन्नति की ओर तथा जिस राष्ट्र में अशिक्षित पुरुष तथा स्त्रियों की संख्या अधिक होती है धीरे-धीरे अवनति की ओर चलने लगता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक राष्ट्र के अधिकांश बालक तथा बालिकाओं को उचित शिक्षा का दिया जाना न केवल राष्ट्रीय उन्नति का सबसे अधिक आवश्यक अंग तथा उसकी पहली सीढ़ी ही है, वरन् वास्तव में इस शिक्षा के दिए जाने पर ही प्रत्येक राष्ट्र के भविष्य का निपटारा निर्भर है।

स्मरण रखो कि बिना कष्ट सहन तथा स्वार्थत्याग के संसार का कोई भी महान कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। हमारे देश के जो धनाढ्य लोग परोपकार के कामों में अपना धन व्यय किया चाहते हैं उनके लिए देश के बालकों तथा बालिकाओं के लिए स्कूल तथा कालेज खोलने से बढ़कर देशोपकार का और कोई कार्य नहीं हो सकता। जो लोग अपने अथवा अपने सम्बन्धियों के स्मरणार्थ संस्थाएँ स्थापन किया चाहते हैं उनके लिए भी इससे बढ़कर कार्य मिलना कठिन है। जिन लोगों के पास अपनी सामान्य आवश्यकताओं से बचकर थोड़ा-बहुत भी धन है उन्हें उचित है कि वे अपने तथा पराए के विचारों को छोड़कर अपने धन द्वारा राष्ट्र के बच्चों को शिक्षा देना अपना सर्वोच्च कर्त्तव्य समझें। जो लोग सार्वजनिक सेवा में अपना समय लगाना चाहते हैं उनके सामने शिक्षा-प्रचार के कार्य से अधिक पवित्र कार्य नहीं हो सकता। जिन युवकों की विद्या दान देने के शुभ कार्य में रुचि है, उन्हें स्वयं स्कूल आदिक खोलकर अथवा खुले हुए स्कूलों में सम्मिलित होकर अध्यापकों, का अति पवित्र कार्य अपने हाथों में लेना चाहिए। यदि देश का प्रत्येक शिक्षित युवक ऊँच-नीच के घृणित विचारों को छोड़कर अपने आस-पास के रहने

वाले चार बालकों अथवा बालिकाओं को भी प्रति वर्ष अशिक्षित से शिक्षित बना देने का संकल्प कर लेवे तो परिणाम अत्यन्त उत्साहवर्धक हो।

जापान के शिक्षा-प्रचार के स्वार्थ-त्याग के उदाहरण

हमारे देश के जो लोग अपने देश की शिक्षा सम्बन्धी दशा को सुधारने का विचार करें उनके लिए निकटवर्ती जापान का गत 40 वर्ष का शिक्षा सम्बन्धी इतिहास अत्यन्त शिक्षाप्रद तथा उत्साह- वर्धक होगा। सन् 1872 से लेकर रूस-जापान युद्ध के समय तक समस्त जापान-भर में देश का प्रत्येक व्यापारी, प्रत्येक साहूकार, प्रत्येक सरकारी कर्मचारी, प्रत्येक डाक्टर तथा प्रत्येक वकील अपने तथा पराये के विचारों को बिलकुल छोड़कर अपनी शक्ति के अनुसार देश के एक, दो व अधिक बच्चों को अपने घर में रखकर उन्हें भोजन वस्त्रादिक दे शिक्षा देना अपना कर्त्तव्य समझता था। छोटे से छोटा जापानी शक्ति के अनुसार इस महान राष्ट्रीय यज्ञ में थोड़ा-बहुत भाग अवश्य लेता था और वहाँ के धनवान लोग निर्धन विद्यार्थियों के पालन-पोषण में अभी तक एक-दूसरे से बाज़ी ले जाने का प्रयत्न करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त आज से आठ वर्ष पूर्व तक उस देश के ज़िले-ज़िले में सैकड़ों ही ऐसी समितियाँ स्थापित थीं जो निर्धन विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए धन उधार देती थीं। और उनसे यह प्रतिज्ञा करा लेती थीं कि वे शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् थोड़ा-थोड़ा करके कुल धन अथवा कभी-कभी उसका आधा समिति को लौटा देंगे। जापानी स्कूलों के अध्यापकों को सदा से बहुत कम वेतन मिलता रहा है तथापि ये लोग भी प्रायः देश के रिवाज के अनुसार एक-एक दो-दो विद्यार्थियों को अपने साथ भोजन अवश्य कराते थे। कालिजों के समस्त प्रोफेसर अपने वेतनों में से थोड़े-बहुत विद्यार्थियों का खर्च अवश्य सहन करते थे। इन तीस वर्षों के इतिहास में ऐसे-ऐसे जापानी प्रोफेसरों का वर्णन आता है जिन्होंने सारी आयु अविवाहित रहकर मोटे वस्त्र पहनकर तथा आयु भर सुबह-शाम केवलमात्र उबली हुई शकरकन्दियाँ खाकर अपना जीवन-निर्वाह किया और इस प्रकार बचाये हुए अपने वेतन के समस्त धन को देश के निर्धन विद्यार्थियों के पालन-पोषण इत्यादि में व्यय किया। निःसन्देह इस प्रकार के अद्भुत स्वार्थत्याग का ही परिणाम था कि वह देश जो आज से केवल 40 वर्ष पूर्व संसार के राष्ट्रों में सबसे पीछे गिना जाता था आज उन राष्ट्रों की अग्रतम श्रेणी में है। जापान में आज दिन कोसों यात्रा करने तथा ग्राम-ग्राम में घूमने पर भी अशिक्षित पुरुष तथा अशिक्षित स्त्री के दर्शन नहीं होते। हमें विश्वास है कि यह देदीप्यमान उदाहरण हमारे देशभक्त युवकों के लिए कदापि निष्फल न होगा।

शिक्षा कैसी होनी चाहिए

किन्तु इस लेख को समाप्त करने से पूर्व हम राष्ट्रीय शिक्षा के स्वरूप तथा उसके सिद्धान्तों के सम्बन्ध में एक-दो स्पष्ट बातें अपने पाठकों से और कर लेना चाहते हैं। एक यह कि यद्यपि देश में शिक्षा के भयंकर दुष्काल को देखते हुए हम जिस तरह भी हो शिक्षा के विस्तार का स्वागत करते हैं तथापि हम कहे बिना नहीं रह सकते कि साम्प्रदायिक संस्थाओं में यदि अधिक नहीं तो बहुत-से सुन्दर अन्न के साथ थोड़ी-बहुत विष की मात्रा अवश्य मिली होती है। जितने शीघ्र हमारे देश के विचारवान लोग देश की शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं को मजहब, जाति अथवा सम्प्रदाय की नींव पर खड़े करने की अपेक्षा देशीयता की पवित्र तथा उदार नींव पर खड़ा करना सीख जावें उतना ही देश के भविष्य के लिए कल्याणकर होगा। शिक्षा में किसी प्रकार की भी संकीर्णता शिक्षा के वास्तविक लक्ष्य का नाश कर देती है। देश के कल्याण के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि हम मजहबी बातों को केवल मात्र अपनी-अपनी व्यक्तिता तक परिमित कर अपने हरप्रकार के सार्वजनिक जीवन में सर्वथा भारतवासी बने रहें।

दूसरी बात, जो हम कहना चाहते हैं, वह धार्मिक अथवा मजहबी शिक्षा के विषय में है। हमें दुख के साथ अनुभव करना पड़ता है कि धार्मिक शिक्षा का मनोहर भूत हमारे अनेक देशवासियों के चित्तों में उचित से अधिक घर करता जाता है। हम इस गम्भीर विषय पर इस छोटे-से लेख में अधिक लिखने में असमर्थ हैं किन्तु हम अवश्य कहेंगे कि जब हमें यह बताया जाता है कि अमुक संस्थाओं में हिन्दू धर्म की शिक्षा दी जावेगी तो हम यह नहीं समझ सकते कि हिन्दू धर्म की शिक्षा से क्या अभिप्राय होता है? यदि हिन्दू धर्म की शिक्षा से अभिप्राय यह हो कि उस संस्था में जात-पाँत छूत-छात अंध-स्थितिपालन तथा हिन्दुओं के अन्य अनेक अंधविश्वासों का प्रचार किया जावेगा तो हम दुख किन्तु निर्भीकता के साथ कहे बिना नहीं रह सकते कि इस प्रकार की शिक्षा देश को लाभ पहुँचाने के स्थान पर देश के कल्याण के लिए अत्यन्त हानिकर होगी और देश को उन्नति की ओर ले जाने के स्थान पर अवनति तथा अज्ञान की ओर ले जावेगी। यदि हिन्दू धर्म की शिक्षा से अभिप्राय आवागमन इत्यादि हिन्दुओं के दार्शनिक सिद्धान्तों की शिक्षा से है तो भी प्रमाणिक रूप में इन सिद्धान्तों की शिक्षा देना विद्यार्थियों की तर्कशक्ति, उनकी मानसिक स्वतन्त्रता तथा व्यक्तित्व का नाश कर देना होगा। किन्तु यदि हिन्दू धर्म की शिक्षा से अभिप्राय सच बोलना, चोरी न करना इत्यादि केवल आचार, नैतिक (Moral) विषयों की शिक्षा से है तो हमारी समझ में नहीं आता कि हिन्दू-जैनधर्म की शिक्षा तथा सिखधर्म की शिक्षा में भेद क्यों किया

जाता है ? हमें इन धर्म अथवा मतों में से कोई भी ऐसा दिखाई नहीं देता जो सदाचार की प्रशंसा तथा दुराचार की निन्दा न करता हो। कोई कारण मालूम नहीं होता कि छोटी आयु से ही हमारे बच्चों में संकीर्णता उत्पन्न करने के प्रयत्न क्यों किये जावें ? हम इस स्थान पर साम्प्रदायिक अर्थात् मज़हबी शिक्षा (Roligious education) तथा सदाचार की शिक्षा (Moral education) में स्पष्ट भेद कर दिया चाहते हैं। हम सदाचार की शिक्षा के पक्षपाती हैं किन्तु साम्प्रदायिक शिक्षा को शिक्षा के वास्तविक लक्ष्य के सर्वथा विरुद्ध समझते हैं तथा उसके स्पष्ट विरोधी हैं। सदाचार की शिक्षा के लिए किसी भी मत विशेष का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं है। विविध देशों तथा विविध मतों के आदर्शपुरुषों के चरित्र बच्चों को सदाचारी रहने के लिए उत्तेजित कर सकते हैं। जापान के समस्त स्कूलों में सदाचार की शिक्षा का एक घण्टा होता है। उस घंटे में शिक्षक के सम्मुख मेज़ के ऊपर शीतो, बौद्ध, ईसाई इत्यादि देश के समस्त मत-मतान्तरों की उत्तम-उत्तम नीति विषयक पुस्तकें पड़ी होती हैं। शिक्षक इन विविध पुस्तकों में से अच्छी-अच्छी बातें तथा सत्य, देशप्रेम, वीरता इत्यादि के उदाहरण छाँटकर बच्चों को सुनाता है। निस्संदेह इस प्रकार की शिक्षा बच्चों को सदाचारी बनाने के साथ-साथ उदार मनस्वी बनाती है किन्तु साम्प्रदायिक शिक्षा प्रायः उन्हें संकुचित हृदय तथा अन्धविश्वासी बना देती है। जापान में जबकि एक ओर पूर्वोक्त सदाचार की शिक्षा सब स्कूलों में तथा सब क्लासों में दी जाती है दूसरी ओर किसी मत की भी साम्प्रदायिक शिक्षा स्कूलों में दिए जाने के विरुद्ध वहाँ कड़ा क़ानून है। स्मरण रखना चाहिए कि वास्तविक उदार शिक्षा का उद्देश्य बालकों तथा बालिकाओं को वे ज्ञान रूपी नेत्र प्रदान करता है जिनके द्वारा वे मतमतान्तरों के झगड़ों से बाहर निकल निष्पक्ष होकर स्वयं स्वतन्त्रता के साथ सत्य तथा असत्य सिद्धान्त में भेद कर सकें, और अन्ध स्थितिपालन से बचकर मनुष्य जाति के भविष्य की रचना में उचित भाग ले सकें। अनेक लोग हमारे देश के सरकारी स्कूलों के भीतर भी हिन्दू तथा मुसलमान बच्चों को पृथक्-पृथक् मज़हबी शिक्षा का प्रबन्ध कर अपने को हमारा हितचिंतक सिद्ध किया चाहते हैं। यह रोग भारत के अनेक प्रान्तों में अभी एक नया रोग प्रतीत होता है। स्मरण रहे कि यदि इस प्रकार की सलाहें देने वालों का हार्दिक उद्देश्य वह न भी हो कि असाम्प्रदायिक स्कूलों के भीतर भी हमारे प्यारे बच्चों के चित्तों में अपने भारतवासी होने की जगह पृथक्-पृथक् हिन्दू तथा मुसलमान होने का विचार ज़ोरों के साथ बना रहे और उनमें बचपन से ही थोड़ा-बहुत पक्षपात उत्पन्न हो जावे तो कम से कम उनकी सलाहों पर कार्य करने का परिणाम अवश्य यही होगा कि हम किसी दूसरे के हृदय को व्यर्थ दुखाना नहीं चाहते किन्तु

हमारे अपने दुखित हृदय से यह आवाज़ निकले बिना नहीं रहती कि झूठे मज़हबी झगड़े ही अधिकतर हमारे देश का कोढ़ हो रहे हैं और यदि हम इस देश का कल्याण चाहते हैं तो हमें शीघ्र तथा हर प्रकार से इस भयंकर रोग से बचने का प्रयत्न करना चाहिए।

तीसरी बात जो हम कहना चाहते हैं यह है कि हमें अपनी शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं में कम व्यय तथा अधिक काम का विचार रखना चाहिए। सर्वसाधारण के करोड़ों रुपयों से दो-चार हज़ार विद्यार्थियों को शिक्षा देना भारत जैसे निर्धन देश के लिए बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं कहा जा सकता। विशेषकर शानदार बड़ी-बड़ी इमारतों इत्यादि पर धन नाश करने का प्रलोभन हमारे लिए एक अत्यन्त हानिकर प्रलोभन है। जापान में अभी तक अनेक स्कूल तथा कालिज़ों के पास शानदार इमारतें नहीं हैं। और सन् 1900 ई० तक वहाँ के अनेक स्कूल साधारण खपरैल के कच्चे मकानों तथा कहीं-कहीं वृक्षों के नीचे लगते रहे।

अन्त में हम संक्षेप से यह कह देना चाहते हैं कि हमारी शिक्षा जहाँ तक सम्भव हो असाम्प्रदायिक, उदार तथा सस्ती होनी चाहिए। हमें अपने प्राइवेट स्कूलों तथा कालिजों में जहाँ तक संभव हो सके, सरकारी स्कूलों की अनावश्यक संकीर्णता तथा कड़ाइयों को भी दूर रखना चाहिए। विशेषकर लड़कियों के स्कूलों तथा कालिजों में यह बात बहुत दर्जे तक संभव हो सकती है इसके लिए आवश्यक है कि हम अपने प्राइवेट स्कूलों का प्रबन्ध ज़िले के अफसरों के हाथों में न सौंप दिया करें किन्तु साथ ही हमें स्मरण रखना चाहिए कि जो शिक्षा हमें प्राचीन संस्थाओं तथा प्राचीन विचारों में ही फाँसे रखती हो वह शिक्षा अर्वाचीन समय में शिक्षा कहलाने के योग्य नहीं है। वह शिक्षा शिक्षा कहलाने के योग्य है जो हमें उदार तथा मनस्वी बनाती हो, संसार के उन्नत राष्ट्रों की स्थिति उनके इतिहास तथा निज राष्ट्र की वर्तमान स्थिति का हमें बोध कराती हो, उन उन्नत राष्ट्रों का अनुसरण कर निज राष्ट्र को वर्तमान अधोगति से निकालने की हममें आकांक्षा उत्पन्न कराती हो तथा इस पवित्र आकांक्षा को पूरा करने के लिए हमारे हृदयों में देशप्रेम, ऐक्य तथा स्वार्थत्याग का संचार करती हो। यही शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य है।

16

वैद्यक को फाँसी

अनादर और उपेक्षा के थपेड़ों ने वैद्यक को मृतप्राय पंजर की भाँति बना दिया है, परन्तु लोग उसे इस अवस्था में भी आँख भर नहीं देख सकते। वे उसके पंजर तक को फाँसी की टिकटी पर चढ़ाने में तर्स नहीं खाना चाहते। इंग्लैण्ड के लोगों ने अपने राजा चार्ल्स प्रथम को फाँसी पर लटका दिया था। इस घटना के वर्षों पश्चात् जब द्वितीय चार्ल्स गद्दी पर बैठा, तब उसने अपने पिता को फाँसी की आज्ञा देने वाले जजों की मृत देहोंतकको कब्रों से निकालकर फाँसी पर टाँग दिया। द्वितीय चार्ल्स ने इस प्रकार बदला लिया, और उनसे, जिन्होंने उसके पिता के रक्त से अपना हाथ रंगा था। यहाँ भी काम वैसा ही हो रहा है, अस्थि-पंजर को फाँसी दी जा रही है, परन्तु यह उस पंजर के पूर्व अत्याचारों के लिए नहीं, किन्तु उसके उस महापातक के लिए जो उसने अपने विपक्षियों का ज्ञान बढ़ा और उनका उपकार करके किया! यदि बात ऐसी नहीं है, तो हम पूछते हैं कि वैद्यक और अन्य देशी चिकित्सा प्रणालियों के बहुत सस्ते और उपयोगी होने पर भी अनेक पाश्चात्य विद्वानों और चिकित्सकों द्वारा वैद्यक की उपयोगिता भली-भाँति स्वीकृति होने पर भी, और इस पर भी कि भारतवर्ष भर के अस्पतालों के अफसर मेजर जनरल सर पेण्डे लूकिस साहब ने, जिन्होंने देश-भर के लिए मैडिकल रजिस्ट्रेशन ऐक्ट बनाए जाने का प्रस्ताव हाल ही में कौंसिल में पेश किया है, अपने मुखारबिन्द से इन वाक्यों को निकालें कि 'ज्यों-ज्यों मेरा इस देश का और उसके निवासियोंका ज्ञान बढ़ता जाता है त्यों-त्यों मुझे विश्वास होता जाता है कि वैद्यक और हिकमत की बहुत-सी बातें बहुत ही अच्छी हैं, और इसमें भी सन्देह नहीं कि सैकड़ों वर्ष पहले जो बातें वैद्यों और हकीमों के पूर्वज जानते थे, वही आजकल हमारे लिए नवीन आविष्कार हो रही हैं…" इन बातों के होते हुए भी वैद्यक और यूनानी की इतनी उपेक्षा क्यों? आज मद्रास और बम्बई में मैडिकल रजिस्ट्रेशन ऐक्ट पास होता है और कल बंगाल में, और परसों भारतभर के लिए तैयारी की जाती है। डा॰ नैयर मद्रास की कौंसिल में लोगों को विश्वास दिलावें कि इससे वैद्यों और हकीमों को हानि नहीं

पहुँचेगी। माननीय सर रिचर्डलेम्ब साहब ने इसी प्रकार की बात बम्बई कौंसिल में कही, परन्तु थोड़े ही दिनों में इन बड़े आदमियों के ये बड़े शब्द हवा में विलीन हो गए और आज हम देखते हैं कि मद्रास के प्रसिद्ध डा० कृष्णस्वामी अय्यर और बम्बई के डा० पोपट प्रभूराम वैद्य का नाम डाक्टरों की सभा से इसलिए काट दिया गया कि उनका सम्बन्ध आयुर्वेदिक संस्थाओं और सभाओं से है, और उनका यह काम डाक्टरों की सभा की दृष्टि से एक अयोग्य काम है! इसके अर्थ यह हैं कि यद्यपि वैद्यक और यूनानी उपयोगी, सस्ती और इस देश के निवासियों के अनुकूल हैं, यद्यपि अब भी उनमें ऐसे रहस्य हैं जिन्हें उनके विपक्षियों को उनके चरणों में बैठकर सीखने की आवश्यकता है, परन्तु तो भी उन्हें सहायता देने की आवश्यकता नहीं। इतना ही नहीं, जब वे अपने पैरों पर खड़े होकर चलने का यत्न करें, जब वे उनसे सहायता लें, जो उनका और नई प्रणालियों का अच्छा ज्ञान रखते हैं, जो उनसे प्रेम करते हैं, और जो उन्हें नए विपक्षियों के मुकाबले के योग्य बना सकते हैं, तो मीठी-मीठी बातों के कहते हुए भी विष उगलने से न चूका जाय, लड़खड़ाने वाले पैरों को धक्का देकर गिरा दिया और सहायक हाथ को पकड़कर तोड़ दिया जाय। यदि वैद्यक और यूनानी प्रणाली के चिकित्सक आज उतने होशियार नहीं, यदि आज उनमें से अधिकांश अपने विपक्षियों का मुकाबला नहीं कर सकते, तो इसके ये अर्थ नहीं कि उनकी प्रणालियाँ उपयोगी नहीं हैं, या वे विपक्षियों का मुकाबला ही नहीं कर सकते। उनकी उन्नति सैकड़ों वर्ष से रुकी हुई है। यदि विपक्षियों के रास्ते में भी वैसी ही विघ्न बाधाएँ आ पड़ें, यदि विपक्षी भी आश्रय-विहीन और शिक्षा की सुविधाओं से रहित हो जाएँ, तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि विपक्षियों की दशा उससे भी गई-बीती हो जाय, वैद्य और हकीम तो जंगल की रूखड़ियों से काम चलाने ही वाले ठहरे, परन्तु एलोपैथी के गर्व में फूले-फले फिरने वाले प्राणी से विदेशी दवा फरोशों के दलाल बन जाने के कारण कुछ करते धरते भी न बने।

सरकार एलोपैथी का पक्ष लेकर बड़ा भारी अन्याय कर रही है। उसका अन्याय रुपये की उस ढेरी की कल्पना करने से लग सकता है जो प्रति वर्ष विदेशी दवाओं के नाम पर हमारे घर से उड़ जाता है। उसका अन्याय इस बात के समझने से हो सकता है कि उसकी इस नीति से संसार की अत्यन्त प्राचीन और परम उपयोगी चिकित्सा-प्रणाली का गला घुट रहा है, उसकी उन्नति नहीं होने पाती, वह ज्यों की त्यों भी नहीं बनी रहने पाती, और देशवासी उसकी उपयोगिता, सस्तेपन से और अनुकूलता से लाभ उठाने से वंचित होकर अधिक खर्च और रोग के शिकार बनते जा रहे हैं। सरकार एक चिकित्सा प्रणाली का पक्ष लेने पर दूसरी

प्रणाली पर अन्याय करने से नहीं बच सकती। सबको मुक्त क्षेत्र न देकर वह पक्षपात का कलंक-टीका अपने माथे पर ले रही है। न्याय की बात तो यही होगी कि वह किसी भी प्रणाली को अपना आश्रय न दे, जैसा कि अमेरिका में होता है, और यदि आश्रय दे तो देश की मुख्य-मुख्य सभी प्रणालियों को दे। कलंक कुछ इस प्रकार भी दूर हो सकता है कि वह देशी प्रणालियों की बाधाओं को दूर कर दे और उन्हें बढ़ाने का अवसर दे।

17

शिक्षा का प्रश्न

वैसे तो हमारा देश-भर शिक्षा में, मनुष्य की बाहरी उन्नति के इस परमावश्यक साधन के विषय में, संसार-भर के सभ्य देशों से बहुत पिछड़ा हुआ है, परन्तु देश में भी हमारा प्रान्त इस विषय में जितना नीचे गिरा हुआ है उस पर विचार करने से हमें इस बात पर लज्जा आती है कि यह वही भूमि है जिसकी विद्यापीठों की सर्वत्र धूम थी, काशी और प्रयाग के विद्या-मन्दिरों में देश के कोने-कोने से लोग ज्ञान पिपासा को शान्त करने आते थे, लखनऊ इल्मे अदब का मर्कज़ था और इस विषय में जितना वैभव हमारा था, जितनी सम्पत्ति हमारे यहाँ थी, वह देश में किसी की नहीं थी और कहीं नहीं थी। आज यहाँ ऐसे आदमियों तक की संख्या जो किसी भाषा के अक्षरों ही से परिचित हों, टूटे-फूटे ढंग से अपने हस्ताक्षर ही कर लेते हों या ग़लत-सलत पत्र लिख सकते हों, इतनी भी नहीं, जितनी कि हमारे देश के अन्य प्रान्तों में है। अज्ञान के इस अन्धकार को मिटाने का यत्न क्या हो रहा है ? कोई भी ऐसा यत्न नहीं जिस पर सन्तोष किया जा सके। प्रजा में प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार करना गवर्नमेंट का कर्त्तव्य है, परन्तु कर्त्तव्य का जिस ढंग से पालन हो रहा है वह गवर्नमेंट की दृष्टि में बहुत अच्छा होते हुए भी कम-से-कम ऐसा नहीं है जिससे उद्देश्य की सिद्धि हो सके। कुछ काल गवर्मेण्ट ने दो बातों को गाँठ में कसकर बाँध लिया। वह उन्हें कभी बिसराने के लिए तैयार नहीं। एक तो शिक्षा की उत्तमता, शिक्षा अच्छे ढंग से दी जाय। यह अच्छा ढंग इसके सिवाय और कुछ नहीं कि क्लासों में लड़कों की संख्या कम कर दी गई। एक क्लास में 33 लड़के से अधिक नहीं होने पाते। क्योंकि कहा जाता है कि अध्यापक इससे अधिक लड़कों को एक समय में उत्तम रीति से नहीं पढ़ा सकता। उत्तम रीति से पढ़ाई का फल यह हुआ कि लड़कों को सदा नई-नई वस्तुएँ—किताबें, कापियाँ, पेंसिल आदि—खरीदने की ज़रूरत बनी रहती है और इस प्रकार छोटी-छोटी क्लासों तक में पढ़ाई का खर्च पहले से दुगुना हो गया है। खर्च का यह बोझ ग़रीब माता-पिता के कष्ट को और भी बढ़ा देता है, दूसरी बात यह है कि स्कूल भवन अच्छा हो, उसमें जी

खोलकर खर्च किया जाय। जिस देश में शिक्षा का देना और लेना सरलता और सादगी के नियमों के भीतर संचालित होता रहा हो, जहाँ पीपलों और बटों की छाया के तले मन्दिरों और मसजिदों में सादगी और सहिष्णुता की गोद में पढ़-पढ़कर शंकर और माधव, रामानुज और तुलसी, रामदास और चैतन्य, टोडरमल और फैज़ी, अब्दुल फजल और चिश्ती आदि महापुरुष उत्पन्न हुए हैं और जहाँ आधुनिक स्कूलों और कालेजों के डेढ़-डेढ़ सौ और दो-दो सौ लड़कों की क्लास में पुराने और अति उत्तम ढंग से और साधारण विद्यालय भवनों में पढ़कर रानाडे और गोखले, मेहता और मालवीय, सतीश और सप्रू, बनर्जी और जगदीशचन्द्र बोस और पी० सी० राय, गणेशप्रसाद, गंगानाथ झा और जियाउद्दीन, गुरुदास बनर्जी, आशुतोष मुकर्जी और सर रासबिहारी घोष, इत्यादि-इत्यादि ऐसे सैकड़ों विद्वान निकले हों, वहाँ इसके बिना कि उस भूमि ने अपना स्थान बदल लिया हो, उसने अपना जलवायु बदल लिया हो, उसके मनुष्यों का रंग-रूप और मिजाज बदल गया हो, अपनी इन दो उपजों से शिक्षा के मार्ग में इन रुकावटों को पैदा करके गवर्नमेंट कहाँ तक बुद्धिमता से काम कर रही है, यह बात इस प्रान्त के प्रत्येक उस ग़रीब माता-पिता से पूछी जा सकती है जो लड़कों के स्कूली खर्च से परेशान रहते हैं, और तो भी बहुधा उनके बच्चों को शिक्षा के लिए एक स्कूल से दूसरे स्कूल के दरवाज़े की ठोकरें खानी पड़ती हैं। फिर आगे की कठिनाइयाँ भी सुनिए! लड़का फेल हो तो दुगुनी फीस लगे, दो बार से अधिक फेल हो जाय तो उस बेचारे का किसी भी स्कूल में भी ठिकाना न लगे और यदि मैट्रिक्यूलेशन पास कर ले तो स्कूल-लीविंग परीक्षा पास के मुकाबले में उसकी कोई गिनती ही न हो। और ये सब कठिनाइयाँ इसी प्रान्त में हैं जो शिक्षा में सबसे पिछड़ा हुआ है, संतोष की बात है कि अन्य प्रान्तों में अभी यह रोग नहीं फैला है। स्कूलों से कालेजों की और भी बुरी दशा है। प्रतिवर्ष सैकड़ों युवकों को स्थान नहीं मिलता। फिर, इस प्रान्त के कालेजों के लड़के अन्य प्रान्तों के लड़कों की अपेक्षा परीक्षा में अधिक फेल होते हैं। कारण केवल यही हो सकता है कि या तो इन प्रान्तों के आदमियों के दिमाग़ उतने अच्छे नहीं जितने कि अन्य प्रान्तों के आदमियों के, या प्रयाग विश्वविद्यालय और उनके परीक्षकों का दिमाग उतना ठंडा नहीं जितना अन्य विश्वविद्यालय के परीक्षकों का। कालेजों पर खास तरह की सख्ती है। बड़ी मुश्किल से विश्वविद्यालय से उनका सम्बन्ध होने पाता है और फिर सदा उनके सिर पर बाल से बँधी हुई जल्लाद की तलवार लटकी रहती है। तनिक आँख चूकी और सिर पर गिरी। प्रयाग के कायस्थ पाठशाला कालेज में एफ० ए० तक शिक्षा होती थी। बी० ए० तक शिक्षा देने के लिए उसे लम्बी-चौड़ी भूमि की फिक्र करनी पड़ी,

ग्रौर ग्रब भूमि मिली तो 5 लाख रुपये ग्रौर चाहिए, कुछ ग्रालीशान भवनों के लिए ग्रौर कुछ ग्रन्य टीमटाम के लिए। यही हालत ग्रन्य गैर-सरकारी कालेजों की है। ग्रौर फिर विश्वविद्यालय के नियम, शिक्षा विभाग की मीठी मर्जी के विरुद्ध तनिक भी चले तो खैर नहीं। पढ़ने के लिए किताबों की पसन्द करने वाली जो कमेटी है वह ग्रपने ढंग की निराली चीज़ है। नज़र में जँचे हुए लोगों की बन ग्राती है। वे दोनों हाथों से पब्लिक के ज्ञान ग्रौर धन को लूटते हैं। हिन्दी संसार जानता है कि 'राम कहानी' ऐसी रद्दी पुस्तकें तक लड़कों का दिमाग़ बिगाड़ने ग्रौर ग्रभिभावकों का रुपया लूटने के लिए इस कमेटी से पास हो जाती हैं। एक 'राम कहानी' की कौन कहे, यहाँ ग्राँख बन्द कर ग्रनेक राम कहानियाँ कभी किसी की मुरौव्वत से ग्रौर कभी किसी की खुशामद से पाठ्य-पुस्तकों में शामिल हो जाती हैं। ग्रंग्रेजी की पुस्तकों का ठीका मेकमिलन, लांगमेन ग्रादि ग्रंग्रेजी प्रकाशकों ने ले रखा है। स्त्री-शिक्षा-प्रचार का ग्रत्यन्त बुरा हाल है। ये सब इस प्रान्त की बातें हैं। परन्तु ग्रन्य प्रान्तों की दशा भी मिलती-जुलती सी है।

18

किसे मेम्बर बनना चाहिए ?

इस समय प्रान्त के सार्वजनिक जीवन में बड़ी चहल-पहल दिखाई पड़ रही है। जगह-जगह पर लोगों की भलाई के नाम पर अपीलें हो रही हैं। नम्रता और शिष्टता का इतना ज़ोर है, और परोपकार और परहित चिन्ता का इतना शोर कि बस, यही मालूम पड़ता है कि इस पापमय भूतल पर एक बार फिर सतयुग का राज्य हो गया। परन्तु जानने वाले जानते हैं कि 'ढोल के अन्दर पोल' है। अपने मतलब के लिए लोकोपकार की माला फेरी जा रही है, और बिल्लैयाँ-दंडवतें हो रही हैं। यह सार्वजनिक चहल-पहल किसी जीवन का लक्षण नहीं मुर्दनी का चिह्न है। जनता मुर्दा है, उसे अपने हित, अपने अधिकार और अपने कर्तव्यों का ज्ञान नहीं है। चलते पुरज़े आदमी उसके इन मुर्दापन से खूब लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं, उसे मीठी बातों में फुसलाकर कौंसिलों और म्युनिसिपल बोर्डों के मेम्बर बनते हैं, कहते हैं कि हम लोगों के सेवक हैं, उनकी सेवा करेंगे। फिर हो जाते हैं लोगों के प्रभु, और अपने लाभ और यश की धुन में मस्त रहते हैं। उन्हें इस ऊँचे स्थान पर पहुँचानेवाली जनता उनकी अयोग्यता और बेवकूफी की करतूतों का फल सदा भोगती रहती है, परन्तु समय पड़ने पर उसे बात याद नहीं रहती, और मीठी बातों में आकर फिर वह उन्हींको सहारा देती है जो अपना मतलब सिद्ध करके उसका हाथ छोड़ देते हैं। अब इस प्रकार काम करने का समय नहीं रहा, हम देश और देशवासियों के नाम पर स्वराज्य का मतालबा करते हैं। हम डंके की चोट कहते हैं कि हमारे आदमी योग्य हैं, इसलिए देश का शासन सात समुद्र पार से आने वाले, देश की रीति और नीति से अनभिज्ञ मुट्ठी-भर विदेशियों के हाथ में न होना चाहिए, वह हमारे हाथों में हो। परन्तु हमारा इन बातों का कहना उस समय तक कोई मतलब नहीं रखता जब तक हम उन कामों में देश की हित-चिन्ता पूर्णतया प्रकट न करें जो हमारे हाथों ही में है। म्युनिसिपैलटी हमारे हाथ की कल है। म्युनिसिपैलटी के नौकर और मेम्बर हमारे सेवक हैं। यदि हम इन सेवकों के रखने में बुद्धि से काम नहीं ले सकते तो क्या हम अपने को स्वराज्य के योग्य कह सकते हैं? 'स्वराज्य' की बात जाने दीजिए, उस आदमी

ही का क्या मूल्य, जो अपना भला, बुरा नहीं विचार सकता ? और क्या हमारे अधिकांश वोट-दाता इसी प्रकार के नादान आदमी नहीं हैं ? क्या वे बहुत-सी हालतों में अमुक उम्मेदवार बाबू या खाँ साहब की खुशामदी से फूलकर अपना वोट उन्हें नहीं दे देते । क्या किसी दबाव के डाले जाते समय वे विचार करते हैं कि जो हमारे ऊपर दबाव डलवा रहा है वह इस काम के योग्य भी है या नहीं ? लोभ भी दिए जाते हैं । घर के सामने लालटेन लग जायगी, दरवाज़े पर छिड़काव हुआ करेगा, नालियाँ खूब साफ रहा करेंगी । रिश्ते ढूँढ़कर निकाले जाते हैं, और मित्रता के नाम की अपील की जाती है । परन्तु वोट देने वाले सज्जन ! तुम्हें अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिए कि वोट तुम्हारी अपनी चीज़ नहीं है कि जिसे चाहो दे डालो. जनता की ओर से तुम्हें यह अधिकार मिला है और देश का हित, और साथ ही, देश की सरकार भी चाहती है कि तुम उसका दुरुपयोग न करो, उसे, उचित पात्र ही को दो, किसी स्वार्थी और अयोग्य आदमी को नहीं, जो आदमी योग्य नहीं है, जो म्युनिसिपल विषयों को जानता तक नहीं, जो नागरिक के अधिकार और कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं रखता, जिसमें सोचने और बोलने की शक्ति नहीं, जो निडर और साहसी नहीं, जो सचाई के साथ प्रजा के हितों को अपनी दृष्टि के सामने रखने में समर्थ नहीं, जो क्षणिक विरोध का सामना करने के लिए तैयार नहीं, और जो इतना खुशामदी है कि अधिकारियों की इच्छा पर नाचना अपना कर्त्तव्य समझता है, जो इतना नीच है कि अपने लाभ पर लोगों के लाभ को न्योछावर कर देता है, जो इतना धूर्त है कि अपना यश बढ़ाने के लिए ऊँचे स्थान पर जाना चाहता है परन्तु दुहाई देता है पब्लिक के नाम की, ऐसे आदमी को यदि तुमने अपना वोट दे दिया और उसे मेम्बर बन जाने दिया तो तुमने केवल अपने अधिकारों का दुरुपयोग ही नहीं किया, किन्तु अपने नगर और देश की सार्वजनिक जीवन को भी धक्का पहुँचाया, और अनाचार को सदाचार के स्थान पर बैठाया । केवल सत्पात्र ही को अपना वोट दो । यदि उम्मेदवारों में पूरा योग्य कोई भी न हो तो उनमें जो सबसे योग्य हो उसे अपना वोट दो । अयोग्य आदमी अपनी खुशामद और प्रलोभन से तुम्हारी कृपा का पात्र कभी न बने । इतना ही नहीं, यदि वह मेम्बरी की हविस प्रगट करे तो ऐसे आदमियों की हिम्मत तोड़ने तथा सार्वजनिक जीवन को अधिक उच्च और उसमें जाने वाले आदमियों को कर्त्तव्यशील बनाने के लिए उचित है कि लोग उनका तिरस्कार करना सीखें, उनसे योग्य बनने के लिए कहें और यदि इसपर भी वे धृष्टता करें तो उनकी नीचता की खुल्लमखुल्ला आलोचना की जाय, उनको ज़बर्दस्ती पीछे ढकेल दिया जाय और इस बात का पूरा ख्याल रखा जाय कि वे कम-से-कम सार्वजनिक जीवन के [illegible] और मूर्खता [illegible] न घुसने पावें ।

19

क्या लड़ाइयाँ बन्द हो जाएँगी

संसार के अधिकांश शान्तिप्रिय बुद्धिमानों का ख्याल है कि संसार में एक दिन ऐसा होगा कि लड़ाइयां बन्द हो जाएँगी। लोग अपने झगड़े आपसी समझौते और शान्ति के साथ निपटा दिया करेंगे, एक-दूसरे का गला न काटा करेंगे। अभी हाल ही में, कुछ ही वर्ष पहले, नारमेन एंजल नाम के एक पाश्चात्य विद्वान् ने इस विषय पर एक विख्यात पुस्तक लिखी थी। हिन्दी में उसका अनुवाद ‘भारी भ्रम’ के नाम से हो गया। है। उसमें उन्होंने बड़ी-बड़ी दलीलों से सिद्ध किया है कि अब युद्ध से कोई लाभ नहीं है, जीतने वाले तक को गहरी हानि सहनी पड़ेगी और संसार-भर के राष्ट्रों का एक-दूसरे से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होता जा रहा है कि युद्ध ठानना परले सिरे की बेवकूफी है और उसका अधिक काल तक टिकना असम्भव होगा। प्रकाशित होने पर इस पुस्तक का बड़ी धूम से स्वागत हुआ बड़े-बड़े आदमियों तक ने उसे युगान्तर उपस्थित कर देनी वाली पुस्तक कहा। परन्तु इस महा समर में उसकी ख्याति का अधिकांश भाग धूल में मिला दिया तो भी शान्ति के उपासक अपने दावे से नहीं टले। युद्ध के आरम्भ ही में संसार-भर में एक शोर मचा था कि यह युद्ध तो होना ही था परन्तु अब उसी को अन्तिम युद्ध समझो, आगे मनुष्य पशुओं की भाँति एक-दूसरे की हत्या न करेंगे। इसमें तो शक नहीं कि बात बहुत अच्छी थी, परन्तु उसका स्वर भी धीमा पड़ गया। जर्मनी के बर्नहार्डी की किताब निकल पड़ी। पूरे जोरों और फौलादी दृढ़ता के साथ बर्नहार्डी ने कहा कि संसार भ्रम में पड़ा है। लड़ाइयाँ तो सदा ही होंगी, और लड़ाई लड़ने वाले ही संसार पर शासन करेंगे क्योंकि हाथ का बूता ही राज की शक्ति है, और शक्ति ही राष्ट्र की उन्नति का परम साधन। यहाँ भी पूरी दलीलों के साथ काम लिया गया था। प्रकृति, लक्ष्मी और सरस्वती—सभी शक्तिमान विजेता के सिर पर मुकुट रखते दिखलाई गई थीं। इस पुस्तक की भी बड़ी घूम रही। हाथों हाथ उसके अनेकों संस्करण निकल गए, लोगों ने खूब पढ़ा। हेग का शान्ति भवन और शान्ति की अटूट चर्चा उनकी दृष्टि से ही विलीन हो गई। परन्तु शांति के हामियों का सिलसिला

नहीं टूटा। वैज्ञानिक संसार अपने विज्ञान और उसके उत्पन्न किये हुए कील काँटों से लैस होकर शान्ति की उपासना के लिए सदा उत्सुक रहा है, शान्ति के आश्रय में वह फलता-फूलता है, इसीलिए यह स्वाभाविक है कि वह शान्ति की उपासना करे और उसकी वृद्धि चाहे। परन्तु यह वृद्धि कामना बड़ी ही विचित्र है। काँटे से काँटा निकालने का उपाय रचा जाता है। पहले मनुष्य एक-दूसरे के प्राण लेने के लिए तीर-कमान से काम लेते थे। होशियार वैज्ञानिक ने बन्दूक की रचना कर डाली। उसे आशा थी कि इस अत्यधिक भयंकर अस्त्र के डर से लोग हत्या की आदत छोड़ देंगे, परन्तु उसकी आशा पूरी न हुई। हत्या की इच्छा रखने वाले सभी मनुष्यों के हाथ में बन्दूकें पहुँच गईं और वे सब पहले से अधिक हत्या करने लगे। तोप तैयार हो गई, और इसलिए अब तो लोग डरेंगे। परन्तु बुद्धि रखने वाला मनुष्य अधिक काल तक डरा हुआ नहीं रह सकता। बन्दूक से एक ही आदमी मरता था, तोपों से सौ-सौ, हज़ार-हज़ार मरने लगे। इस महासंग्राम के अस्त्रों पर निगाह फेंकिए। उसकी तोपें, मशीनगन, काँटे, तार गैस, जलते हुए द्रव, तेज़ाब, हवाई जहाज़, सब मेरीन आदि पर विचारिए। कैसे-कैसे भयंकर अस्त्र हैं? कितने आदमियों के प्राण इनके कारण गए होंगे? आप जानते हैं वे कब बने? शान्ति के ही समय और उसी के भक्त वैज्ञानिकों द्वारा। नोबेल साहब 'डाइना माइट' के आविष्कारक थे। डाइनामाइट से बड़े-बड़े पहाड़ तक उड़ाये जा सकते हैं। नोबेल साहब बड़े शान्ति प्रिय थे। जब उन्होंने इस आविष्कार को किया तो समझे कि बस, मार ली बाजी, अब किसकी हिम्मत होगी कि लड़ाई करे, क्योंकि डाइनामाइट से हज़ारों आदमी दम-भर में उड़ा दिए जाएँगे और लोग इस प्रकार के महानाश को कब पसन्द करने लगे! परन्तु यह उनका भ्रम था। वे मर गए, नहीं तो देखते, उनका प्यारा डाइनामाइट आजकल कितने आदमियों के प्राणों का गाहक हो रहा है। इसी आविष्कार की बदौलत नोबेल ने अरबों रुपया कमाया। दानी भी खूब थे। शान्ति के नाम पर, साहित्य और कला की उन्नति के लिए इतना दे गए कि आज छः लाख रुपये साल उसका सूद आता है, जिसमें से सवा-सवा लाख के पाँच इनाम प्रत्येक वर्ष लोगों को दिए जाते हैं, हमारे रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी इसमें से एक इनाम पाया था। परन्तु एक ओर उनकी शान्ति की यह उपासना और दूसरी ओर उनका डाइनामाइट उसको मुँह चिढ़ाता है। परन्तु एक नोबेल ही क्यों उनके बहुत-से भाई-बन्धु इसी प्रकार के भ्रम जाल में पड़े हैं। अभी कुछ मास पहले, जब जर्मनी से अमेरिका के भिड़ जाने की पूरी सम्भावना थी, अमेरिका के बड़े भारी आविष्कारक एडिसन ने, जिनकी ईजाद में 'ग्रामोफोन' भी एक है, एक पत्र प्रतिनिधि से बड़ी गंभीरता के साथ कहा था कि "यदि जर्मनी और

अमेरिका में लड़ाई ठन गई तो फिर जर्मनी की खैर नहीं। क्योंकि मैं एक ऐसे यंत्र का आविष्कार कर चुका हूँ कि पलों में लाखों आदमी मारे जा सकते हैं, मैंने इस आविष्कार को अभी तक इसलिए प्रकट नहीं किया, कि संसार का बड़ा अकल्याण होगा। परन्तु लड़ाई छिड़ने पर अपने देश की ओर से मुझे उससे काम लेना ही पड़ेगा।" इडिसन की बात कुछ पुरानी हो गई। एक-दूसरे अमेरिकन वैज्ञानिक ने उनसे भी बढ़कर बात हाल ही में कही है उसका नाम 'निकोलो टिसला' है। उसका कहना है कि अब तोप, डाइनामाइट आदि को ताक में रखो। बिजली का ज़माना है, अब बिजली के अस्त्रों से ही काम लिया जाएगा। बिजली से किस प्रकार काम लिया जाएगा, यह उसने अच्छी तरह जान लिया है, परन्तु प्रकट इसलिए नहीं करता कि लड़ने वाले राष्ट्रों में से कोई उस उपाय का अवलम्बन कर डालेगा। उसके कथनानुसार बिजली द्वारा बड़े-बड़े भयंकर गोले हज़ारों मील दूरी पर कहीं से भी आसानी के साथ गिराए जा सकेंगे, और तुर्रा यह कि निशाना तनिक भी न चूकेगा। दूसरी बात यह होगी कि किसी भी जगह पर बिजली का ऐसा असर डाला जा सकेगा कि वहाँ के सारे प्राणी नष्ट हो जाएँ। तीसरी बात यह होगी कि बिजली का असर डालकर कहीं के आदमी ऐसे कर दिए जा सकेंगे कि वे हाथ-पैर ही न हिला सकें। मतलब यह है कि प्रलय का सामना है, हज़ारों मील दूर रहकर मृत्यु और नाश की वर्षा की जा सकेगी। टिसला साहब समझते हैं कि उनके इस आविष्कार से अब लड़ाइयाँ संसार से बिलकुल उठ जाएँगी। परन्तु क्या ऐसा ही होगा, इसमें सन्देह है। भयंकर अस्त्रों से अभी तक तो लड़ाई कभी रुकी नहीं। सदा दूसरे पक्ष ने ऐसे अस्त्रों के बनाने की चेष्टा की जिनसे शत्रु के भयंकर अस्त्र से रक्षा हो और उसे अधिक हानि पहुँचे। इसलिए शान्ति कामना के इस मार्ग में हमें अधिक विश्वास नहीं हम भी शान्ति चाहते हैं और वह विशेषतया इसलिए कि लड़ाइयों से जो सबसे बड़ा लाभ था अर्थात् ऐसे भयंकर अवसरों पर लोगों की वीरता, सहानुभूति, त्याग आदि उच्च विचारों का परिचय मिलना और उनका विकसित होना—वह तो आजकल के युद्ध में बहुत कुछ नष्ट होता जाता है, और यदि इसी प्रकार अस्त्र-शस्त्र भयंकर बनते गए, तो लाभ और भी कम हो जाएगा, क्योंकि मिनटों में लाखों बड़े-बड़े वीर-हृदय मच्छर और खटमल की मौत मार दिए जाया करेंगे, और उनके हौंसले और ऊँचे भाव उन्हीं के साथ दबे चले जाएँगे। परन्तु यह शन्ति मिले तो कैसे? अस्त्र-शस्त्रों की भयकरता की बदौलत तो मिलने से रही। हाँ, यदि जितनी शक्तियाँ इन भयंकर चीजों के बनाने में खर्च होती हैं, यदि उतनी शक्तियाँ मनुष्यों की बुद्धि के बनाने में खर्च हों—यदि मनुष्यों को समझाया जा सके, कि जबकि शान्ति के समय वे इतने सौम्य रहना अपना

कर्त्तव्य समझते हैं कि उस समय किसी मनुष्य को सताना तक अपराध समझा जाता है, तब बुद्धिमत्ता और उनकी उदारता इस बात को कैसे गवारा करती है कि अपने किसी एक व्यक्ति के मार डाले जाने पर वे दूसरे राज से लड़ाई मोल लें, और एक आदमी के लिए लाखों का खून बहा दें, या किसी मनचले राजा की इच्छा और हौसलों के पूरा करने के लिए वे अपने नौ-निहालों को कटा दें, या धन-लोलुप शक्ति सम्पन्न लोगों के इशारों ही पर वे अपना सर्वस्व नाश कराने के लिए तैयार हो जाएँ—तभी शान्ति की आशा की जा सकती है। जब हम दो आदमियों को एक-दूसरे से मार-पीट और गाली-गलौज करते देखते हैं, तब हम उनको नादान और बेवकूफ कहते हैं। परन्तु लड़ने वाले राष्ट्र क्यों नहीं नादान और मूर्ख कहे जाते?

क्या उनके होश-हवास दुरुस्त रहते हैं? क्या वे अपनी मूर्खता से लाखों ऐसे आदमियों का गला नहीं कटवाते और उनका घर नहीं उजड़वाते जो उनके इस हत्याकांड के कारणों से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रखते। हम साहस के क़ायल हैं। बल के क़ायल हैं। परन्तु बेवकूफी और मूर्खता के क़ायल नहीं। बेवकूफी और मूर्खता की राह में लोगों का सिर कटाते देखना वर्तमान उन्नत काल के संसार के लिए शर्म की बात होनी चाहिए। और जब इस शरम को वह बोध करने लगेगा तभी लड़ाइयों में कमी होगी, परन्तु वे बिलकुल बन्द हो जाएँगी, इसमें तब भी हमें सन्देह है।

20

शिक्षा का माध्यम

21 अगस्त सन् 1917 को शिमला में एक कान्फ्रेंस हुई थी। सर शंकरन नैयर उसके सभापति थे। सरकारी आदमियों के अतिरिक्त 21 गैर-सरकारी सज्जन भी उसमें उपस्थित थे। इन लोगों को इस बात पर विचार करना था कि स्कूलों में लड़कों को किस क्लास से अंग्रेजी पढ़ाई जाय, और उन्हें अपनी मातृभाषा के सीखने का कहाँ तक मौका मिले ?

यह नहीं कहा जा सकता कि कान्फ्रेंस देश की आवश्यकता या देश के बच्चों की मानसिक उन्नति के ख्याल से हुई थी, क्योंकि सारे वादविवादों से यही बात टपकी पड़ती है कि लड़कों के लाभ और उन्नति की बात दृष्टि के सामने उतने स्पष्ट रूप से नहीं जितना कि अंग्रेजी की पढ़ाई। इस दृष्टिकोण की रचना करने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती, परन्तु देश के अगणित बच्चों के सच्चे कल्याण और मानसिक उन्नति की दृष्टि से इस दृष्टिकोण को देश-भक्त भारतीय कभी अच्छा और उपयुक्त नहीं कह सकते। यह अत्यन्त खेद की बात है कि इस कान्फ्रेंस में देश के प्रतिनिधि की हैसियत से उपस्थित रहने वाले लोगों में अधिकांश अंग्रेजी की शिक्षा के इतने क़ायल हों कि वे न केवल अपनी मातृभाषा ही को भूल जायँ किन्तु बच्चोंके मानसिक बल और विकास, विदेशी भाषा की क्लिष्टता और कठिनता और उसकी दु:साध्य ग्राह्यता तथा विकास-बाधक गुण तक का तनिक भी ध्यान न रहे।

पृथ्वी भर के देशों में भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहाँ विदेशी भाषा के मुकाबले में मातृभाषा हेय समझी जाती है, जहाँ का बच्चा विदेशी भाषा के शुद्ध बोलने और शुद्ध लिखने में अपना परम गौरव मानता है और इस गुण के प्राप्त करने के लिए अपना स्वास्थ्य और धन अत्यन्त बे-दरेगी के साथ नष्ट करने में तनिक भी नहीं चूकता, और जहाँ का आदमी अपनी भाषा के—उस भाषा के जिसको उसने अपने माता के दूध के साथ पिया था, और जिसने उसे उस समय मदद दी थी जब उसे विदेशी भाषा का दस्ते-रहमत प्राप्त न था और जो अब भी उसकी

बातों को उसके करोड़ों भाइयों के पास तक पहुँचाने का काम करती है—टूटे-फूटे ढंग से बोलने में अपनी शान समझती है। काल-चक्र की यह कैसी विकट दिल्लगी है कि इस भूमि के होशियार और समझदार आदमियों पर विदेशी भाषा का ऐसा मन्त्र चल जाय कि उससे उनके हृदय की आँखें बिलकुल फूट ही जायँ, वे चीज़ों के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान ही को न जान सकें, ऊपरी आडम्बर के फेर में पड़कर वे सच्ची विद्वत्ता और मानसिक श्रेष्ठता को भूल जायँ, बस, उसी को विद्वान् समझें, जो उनकी भाँति विदेशी भाषा का जानकार हो, उसकी प्रतिष्ठा करें। तंगदिली और अदूरदर्शिता की हद हो गई! पतन और कितना अधिक हो सकता है? जर्मनी ने विजित पोलैंड की भाषा मेट देनी चाही और रूसियों ने फिनलैंड में यही अत्याचार किया, परन्तु पाठशालाओं से निकाल दी जाने पर भी मातृभाषा वहाँ वालों के हृदय से नहीं निकली, और पोलैंड और फिनलैंड के बच्चों ने रात को कोनों और झोपड़ों में उसे पढ़-पढ़कर आज तक उसे बचा रखा! परन्तु भारतवर्ष पर तो वह नहीं बीती जो पोलैंड पर बीती थी।

हम स्वीकार करते हैं कि हमारा विदेशी भाषा—अंग्रेज़ी—का पढ़ना आवश्यक है, क्योंकि इस देश पर अंग्रेज़ों का राज्य है। हम यह भी स्वीकार करते हैं कि अन्य देशों से पत्र-व्यवहार करने के लिए भी हमें अंग्रेज़ी की शरण जाने की आवश्यकता है। हमें विज्ञान की शिक्षा के लिए भी बहुत वर्षों तक अंग्रेजी का मुँह जोहना पड़ेगा। परन्तु ये सब बातें मिलकर भी हमें इस बात के मानने के लिए विवश नहीं करतीं कि स्कूल के बच्चों की पढ़ाई का माध्यम अंग्रेजी बनाई जाय। स्कूलों में अंग्रेज़ी केवल दूसरी भाषा के सदृश रहे। हमारे विरोधी कहेंगे कि फिर अंग्रेजी में अच्छी योग्यता कैसे प्राप्त होगी? इसकी आवश्यकता? यदि हम शुद्ध अंग्रेजी न लिख सकें या उसे शुद्ध रूप में न बोल सकें तो क्या हर्ज़ है? क्या हमारी भारतीयता कुछ घट जाएगी? बस, अंग्रेज़ी का इतना ही ज्ञान काफ़ी है जितने में कोई काम न रुके। जितने जीते-जागते राष्ट्र हैं उन सब में दूसरे देश की भाषा से लाभ उठाने का यही उद्देश्य रखें तो क्या बुरा है? हम इस झंझट में पड़ें ही क्यों, कि हम विदेशी भाषा अंग्रेज़ी के बोलने में ग़लती न करें, उसे उसी ढंग से लिखें जिस ढंग से अंग्रेज लिखता है। हमारे विरोधी कहेंगे कि यदि स्कूलों में लड़के अंग्रेजी में कच्चे रहे तो फिर वे कालेज में अंग्रेज़ी के लेक्चर कैसे समझ सकेंगे? परन्तु वे स्कूलों में अंग्रेज़ी समझने में कच्चे कैसे रहेंगे? यह तो पढ़ाने के ढंग पर निर्भर है। किताबों के रटने पर ज़ोर न दीजिए, भाषा के सीखने पर ज़ोर दीजिए। जापानी लड़के कालेजों में अंग्रेजी या फ्रांसीसी या जर्मन भाषा के लेक्चर सुनते और समझते हैं, तब फिर भारतीय लड़कों ने कोई ऐसा पाप नहीं किया है कि ढंग से शिक्षा पाने

पर वे अपने जापानी भाइयों के सदृश न हो सकें। स्कूलों में देशी भाषा के माध्यम बनाने के विरुद्ध एक बड़ी 'जोरदार' दलील पेश की जाती है। अजी, इस देश में तो अगणित भाषाएँ हैं, किस-किस में शिक्षा दी जाय, और फिर उनमें किताबें भी तैयार नहीं···परन्तु यदि कुछ दया और धर्म के साथ बात देखी जाय, तो मालूम होगा कि भारतीय भाषाओं में केवल 8-10 ही ऐसी हैं जिनसे देश-भर का काम अच्छी तरह चल सकता है। साढ़े 31 करोड़ आदमियों के देश में एक दर्जन भाषाओं का होना बहुत नहीं है। परन्तु विरोधी मुँह विचकाकर कहेंगे कि इन 10-12 भाषाओं में है ही क्या ? बेशक, अंग्रेज़ी के मुकाबले में कुछ नहीं है, परन्तु जनाब, यदि इच्छा कीजिए तो सब कुछ हो सकता है। 1880 से पहले जापान की भी तो यही दशा थी। परन्तु दूरदर्शी काउण्ट ओकूमा ने 1882 में वसीडा विश्वविद्यालय की स्थापना की। और आज हाल यह है कि इस विश्वविद्यालय में 180 प्रोफेसर लगभग 7000 विद्यार्थियों को साहित्य, क़ानून, राजनीति, अर्थ-शास्त्र, व्यापार-शास्त्र, विज्ञान आदि की शिक्षा देते हैं। किसी विदेशी भाषा में नहीं, जापानी भाषा में, जापानियों ने विदेशी ग्रंथों को जापानी बाना पहना दिया। हम भारतीय भी ऐसा कर सकते हैं। सर सैयद अहमद ने उर्दू के लिए यह काम आरम्भ किया था। तब से तो बहुत उन्नति हो गई है। यदि लोग कुछ करना चाहें तो अब तो उन्हें बहुत-से साधन प्राप्त हैं। परन्तु, क्या वे ऐसा करेंगे ? ऐसा करने पर अंग्रेजी भाषा की भक्ति में बाधा पड़ेगी, विद्वत्ता और प्रतिष्ठा की ठेकेदारी टूट जाएगी, और बहुत-से ढोंगों का भण्डा-फोड़ हो जाएगा। हम नहीं समझते, पुराने आदमी इस परिवर्तन के देखने का ताब रखते हैं। इसलिए, हमारे हाथ में इसके सिवा और कुछ नहीं कि हम चुपचाप समय के ज़बर्दस्त हाथ को आगे की श्रेणी साफ करते हुए देखें ,या देखें किसी युगान्तर का अवतरण, जो एक झटके के साथ पुरानी इमारतों को ढा दे और उनके स्थान पर नई इमारतें रच दे।

21

ग़रीबों का कष्ट

एक नई मुसीबत उठ खड़ी हुई है। रोज़ काम में आने वाली चीज़ें महँगी होती जा रही हैं। अन्न, नमक, तेल, कपड़ा आदि का भाव बढ़ता जा रहा है। अन्य वस्तुओं के भाव भी चढ़ गए हैं, परन्तु उनके महँगे हो जाने से कोई विशेष कष्ट नहीं हो सकता। परन्तु अन्न, नमक, तेल और कपड़ा ऐसी चीज़ें हैं जिनके बिना किसी का गुज़ारा भी नहीं। इनका दिन ब दिन महँगा होता जाना बड़ा ही कष्टकर हो रहा है। इस कष्ट से लोग घबड़ा तक उठे हैं। बंगाल के कितने ही गाँवों में लूट-मार हो गई। लुटेरों और डाकुओं ने लूट-मार नहीं की, उन लोगों ने ऐसा किया जो अच्छे गृहस्थ हैं। जब भूखों मरने लगें और तन पर कपड़ा न रहे तब वे बेचारे क्या करें? जो लोग इन ग़रीबों पर दोषारोपण की अंगुली उठाते हैं, यथार्थ में वे उनकी हालत को तनिक भी नहीं जानते। चोरी और डाकेजनी अत्यन्त बुरी हैं उनके लिए जिनके पास खाने और पहनने को हो। परन्तु जिनके पेट क्षुधा से जल रहे हों, और जिनके शरीर नंगे हों, उनके छीना-झपटी कर बैठने पर खुद सुख से दिन बिताते हुए ईमानदारी का उपदेश देना एक ऐसी ज़बर्दस्त ठगी और बदमाशी है जिसको कभी माफ़ नहीं किया जा सकता। भला इसी में है कि ऐसे उपदेशक अपने उपदेशों को अपने ही पास रहने दें। आनन्द से दिन बिताने और सुख से रात काटने वालों को कोई हक नहीं कि वे क्षुधा से पीड़ितों को सूखे उपदेश दें। वे कहते हैं कि वे भलमंसाहत के नाम पर ऐसा करते हैं। परन्तु वे क्या जाने कि अपने रंग-ढंग वैसे ही रखकर ऐसा करने में वे भलमंसाहत का खून करते हैं। हम मूल विषय से कुछ दूर हट गए। हाँ, तो बंगाल में लूट-मार तक का जन्म हो गया है। कलकत्ता के ग़रीब बहुत परेशान हैं। 'इंडियन एसोसियेशन' ने सरकार से प्रार्थना की है कि कपड़ा, तेल, अन्न आदि वस्तुओं के भाव को सस्ते करने के उपाय होने चाहिए नहीं तो ग़रीबों को बड़ा कष्ट होगा, और उत्पात आरम्भ हो जायँगे। बम्बई में भी ग़रीबों की शिकायतें बढ़ गई हैं। चीज़ें तो महँगी हैं ही, घरों के किराये भी बढ़ाए जा रहे हैं। घर के मालिकों को अच्छा मौका मिला है। वे लोगों को घरों से निकल

जाने का नोटिस दे रहे हैं। जब किरायेदार गिड़गिड़ाता है तब मालिक-मकान साहब मकान का किराया ड्योढ़ा या दुगुना तक करके मान जाते हैं। चीज़ों की महँगी का बड़ा भारी कारण युद्ध है। युद्ध के कारण चीज़ों की खींच युद्ध-क्षेत्र में तो है ही, पर साथ ही उनको देश के इस भाग से उस भाग में ले जाने के लिए रेलगाड़ियों और विदेशों से भारत में लाने के लिए जहाज़ नहीं मिलते। ऐसी हालत में कोयला, तेल, नमक, कपड़ा, अन्न आदि की महँगी की बात तो कुछ-कुछ समझ में आती है, परन्तु यह बात खाक भी समझ में नहीं आती कि घरों के किराये क्यों बढ़ाये जा रहे हैं? क्या मकान भी युद्ध क्षेत्र में भेजे जा रहे हैं, या वे बाहर से रेल या जहाज़ पर लदकर आया करते थे, सो अब नहीं आते? देश-भर के अन्य नगरों, कसबों और गाँवों में भी महँगी की रफ्तार है जो कलकत्ता और बम्बई में है। ग़रीब आदमियों का कष्ट बढ़ता जाता है। कुछ ही महीनों से लोगों का यह कष्ट बढ़ा है और खयाल किया जाता है कि यह कष्ट कुछ दिनों तक तो बढ़ता ही जाएगा। युद्ध के बाद भी यह कष्ट शीघ्र ही कम न होगा। यूरोप के देश गला काटने के सामान बनाने में भिड़े हुए हैं, शरीर के पोषण के सामान के बनाने की ओर ये ध्यान ही नहीं दे सकते। युद्ध के पश्चात् भी उस समय तक जब तक कि वे अपने घर को ठीक-ठीक संभाल न लेंगे तब तक बाहर ही के अन्न और अन्य सामग्रियों पर अपने दिन गुज़ारेंगे। इधर जब तक युद्ध है तब तक भारत में अधिकांश लोग युद्ध के सामान के बनाने और जुटाने ही में लगे रहेंगे और रेल और जहाज़ भी इन्हीं कामों में लगे रहेंगे। और युद्ध के पश्चात् भी, उस समय तक, जब तक सेनाएँ और उनके लगुए-भगुए अपने-अपने स्थान पर नहीं पहुँचा दिए जाते तब तक रेल और जहाज़ देश में सामग्रियों को उचित रूप से पहुँचाने में सहायक नहीं हो सकेंगे। युद्ध के बन्द होने का अभी कोई लक्षण नहीं दीख पड़ता है। पता नहीं, कि वह साल-भर ही चले, या अधिक काल तक पैर पसारे। इन कारणों से यह कहना आशंका का बढ़ाना नहीं है कि यह महँगी एक वर्ष से कम में दूर होती नज़र नहीं आती। यह ऐसी ही रहेगी, यह भी नहीं कहा जा सकता। 5-6 मासों में यह खूब बढ़ी। आगे इसके और भी अधिक बढ़ने की आशंका है। नतीजा भयंकर-सा दीख पड़ता है। ग़रीबों की दुर्दशा हो जायगी जो लोग समर्थ हैं वे अभी से चेतें। ईमानदारी के उपदेशों से काम न चलेगा, हाथ-पैर हिलाने, पूरा प्रबन्ध करने की आवश्यकता है। बंगाल की सरकार, कलकत्ता कारपोरेशन, बम्बई कारपोरेशन और बम्बई की सरकार महँगी की आफत का कुछ-कुछ मुकाबला करने की तैयारी कर रही है। अन्य स्थानों की म्युनिसिपैलटियों और सरकारों को भी अपनी निद्रा भंग करनी चाहिए। म्युनिसिपैलटियाँ इस मामले में बहुत कुछ कर सकती हैं। दिल्ली की

म्युनिसिपैलटी ने मार्ग दिखा दिया है। प्रत्येक मोहल्ले में नमक, तेल, मोटे कपड़े, कोयले आदि की दूकानें क़ायम करा देनी चाहिए। इन दूकानों पर ग़रीब आदमियों को फुटकर सौदा लागत दाम पर मिलना चाहिए। प्रान्तिक सरकारों को सट्टे और माल बन्द कर रखने के विरुद्ध कुछ काम करना चाहिए। यदि सट्टे कम पड़ जाएँ तो चीज़ें उतनी महँगी न रहें। यह इस तरह हो सकता है कि नमक, तेल, मोटे कपड़े आदि वस्तुओं का स्टाक कोई व्यापारी अपने यहाँ इस गरज़ से जमा न रख सके कि वह बाज़ार-भाव बढ़ाकर उससे लाभ उठावे। जो लोग दानी हैं वे इस अवसर पर अपने पैसे का बहुत अच्छा उपयोग कर सकते हैं। ग़रीबों के काम में प्रतिदिन आने वाली चीज़ों की फुटकर बिक्री लागत दामों पर कराकर वे बहुत बड़े यश के भागी बन सकते हैं। कुछ भले आदमियों का कहना है कि बस, इतने ही से घबड़ा गए, यूरोप के देशों को देखो वे कितना सह रहे हैं और खाने-पीने की चीज़ों की भी उन्हें कितनी तकलीफ़ है। उनकी बात किसी अंश तक ठीक है। यूरोप वाले कष्ट उठा रहे हैं परन्तु उनका कष्ट हमारे कष्ट के समान नहीं है। वे जानते थे कि यह कष्ट होगा। हम नहीं जानते थे कि हमारे सिर पर भी यह आफत आएगी। वे अमीर हैं, बहुत कुछ सह सकते हैं। हम अत्यन्त ग़रीब हैं, तनिक से तनिक आर्थिक कष्ट से हमारे प्राणों पर आ बनती है। जिन ग़रीब बंगालियों ने कष्ट से बहुत व्यथित होकर दूकानें लूट-लाट ली थीं उन पर मुकदमा चल रहा है। यह महँगी के इस रोग का कोई अच्छा इलाज नहीं है। जब लूटमार हुई थी तब क़ानून तो उनका दामन पकड़ेगा ही जिन्होंने ऐसा किया था, फिर उन बेचारों ने चाहे जितने कष्ट के पाने पर वैसा किया हो, परन्तु न्याय के दण्ड को ग्रहण करने वालों को यह अधिकार कहाँ से प्राप्त हुआ कि वे इन ग़रीबों को मामूली अपराधी न मानें और उनके लिए विशेष अदालतें रचें, जैसा कि हुआ है। विशेष अदालतें शायद विशेष सजाएँ देने के लिए रची गई हैं। यह सरासर अन्याय है। इसे दूर होना चाहिए और ग़रीबों की इस आफ़त में सरकार को अधिक सहानुभूति की भावना से काम लेना चाहिए।

22

युद्ध और खेती

दिल्ली की युद्ध-कान्फ्रेंस के निर्णय के अनुसार काम किये जाने की तैयारियाँ होने लगी हैं। सरकार ने कहा है कि साल-भर में पाँच लाख सिपाहियों की भरती की जाएगी। इस बात पर और भी अधिक ज़ोर देने के लिए प्रान्त-प्रान्त के शासक दरबार कर रहे हैं और शायद आगे चलकर ज़िले-ज़िले में इस विषय के दरबार हों और कमेटियाँ बनें। कह नहीं सकते कि किस प्रकार काम होगा और लोगों को सिपाही बनने के लिए किन-किन रीतियों से उत्साहित किया जाएगा। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि पाँच लाख सिपाहियों का देना भारतवर्ष के लिए कठिन बात नहीं है, और शासकों के पास साधन भी इतने काफ़ी हैं कि इतने आदमियों की भरती वर्ष-भर में अवश्य हो जाएगी। शासकों को इस काम में प्रजा से भी सहायता मिलेगी। कांग्रेस कमेटी भरती के पक्ष में अपना मत प्रकट कर चुकी है, और मिसेज़ ऐनी बीसेण्ट युवकों को फ़ौज में भरती होने के लिए उत्तेजित कर रही हैं। हम हृदय से चाहते हैं कि सरकार को पाँच लाख सिपाहियों की प्राप्ति में पूरी सफलता मिले। दिल्ली कान्फ्रेंस ने कुछ बातें और भी तय की थीं। उनमें से एक थी खेती के विषय में। हम उसे भरती के प्रश्न से कम महत्त्व का नहीं समझते। हमारा विनीत निवेदन है कि सरकार को भी उसे वैसा ही समझना चाहिए। दिल्ली कान्फ्रेंस का प्रस्ताव यह था कि प्रान्त-प्रान्त और देशी राज्यों में भी ज़िला-कमेटियाँ बनें जो कृषि-विभाग के डायरेक्टर के सहयोग से यह सलाह दें कि कहाँ पर किस चीज़ के पैदा होने की विशेष सम्भावना है, और साथ ही खेती की उन्नति करने वाली खाद, औज़ारों आदि के विषय में ऐसी बातों का प्रचार करें जिनसे किसानों को लाभ पहुँचे और गवर्नमेंट को बतलावें कि़स-किस प्रकार व्यर्थ पड़ी हुई भूमि में भी पैदावार हो सकती है। पता नहीं सरकार इस प्रस्ताव के अनुसार क्या काम करना चाहती है? सम्भव है कि उसका ध्यान इस ओर गया ही न हो। पर ऐसा होना नहीं चाहिए। युद्ध के कारण खेती के मामले में सचेत रहने की विशेष आवश्यकता है। यह न केवल इसलिए कि युद्ध की सरगर्मी में हम खेती से आदमियों को हटाकर उसे हानि न पहुँचा

दें, किन्तु इसलिए भी कि युद्ध की तैयारी के लिए अन्न का पूरा स्टाक होना बड़ा ही आवश्यक है। इंग्लैंड का ध्यान इस ओर बहुत पहले पहुँच चुका है। इंग्लैंड में तो एक प्रकार से किसानों का धन्धा नष्ट ही हो चुका था। इंग्लैंड वालों का गुज़ारा कठिन था, यदि उनके खाने-पीने की चीज़ें दूसरे देशों से न आया करतीं। परन्तु युद्ध के छिड़ते ही बुद्धिमान अंग्रेज़ जाति का ध्यान तुरन्त इस भयंकर अवस्था की ओर गया। खेती के प्रश्न पर खूब विचार किया गया, और देश की पड़ी हुई भूमि के जोतने-बोने का भरपूर उद्योग किया जाने लगा। किसानों को समझाया गया कि किस प्रकार फ़सलें खूब तैयार हो सकती हैं, बीज कैसे होने चाहिए, खादों से किस प्रकार काम लिया जाय, जानवरों की नस्ल किस प्रकार उम्दा की जाय और खेती के नये और अच्छे औज़ारों का किस प्रकार प्रयोग किया जाय। इंग्लैंड की हालत पहले से अब बहुत अच्छी है। इंग्लैंड से भी अधिक तत्परता से जर्मनी ने काम किया। अपनी इस होशियारी के कारण ही जर्मनी के प्राण बच गए, नहीं तो वह बे-मौत मर गया होता। चारों ओर से वह ऐसे देशों से घिरा हुआ है जहाँ से उसे अन्न मिल ही नहीं सकता था। 1894 तक यह हालत थी कि जर्मनी भी खाने-पीने की चीज़ों के लिए दूसरे देशों का मुँह जोहा करता था। उस समय बुद्धिमान जर्मनों के सामने प्रश्न उठा कि देश में खेती की वृद्धि होनी चाहिए। या नहीं ? अन्त में, उनकी राय यह पड़ी कि व्यवसाय बढ़े, परन्तु खेती भी बढ़े। वैज्ञानिक ढंगों की मदद से जर्मनी अपने ही घर में अपने खर्च लायक अन्न पैदा कर लेता था। जब लड़ाई छिड़ी तब उसके पास थोड़ा ही सा गल्ला था। खयाल था कि थोड़े ही काल में उसके अन्न का दिवाला निकल जाएगा, और उसे भूख के मारे युद्ध में परास्त हो जाना पड़ेगा परन्तु इस प्रकार की कयाफ़ा-बाजियों में पड़े रहने वालों से जर्मनी कहीं काइयाँ निकला। उसके विज्ञान-वेत्ता खादों की परीक्षा में भिड़ गए, और थोड़े ही काल में जर्मनी में सरकारी मदद से कुछ ऐसे कारखाने स्थापित हो गए कि जिनका काम केवल इतना ही था कि प्रति दिन वे हज़ारों मन खाद तैयार करें। इस खाद से जर्मनी के खेत खूब उपजाऊ बनाये गए, और इस प्रकार जर्मनी के सिर पर आया हुआ संकट टल गया। जर्मनी की होशियारी जर्मनी के बाहर भी काम आई। उसने बेलजियम पर कब्ज़ा किया। वहाँ उसने बड़ी तोड़-फोड़ मचाई, परन्तु बेलजियम की खेती के काम में उसने तनिक भी धक्का न लगने दिया और वहाँ के किसानों की खाद, बीज, औज़ारों से पूरी सहायता की। इसका फल यह हुआ कि बेलजियम में फ़सलें खूब हुईं और उनसे जर्मनी ने लाभ उठाया। ऐसा ही उसने पोलैण्ड आदि में भी किया। अमेरिका कृषि-प्रधान देश है। उसकी बदौलत संसार के बहुत-से देशों का पेट पलता है। लड़ाई छेड़ते ही उसने भी अपनी खेती

को फिर से सँभाला। लड़ाई छेड़ने के दो सप्ताह बाद ही किसानों को परिश्रम और उद्योग के साथ काम करने की सूचना दी गई। फिर 27 लाख रुपये की रकम इसलिए मंजूर की गई कि पौधों में कीड़े न लगने पावें, 75 लाख की रकम इसलिए मंजूर की गई कि किसानों को अच्छा बीज दिया जाए, 1 करोड़ 30 लाख इसलिए कि अन्न अधिक मात्रा में उत्पन्न हो और वह नष्ट न होने पावे, और 76 लाख इसलिए कि अन्न के व्यापार और खपत के विषय में सूचनाएँ प्राप्त की जाएँ। 20 लाख रुपये इसलिए भी अलग किये गए कि किसानों को विज्ञापनों द्वारा नई-नई बातें बतलाई जाएँ। जर्मनी की भाँति अमेरिका ने भी अपने रसायन-शास्त्री खादों की खोज में लगा दिये। इस प्रकार अमेरिका ने अपनी फसलों को खूब बढ़ा रखने का पूरा आयोजन कर लिया है। इस देश में भी इसी प्रकार के आयोजन के किये जाने की आवश्यकता है। यह आवश्यकता उसी समय से थी जब से युद्ध छिड़ा था। अब तो यह और भी बढ़ गई है क्योंकि भारतवर्ष का बहुत-सा अन्न उन लोगों के खर्च के लिए जाता है जो रणक्षेत्रों में हैं, और इसलिए तथा अन्य कारणों से भी देश में अन्न का भाव इतना चढ़ गया है कि गरीबों को बहुत कष्ट है। इसमें सन्देह नहीं कि वे सब उपाय यहाँ नहीं किये जा सकते जो इंग्लैंड, जर्मनी और अमेरिका में हो सके, क्योंकि यहाँ के आदमी विज्ञान से बहुत दूर हैं, और किसान लोग बिलकुल अपढ़-कुपढ़ हैं। परन्तु अच्छे बीज, अच्छी पैदावार, खाद, कीड़ा न लगने देना आदि ऐसी बातें हैं जिनके विषय में यदि मोटे-मोटे और उपयोगी ज्ञान का प्रचार किया जाय तो यह सम्भव नहीं कि हमारे किसानों की समझ में वह आवे ही नहीं और उससे कुछ न कुछ लाभ न हो। किसानों की समझ में खेतों की उन्नति का संदेश लाने के लिए इस बात की भी बड़ी आवश्यकता है कि सरकार अपना चंगुल कुछ ढीला करे और लगान के क़ायदे-क़ानून को ऐसा पलटे कि किसान अपनी दशा सुधार सकें। सरकार की इसमें कोई हानि नहीं है, और न युद्ध के कारण उसको इस हेर-फेर करने में कोई एतराज़ हो सकता है। हमारे खयाल से तो, सरकार लाभ में रहेगी, यदि वह ऐसा करे, क्योंकि ऐसा न करने पर वह उस अशान्ति की आग को रोक नहीं सकेगी जो किसानों की दुर्दशा के कारण गाँवों में फैली हुई है और जो किसी न किसी समय उस प्रकार उठे बिना नहीं रह सकेगी जैसी कि वह खेड़ा और चम्पारन में उठी।

23

कर्मक्षेत्र

महान् और व्यापक निमन्त्रण ! इतना महान् कि अभूत-पूर्व और इतना व्यापक कि अचिन्तनीय। संसार की उन समस्त शक्तियों की ओर से, जिनमें समय के महा-यज्ञ में आहुतियों के देने का बल है, और जो अपने अन्तर-तर में धारण करती हैं इस दृढ़ विश्वास को कि कर्म-स्थली पर अपना पद-चिह्न स्पष्ट रूप से छोड़े बिना न मानेंगी। और, सबके लिए, बड़ों के लिए जो अभी तक संसार के हृदय-वल्लभ थे, और दीनहीन-जनों के लिए जो अभी तक केवल पद-दलित रज-कण थे। उनके लिए जिनकी सत्ता की छाप सब कुछ पर थी, और उनके लिए जिनकी अपनी खाल तक अपने-आप की न थी। उनके लिए जिनके चरणों पर उज्ज्वलता और महत्ता मस्तक नत करती थी, और उनके लिए जो क्षुद्रता और निकृष्टता की इकलौती सन्तति थे। उनके लिए जिनका सिर आकाश में था, और उनके लिए जिनका माथा धरणी पर। तम-विनाशिनी बिजलियाँ पहले भी चमकी थीं। घन-घटा उड़ा देने वाली आँधियाँ पहले भी आई थीं। प्रातःकालीन सूर्य की किरणों ने सुषुप्ति-लीन प्राणियों को पहले भी जागृति का मन्त्र सुनाया था, और सायंकालीन चन्द्र की निर्मल ज्योति ने क्लान्त, विगलित और निराश पथिक को पहले भी विश्राम का सन्देश दिया था। परन्तु, युग की यह लहर अन्य सभी लहरों से बड़ी है। पुरानी जड़ें उखड़ गईं, नई नींवों को पानी मिला। महल ढह गए। झोपड़ियों पर कंगूरे लगे। सिरों पर चलने वाले पैरों को पृथ्वी का परिचय प्राप्त करना पड़ा, और धूल झाड़ने वाली शिखाओं ने स्वाधीन वायु का अभिवादन किया। पराधीनों को स्वाधीनता का सन्देश मिला, और निरंकुशों को संयम का। पद-दलित ऊपर उठ। स्वतन्त्र वायुमण्डल में वे भी श्वास ले सके। स्वच्छ आकाश को वे भी देख सके। सूर्य के प्रकाश और पवन के झकोरों को वे भी अपना समझ सके। सत्ताधारी समझे कि प्रकृति का लाड़ केवल उन्हीं के लिए नहीं है, दैवी हाथों द्वारों जिस समय सुखों की रचना हो रही थी, उस समय उन पर केवल उन्हीं के नाम की मोहर नहीं लगा दी गई थी, शुद्ध रक्त और बहु सम्पदा देवत्व का पट्टा

नहीं और उनका अभाव हीनता का चिह्न नहीं। देवता बनने की आवश्यकता भी नहीं। दैविक आह्वान की यह वाणी संसार की आत्माओं को मनुष्य—केवल मनुष्य —बनने का सन्देश सुना रही है। वाणी दाबी गई। उसका गला घोंटा गया। उसे पर्दे में छिपाया गया, और पृथ्वी में गाड़ा गया। परन्तु, उसका विनाश चाहने वाले आश्चर्य चकित हैं। वह दाबी जाती है, पर उखड़ पड़ती है। वह उखाड़ी जाती है, पर फल पड़ती है। विनाश के प्रहार उसे गुणित होते जाने का बल प्रदान करते हैं, वे उसे फैलाते और छिछलाते हैं। संसार के पिपासु-जन, सतृष्ण नेत्रों के साथ उसके जीवन-स्रोत से अपनी पिपासा बुझाने के लिए आगे बढ़ते हैं। वह बड़ी-बड़ी भावनाओं की रचना कर रही है, भारी तैयारियों के साथ और गहरे आधारों पर। उसने आत्म-विकास और आत्म-निर्णय की घोषणाओं से दिग्दिगन्त गुंजा दिया है। उसकी प्रतिध्वनि कहती है। लूट बुरी है, कोई न लूटे और कोई न लुटे, इसलिए व्यापारिक लूट की अब इतिश्री हो जाय। वह कहती है, पराधीनता बुरी है, कोई पराधीन न बनावे, इसलिए, दासता की शृंखलाएँ अब विश्राम लें, बँधे हुए हाथ-पैर अपनी रक्षा का प्रबन्ध अपने-आप कर लेंगे। वह कहती है, अत्याचार बुरा है—राष्ट्रों का, राष्ट्रों पर उसी प्रकार जिस प्रकार व्यक्तियों का, व्यक्ति पर—कोई किसी पर अत्याचार न करे और कोई किसी का अत्याचार न सहे, इसीलिए, राष्ट्रीय स्वार्थ-लोलुपता को वश में रखने के लिए, राष्ट्रों की पंचायत का निर्माण हो। वह संकेत करती है समाज के भारी बोझ से पिसते जाने वाले ग़रीबों की ओर। करोड़ों आदमियों का मनुषत्व थोड़े-से आदमियों की विलासिता की वेदी पर बलि हो रहा है। शताब्दियों तक दीन-हीन किसान विलासिता के इस मंच के सामने बेदर्दी से कुर्बान होता रहा। अब, संसार के अनेक अंचलों में, किसान और सभी अंचलों में मज़दूर, इस क्रूर सिंहासन को ऊँचा बनाये रखने के लिए अपने शरीर और मन को नींव में बिछाया करते हैं। भयंकर और क्रूर है यह दृश्य! संसार इस बीभत्सता को अतीत काल से देख रहा है। परन्तु पुराने पाप का नाम पुण्य नहीं हुआ करता। स्वार्थ के इस रंगमहल के दिन अब इने-गिने रह गए हैं। दैविक आह्वान की वाणी कहती है कि कोई भी, इस प्रकार, स्वार्थ में डूबा रहे, और कोई भी इस प्रकार इस स्वार्थ-साधन की हाट में शरीर और मन को न बेचें। प्रतिध्वनि गूंज रही है, और संसार देख रहा है कि अब श्रम और श्रमजीवी भूतल पर रेंगने वाली चींटी नहीं रहे। वे उठ रहे हैं और जान चुके हैं, कि प्रकृति के उद्यान के फल किसी एक के हिस्से में नहीं पड़े, बहती नदी के पानी और चलती वायु के झकोरों पर सभी का दावा है। सोती हुई आत्मा आँखें भीजती हुई उठ पड़ी है। अब तक अज्ञात, कोने में भटकने वाली, बल-राशि ज्ञान का नेत्र पाकर, आज्ञा-

वाहन के लिए हाथ बाँधकर प्रस्तुत हुई है। जकड़ी हुई वृत्तियों ने क्षेत्र पाया है, और बँधी हुई बुद्धि ने मार्ग। अन्धकार और निर्बलता के इस महान क्षेत्र के कोने-कोने में जीवन-ज्योति अपना प्रकाश फेंक रही है, और तम-विनाश का यह संग्राम पूरी तत्परता, दृढ़ता और विश्वास के साथ लड़ा जा रहा है। जीवन के प्रत्येक विभाग पर संघर्षण की चोटों के पड़ने से, फैली हुई राज्यश्री कोने में अपने पैर समेटते जाने के लिए विवश होती जा रही है। बड़े डरते हैं कि दुनिया पर छोटों का राज्य हो जाएगा। धनी डरते कि अब, तो, कंगालों की तूती बोलेगी। कुलीन डरते हैं कि, अब तो निकृष्ट जन अधिकारी बन जाएँगे। परन्तु, क्या हर्ज़, बड़प्पन के लिए किसी की बुद्धि का विकास नहीं दबाया जाएगा, धनी बने रहने के लिए गुलामी की श्रेष्ठता पर काव्य और कथाएँ नहीं रची जाएँगी, कुलीनता के नाम पर न्याय और सदाचार की हत्या नहीं हुआ करेगी। आह्वान की यह प्रतिध्वनि भूमण्डल के समस्त देशों के कगारों से टकरा रही है। युग की यह गिरा प्रत्येक राष्ट्र के द्वार पर अपना अलख जगा रही है। कोई भी उसे अनसुनी नहीं कर रहा। कर भी नहीं सकता, क्योंकि सुनने के गुण से वे ही रहित होते हैं जिनमें जीवन नहीं होता। भारतवर्ष की पुण्य और प्राचीन भूमि के द्वार पर भी स्वाधीनता और न्याय की यह भेरी अपना मधुर गीत अलाप रही है। आज, शताब्दियों से भारतवर्ष की आत्मा, भू-मण्डल की अगणित केलि-क्रीड़ाओं के मध्य में निर्जनता का आवरण ओढ़े और विवशता की छाप लगाये हुए, विचरण करती रही है। उन प्रहारों की गणना नहीं जो उस पर हुए। उन दिशाओं का अस्तित्व नहीं जो उसके लिए त्रिशूल न बन गईं। संसार उसके लिए काँटों का पालना बना, और आकाश, निष्ठुर संरक्षक! वेदना और अत्याचार, उपेक्षा और तिरस्कार की मारा-मार ने उसे संकीर्ण क्षेत्र का बन्दी बना दिया। आकाशचुम्बी दीवारों ने उसके सामने खड़ी होकर उसके नेत्रों पर पट्टी बाँध दी। विष-मिश्रित वायुमंडल ने उसका दम घोंटा। आने वाला इतिहासकार जब हृदय खोल और न्याय की तुला लेकर उन सब बातों की समीक्षा करेगा जो उसके समक्ष अपनी साक्ष्य देने के लिए उपस्थित होंगी, तब स्वाधीनवायु और आकाश के उज्ज्वल तारे, भू-मंडल की चेतना में समाये हुए भाव और मानव, विकास में मिली हुई शक्तियाँ उससे कहेंगी कि हम सबके लिए थे, यदि नहीं थे तो केवल एक के लिए—और, वह उस आत्मा के लिए। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र उसके लिए दलित और विगलित था। जीवन का प्रत्येक पथ उसके लिए विरुद्ध और भ्रष्ट था। परन्तु, संसार का नया प्रभात उसके केवल किसी एक खण्ड ही के लिए नहीं है, उसकी ज्योति का प्रसार सर्वत्र, सर्वक्षेत्रों और सर्व श्रेणियों पर एक समान हो रहा है। वह अलौकिक कुबेरों के जीवन-धन पर

अपनी छटा की वर्षा करता हुआ दीन-हीन सुदामाओं की दरिद्रता पर भी अपनी झलक फेंकने में संकोच नहीं करता। धन और वैभव की सम्पन्नता उसके मार्ग में दीवारें नहीं खड़ी करतीं। हीनता और पराधीनता उसकी आत्मा को अपवित्र नहीं बनातीं। प्राचीन और दीन-हीन भारतवर्ष के प्रांगण में भी इस आलोक की रश्मियाँ प्रकट हो रही हैं, और वे भारतवर्ष के उन समस्त मानव-रूप धारी प्राणियों से जिनमें तुषार और ताप की मार के पश्चात् भी प्राण-वायु शेष रह गया है, कर्मक्षेत्र में अवतरित होने का निमंत्रण दे रही हैं। इस व्यापक दावानल की चौमुखी लपक से किसी का बचाव नहीं। कर्म-स्थल की क्रियाशीलता प्रेरणाओं की स्फूर्ति से कोई बच नहीं सकता। कोई नहीं कह सकता कि जब समस्त भूमंडल के सामाजिक और नैतिक जीवन में इतना गम्भीर परिवर्तन हो रहा है, जब सभी की शक्तियाँ मुठभेड़ करने के लिए इस ओर, या उस ओर, सुसज्जित हो गई हैं, जब पिता, पुत्र के मुकाबले में और गुरु, शिष्य के मुकाबले में खड़े होने के लिए विवश हो गए हैं तब वह संग्राम से अलग रहकर, तटस्थ के रूप में इस दृश्य को देखता रह सकेगा। वे भले ही ऐसा कह दें जो जीवन की समस्त आशाओं को नमस्कार कर चुके, या जो अपने साथ ही भविष्यत् की संतति को भी इसी समय मरा हुआ या मिटा हुआ समझ चुके, परन्तु हृदय में शोणित का एक बिन्दु और आत्मा में बल का एक अंश भी रखने वाले मनुष्य के मन में तटस्थता का यह भाव एक क्षण के लिए भी न आवेगा, और यह इसलिए नहीं कि वह, यथार्थ में संसार के दुख-सुख में भाग लेता हुआ उसके व्यापक संग्रामों से पृथक् रह ही नहीं सकता, किन्तु इसलिए कि यह उसका धर्म है कि ऐसे अवसर पर वह अपने पूरे ओज और बल से क्रियाशील बनकर नवीन संसार की रचना की वेदी पर अपनी तुच्छ भेंट पूरी श्रद्धा से रखे। विपदा और संयम के प्रहारों से जर्जरित हो जाने वाली भारतवर्ष की प्राचीन और अनेक क्षेत्रों में पूर्ण क्रीड़ा का उपभोग कर चुकने वाली आत्मा, युग के इस आह्वान को, उसके इस निमन्त्रण को हर्ष और उल्लास के साथ नहीं, धैर्य और शान्ति के साथ स्वीकार करती है, और अपनी विवशता-पूर्ण तटस्थता और तिरस्कार जनित आत्म-पूर्णता की यवनिका को हटाती हुई विश्व के विश्वस्त पथों और संसार की विविध रंग-मंचों पर अपनी दृष्टि फेंकती है। उसकी दृष्टि अब चहारदीवारी के भीतर बन्द नहीं। उसका मानस-पट अब तनिक-सी चिट नहीं। विशालता उसके ध्येय में है और व्यापकता उसके ज्ञेय में। मानवता उसके लक्ष्य में है और दानवता उसकी कृति में होगी। जिस समय भारतवर्ष के करोड़ों सन्तति की अप्रयुक्त और अब तक सुषुप्त शक्तियाँ जागकर और प्राचीन संस्कारों से प्राप्त उदारता और तपस्या के भावों को साथ लेकर क्रियाशीलता की ओर अग्रसर होंगी, तब संसार की उन्नति

और अभ्युदय का कार्य न केवल अत्यन्त द्रुत वेग से होगा, किन्तु उसकी क्रूरता और शुष्कता, अशान्ति और असहिष्णुता में बाधा पहुँचकर उसका रूप और रंग कटुता और उत्तेजना से परिपूर्ण होने की अपेक्षा बहुत कुछ सुखकर और मधुर हो जाएगा। भारतीय आत्माएँ संसार के मिथ्यापन के भाव को प्रणाम करके लौकिक कल्याण के कार्य को अपने हाथों में लेंगी। वे शुष्क आध्यामिकता के भ्रम में पड़कर यथार्थ वस्तुओं को यथार्थ वस्तु मानने से इन्कार न कर देंगी। उनके कार्यक्रम में प्राचीन आर्यों की भाँति, जीवन के सुख और भोग का यथेष्ठ स्थान होगा, और वे उनसे घृणा प्रदर्शित करने वालों को उचित से अधिक कभी महत्त्व न देंगी। इसका अर्थ यह कदापि भी न होगा कि भोग-विलास जीवन के अंतिम ध्येय बन जाएँ और लौकिक वैभव का नशा आत्मिक कल्याण के उच्च, पवित्र, शान्तिदायक और कल्याणकारी भाव को स्थान-च्युत कर दे! भारतवर्ष की स्फूर्तियाँ आत्मिक कल्याण की भावनाओं से परिप्लावित हैं, और संसार के कल्याण तथा अपने गौरव के लिए, भारतवर्ष के आगामी कर्मवीरों के हृदयों में यह भाव सदैव जागृत रहेगा! इसी भाव की प्रेरणा से, वे देश और भूमंडल के कल्याण की वेदी पर श्रद्धा और प्रेम के साथ अपने शरीर और आत्मा की बलि दे सकेंगे। और यही भावना उनकी आत्मा को देश की आत्मा बना सकेगी, और यही भावना देश की आत्मा को संसार की आत्मा। यही भावना उन्हें देश के अन्यायों के विरुद्ध अग्रसर करेगी। वे अनुभव करेंगे कि देश के प्रति होने वाला अन्याय उनके प्रति अन्याय है। यही भावना उन्हें संसार के स्वेच्छाचारों के विरुद्ध संग्राम करने का बल देगी। वे समझें कि संसार में किया जाने वाला स्वेच्छाचार उनके प्रति स्वेच्छाचार है।

भारतवर्ष के समस्त कर्मक्षेत्र पर तपस्या का भाव स्पष्ट रूप से अंकित है। शताब्दियों तक हमारी पुण्य-भूमि की दुर्दशा इसलिए नहीं हुई कि वह तपस्या की महिमा को विस्मृति के गर्त में फेंक चुकी थी। पतन की कहानी दर्दनाक होते हुए भी, अपने मुख-मण्डल पर सन्तोष की एक आभा रखती है, और वह यह है कि भीषण से भीषण काल में भी, तपस्या भारतवर्ष के आचार और विचार की आभूषण रही। बुरे दिन देखने पड़े, परन्तु तपस्वियों की कमी से नहीं, जीवन-क्षेत्रों में तप का बल-प्रयोग करने के भेद से। धर्म के नाम पर जितने बलिदान हुए और तप किया गया, यदि उस बलिदान और तप का आधा भाग भी धर्म की सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति में लगाया जाता तो इस भूमि को ये दिन कभी न देखने पड़ते। तप का जो गौरव इस देश में है, उसका यही प्रभाव सर्वत्र और सदा है। कोई महान् कार्य तप बिना पूरा नहीं पड़ सकता। कोई आत्मा तप बिना महान्

नहीं हो सकती। मृग-मरीचिका का-सा भ्रम है, उन प्राणियों को जो सहज में सुख के साधनों से घिरे और कष्टों से भागते हुए, महान् कार्यों में सफलता का सुख-स्वप्न देखें। हिरण्यकश्यप का अत्याचार अपने दमन के लिए प्रह्लाद का सत्याग्रह चाहता है, और चित्तौड़ की स्वाधीनता का अपहरण करने वाले आक्रमण अपनी रोक के लिए वीर प्रताप की कठिन तपस्या। तप-विहीन प्राप्ति मनुष्य को छोटा और ओछा, निर्बल और पतित बनाती है। दीन-हीन अवस्था के होते हुए और बाहरी उदाहरणों के दृष्टि के सामने आते हुए भी, भगवान् करे, भारत की आत्मा नवीन क्षेत्रों में पदार्पण करती हुई अपने तपस्या के मार्ग को कभी न बिसारे! अनीति और अत्याचार के आघात-प्रतिघातों से उत्पन्न मर्म-भेदी पीड़ा जब ज्ञान और बुद्धि को विचलित करने की तैयारी करे, तब प्रभु की अनन्त शक्तियाँ, जीवन-क्षेत्र के प्रत्येक स्रोत से झर-झरकर, भारतवर्ष की नव-द्रुमित और नव-कुसुमित जीवन शिखाओं को तप के कठिन, परन्तु सत्य और स्पष्ट मार्ग से च्युत न होने दे। उस समय भारतवर्ष की सर्वोत्कृष्ट सन्तति गांधी उनके अनुकरण का पात्र हो और सत्याग्रह की कठिन क्रीड़ा उनकी कर्मण्यता पर मोटे-मोटे अक्षरों में अंकित करे—'कर्मक्षेत्र, हमारा कर्मक्षेत्र !'

24

भारतीय इतिहास की बानगी

वृद्ध भारत इतनी व्याधियों से घिरा हुआ है कि उन्हें देखकर आँखें पथरा जाती हैं और हृदय काँपने लगता है। उन पर विचार करते ही सिर चकरा जाता है और भारतीय वायुमण्डल में वह ध्वनि गूँजती सुन पड़ती है—

"एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं, गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य।
तावद्द्वितीयं समुपस्थितं मे, छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति॥"

भारतीय राष्ट्र-निर्माता हमारी राष्ट्रीयता की बाधक जितनी अधिक शक्तियों का विनाश करते हैं उतनी ही अधिक वे रावण के दस सिर और बीस भुजाओं की तरह बार-बार समुत्थित हो जाती-सी मालूम पड़ती हैं!

अतीत का वर्तमान और भविष्यत् से बड़ा घना सम्बन्ध है। प्राचीन राष्ट्र का अतीत से सम्बन्ध तोड़ देना उसकी जड़ और भावी बाढ़ को काट देना है। संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है। भारत इस नियम का अपवाद नहीं। उसका अतीत गौरव उसकी भविष्योन्नति का मूलाधार है! अतीत और वर्तमान के इस आवश्यक सम्बन्ध को स्थिर बनाये रखने का एकमात्र उपाय इतिहास है। परन्तु भारत के दुर्भाग्य से, यहाँ उसका अभाव है। कारण कुछ भी हो, यह निर्विवाद है कि भारतीयों द्वारा लिखा हुआ भारत का शृंखलाबद्ध और सुव्यवस्थित इतिहास नहीं मिलता। अतः जो कुछ इतिहास है भी वह विदेशियों की कृपाकृति का फल है और इसलिए बहुत-सी हालतों में वह न होने से भी बुरा है क्योंकि वह हमारी राष्ट्रीयता के मूल पर कुठाराघात करता है।

विदेशी इतिहास-लेखकों द्वारा लिखा हुआ इतिहास देश का सच्चा इतिहास नहीं हो सकता। उनमें कई ऐसे दुर्धर्ष मुख्य अवगुण पाये जाते हैं जो सच्चे इतिहासकार में न होने चाहिएँ। प्रथम तो वे स्वभाव से ही अपनी सभ्यता के प्रशंसक और प्रेमी होते हैं। अतएव जो बातें उनकी सभ्यता के प्रतिकूल पड़ती हैं वे उन्हें असभ्य मालूम पड़ती हैं। जो लोग धोती पहनना असभ्यता की चरम सीमा समझते हैं क्या वे कभी भारत का यथार्थ इतिहास—यदि इतिहास का अर्थ केवल राजवंश

की घटनाओं का वर्णन ही न हो तो—लिखने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं ? इसके अतिरिक्त दूसरों की सभ्यता में पाई जाने वाली नवीन बातों के समझने में असमर्थ होने के कारण वे अपनी उल्टी-सीधी व्याख्या करने लग जाते हैं। कुछ दिन हुए, ललाट में लाल चन्दन का टीका लगाये हुए भारतीय महिला की फोटो देखकर एक अमेरिकन स्त्री ने कहा था कि यह इसके पति द्वारा मारी हुई ईंट के कारण निकला हुआ रुधिर-चिह्न है। घटना अत्यन्त साधारण है। परन्तु साधारण घटनाओं का भी अपना मूल्य होता है। वे भी महत्त्व से सर्वथा खाली नहीं होतीं। यह घटना मानव-प्रकृति की एक महत्त्वपूर्ण निर्बलता की ओर संकेत करती है। और वह है यह कि नवीन बात को न समझने पर भी उनकी लालबुझक्कड़ी व्याख्या करने की आदत। विदेशी इतिहासकारों में इस आदत का अभाव नहीं होता। ये अवगुण तो उन महानुभावों के लिए स्वाभाविक हैं जो निष्पक्ष होते हैं। परन्तु जहाँ पक्षपात भी अपना काम करता हो वहाँ का तो कहना ही क्या है। सभी मनुष्य धर्मराज नहीं होते। निष्पक्षता और सहृदयता विरलों ही में पाई जाती है और बिना निष्पक्ष हुए कोई वास्तविक इतिहासकार हो ही नहीं सकता। भारत के मुसलमान और अंग्रेज़ इतिहास-लेखकों में घृणा का भाव भी होता है। वे इतिहास लिखते समय अपने उस भाव को व्यक्त किये बिना नहीं रहते। यदि कहीं विदेशी इतिहास-लेखक विजेता जाति के हुए तब तो उनका कोई उपचार ही नहीं। एक तो स्वभाव से ही वे घमण्ड के मारे पक्षपात और घृणा के वशीभूत होते हैं। उनकी समझ में यह बात आ ही नहीं सकती कि जिस जाति को वे पराजित कर पैरों तले कुचल चुके हैं वह भी कभी सभ्य हो सकती है। उस जाति में सद्गुणों के अस्तित्व का भाव उनको सह्य नहीं। साथ ही, अपने अधीन जाति का इतिहास लिखने के लिए कुछ इतिहासकारों को राजनैतिक उद्देश्य भी प्रेरित करता है। सन् 1916 में 'स्टेट्समैन' में एक विचारपूर्ण लेख निकला था। उसमें लेखक ने यह दिखलाते हुए कि यदि जर्मन इंग्लैण्ड को जीत लें तो क्या होगा, अन्य बातों के साथ यह भी कहा था कि जर्मन हमसे कहेंगे कि तुम्हारे पूर्वज असभ्य, कायर और निर्बल थे, हमारे यहाँ आने से पहले अशिक्षा, अज्ञानान्धकार, कायरता, निर्बलता, पारस्परिक फूट और दरिद्रता का साम्राज्य था। वे हमारे विश्वविद्यालयों में हमें ऐसे इतिहास पढ़ने को देंगे जिनमें यही बातें सिद्ध की गई होंगी और जो हमारे आत्म-विश्वास और अतीत गौरव को घातक होंगी। उपरोक्त लेखक ने जो कुछ लिखा है वह वर्तमान अन्य विजेता जातियों के कृत्य के ज्ञान और अनुभव के आधार पर। अतः उससे वर्तमान शासक जातियों के द्वारा शासित जातियों के प्रति अवलम्बित किये

गए व्यवहार का कुछ पता लगता है। और इसी राजनैतिक उद्देश्य को लेकर शासक जाति के इतिहासकार शासित जाति का इतिहास लिखने के लिए क़लम उठाते हैं। ऐसी दशा में उनका लिखा इतिहास कितना विश्वसनीय, महत्त्वपूर्ण, मूल्यवान एवं हितकर हो सकता है। उसे पाठक विचार लें। हमारे राष्ट्रीय-जीवन संग्राम-रूपी वर्तमान महाभारत में ऐसे शल्य की कमी नहीं जो हमारा क्षात्र तेज और आत्मविश्वास क्षीण करने के अभिप्राय से ही हमारे सारथी बने हैं।

भारतीय इतिहास का फुटकर वर्णन विदेशी—यूनानी, चीनी, मुसलमान और यूरोपियन—यात्रियों के ग्रन्थों में मिलता है। इनमें मेगस्थनीज़, फाहियान, ह्वेनत्सांग, अलबरूनी, बर्नियर, टैवर्नियर इत्यादि सुप्रसिद्ध हैं। यद्यपि इन्होंने पक्षपात-रहित होकर तत्कालीन भारत का वर्णन किया है तथापि इनमें भी विशेषकर यूरोपीय यात्रियों में भारतीय सभ्यता की नवीन और आश्चर्यजनक बातों को न समझ सकने का दोष विद्यमान है। विजेता जाति के भारतीय इतिहासकारों की श्रेणी में मुसलमान और अंग्रेजी इतिहास लेखक तो पक्षपात की मूर्ति थे। उनका धर्म, उनका रहन-सहन, उनका आचार-विचार, और उनकी रीति-रस्में अधिकतर हिन्दुओं से बिलकुल विपरीत थीं। अतः उन्होंने उनकी जी भरकर निन्दा की है। हिन्दू उनके धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विपक्षी थे, उनको वे पद-दलित कर चुके थे और उनकी दृष्टि में वे काफ़िर थे। भला ऐसे शत्रुओं में भी क्या कोई अच्छी बात वे पा सकते थे? उनकी दृष्टि में वे, और वह जो कुछ उनका था, वह सब, अवश्य ही निन्द्य और घृणित था। परन्तु इनका इतिहास भी फुटकर और आंशिक है। उसकी सीमा मुसलमान काल तक ही परिमित है। इतिहास-काल से लेकर अद्यावधि पर्यन्त भारत का सुव्यवस्थित शृंखलाबद्ध इतिहास लिखने का श्रेय अंग्रेजों को ही है, और उसमें से अधिकांश की रचना में ऊपर गिनाए हुए विदेशी इतिहासकारों के सभी अवगुणों की बू आती है। इन समस्त अवगुणों के अतिरिक्त अंग्रेज़ी इतिहास लेखकों में एक भारी जातीय अवगुण और भी है। वे अपने पूर्व निश्चित सिद्धान्तों के लिए सत्य घटनाओं की हत्या कर देते हैं। देशी इतिहास लेखकों पर कीचड़ उछालते हुए मि० स्टेनली लेनपूल ने कहा कि "They are apt to suppress facts which tell against their heroes" अर्थात् जो बातें उनके नायकों के विरुद्ध होती हैं उन्हें वे दबा देते हैं। बात कुछ-कुछ ठीक है, परन्तु इतनी कसर है कि आप को दूसरों की आँख की फूली तो दिखाई पड़ गई परन्तु अपनी आँख की शहतीर नज़र न आई। आप ही के देश-बन्धु लार्ड मैकाले ने अपने यहाँ के इतिहासकारों के विषय में जो कुछ कहा है उसका भावार्थ यह है कि "दुर्भाग्य से वे (इतिहास-लेखक) व्यापक-सिद्धान्तों के अनुकूल बनाने के लिए घटनाओं को तोड़ने-मरोड़ने की ग़लती

करते हैं। वे घटनांश को देखकर एक सिद्धान्त पर पहुँच जाते हैं और शेष घटनांश को उस सिद्धान्त के अनुकूल बनाने के लिए तोड़-मरोड़ डालते हैं। इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वे बिलकुल झूठी बात ही कहें, क्योंकि सदाचरण और राजनीति के समस्त प्रश्न (न्यूनाधिक) मात्रा और तुलना के प्रश्न हैं। कोई भी कथन जिसके शब्दों में विरोध नहीं है, सम्भवत: सत्य हो सकता है, और यदि वे समस्त बातें जो उसके अनुकूल सम्भावनाओं को बढ़ाती हैं, कहीं और पुष्ट कर दी जाएँ और वे, जो विरोधी निष्कर्ष की ओर ले जाती हैं, छोड़ दी जाएँ या उन पर बहुत कम ध्यान दिया जाय, तो वह सिद्ध हुआ प्रतीत हो सकता है। प्रत्येक मानवी चरित्र और कर्म में बुरे-भले का मिश्रण रहता है। (अत:) तनिक अत्युक्ति, तनिक न्यूनोक्ति, विशेषणों का बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयोग, एक पक्ष की साक्षी के सम्बन्ध में सचेष्ट और अनुसन्धानशील सन्देह दूसरे पक्ष की बातों या परम्परागत जनश्रुतियों के सम्बन्ध में सुविधाजनक विश्वास से 'लाड' को साधु और चतुर्थ हेनरी को अत्याचारी सुगमता से बनाया जा सकता है।" आपका यह कथन भारत के अंग्रेज इतिहास लेखकों के विषय में अक्षरश: चरितार्थ होता है। यही उनके लिखे इतिहास के रहस्यों के समझने की कुंजी है। इस कथन की पुष्टि पृथक्-पृथक् कुछ सुप्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकारों की विस्तृत समालोचना करके फिर कभी की जाएगी। यहाँ उनके लिखे हुए भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में दो-चार साधारण व्यापक बातें कहकर उसकी बानगी दिखाई जाएगी।

विदेशियों का लिखा हुआ भारतवर्ष का इतिहास ढूँढ़-ढूँढ़कर निकाली हुई सच्ची या झूठी भारत की समस्त त्रुटियों, निर्बलताओं और दोषावली का संग्रह-मात्र है। उससे देश की सच्ची स्थिति का पता नहीं चलता। उसमें हम अपने देश के यथार्थ रूप के दर्शन नहीं कर पाते। उसमें होकर देखने से हमें अपना देश बुराइयों का ढेर मात्र प्रतीत होता है। वह हमें बताता है कि हमारे पूर्वजों ने बाहर से आकर यहाँ के आदिम निवासियों को अपने पाशविक बल से पद-दलित किया और उन पर अपना आधिपत्य जमाया। उनको शूद्र और अनार्य कहकर अपना गुलाम बनाया। और उनको सिखाया कि उनका सर्वोपरि धर्म आर्यों की सेवा करना है। उनको सरस्वती और लक्ष्मीदेवी की उपासना से वर्जित कर उनकी बुद्धि और आत्मा को नष्ट कर दिया और उनको अपनी सामाजिक और राजनैतिक गुलामी में रखा। इन इतिहासों में लिखा है कि वेद गड़रियों के गीतों के संग्रह हैं। रामायण होमर के काव्यों की नकल है! कैकेई ने दशरथ को ज़हर देकर मार डाला था!! लेखन-कला का प्रचार भारतवर्ष में, विदेशी व्यापारियों ने किया। भारत के नाटकों पर यूनानी नाट्यकला का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा है और भवन-निर्माण-

विद्या पर मुसलमानों का। ज्योतिष और गणित विद्या के विकास के लिए भारत-निवासी अरबवासियों के ऋणी हैं। तात्पर्य यह कि किसी प्रकार के कला-कौशल, शिल्पकारी और विद्या की उत्पत्ति भारतवासियों के मस्तिष्क से नहीं हुई। उनमें जो कुछ सभ्यता पाई जाती है उसके लिए वे इसके नहीं तो उसके ऋणी अवश्य हैं। उनके समस्त साहित्य का मूल्य अंग्रेजी साहित्य की एक अच्छी आलमारी के बराबर भी नहीं है। उनके ज्योतिष पर अंग्रेजी छात्रालय की लड़कियों को भी हँसी आये बिना नहीं रह सकती। उनके इतिहास तीस फुट ऊँचे राजाओं और तीस हज़ार साल के राज्यों के वर्णन से भरे पड़े हैं। उनके भूगोल में दूध-दही के समुद्रों का वर्णन है। उनको चिकित्सा-शास्त्र का ज्ञान घोड़ों की नाल बनाने वाले अंग्रेज के ज्ञान से भी कम है। उनका दर्शन-शास्त्र खोखला है। इसके अतिरिक्त उनका सम्मिलित राग यह है कि भारतीय युद्ध में, सदैव विदेशियों द्वारा पराजित होते रहे हैं और स्वाभाविक निर्बलता की (Inherent feebleness) और हद दर्जे की कमज़ोरी (Radical weekness) ही इसका कारण है। इसी राग का मेल मिलाने के लिए एक महाशय कहते हैं कि सिल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को हराया। दूसरे को सत्य पर कुछ दया आई और कहा कि नहीं भाई, हारना तो सिल्यूकस को ही पड़ा था। इस पर तीसरे बोल उठे कि तो चन्द्रगुप्त भारतीय नहीं होगा और पाटलिपुत्र की भूमि में फारस की बू सूँघने के लिए उसकी मारामार खुदाई करवा रहे हैं। चौथे महानुभाव ने डंका पीट दिया कि समस्त राजपूत राज-कुलों की उत्पत्ति अनार्य और शूद्र जातियों से हुई है, ब्राह्मणों ने अपने धर्म के रक्षार्थ इन्हें हिन्दू धर्म में दीक्षित कर दिया था (भला, आर्यों में भी ऐसी दुर्धर्ष वीरता और स्वातंत्र्य-प्रेम हो सकता है?) भारतवासी प्रकृति से ही विदेशी आक्रमणों का सामना करने में असमर्थ रहे हैं। भिन्न-भिन्न धर्म-सम्प्रदाय यहाँ सदैव एक-दूसरे की गर्दन काटते रहे हैं। भाई का खंजर भाई की गर्दन पर, पड़ौसी का खंजर पड़ौसी की गर्दन पर, यह दृश्य सदैव भारत में उपस्थित रहा। हिन्दू मुसलमानों को तो सिवाय एक-दूसरे से लड़ने के और कोई काम ही न था। भारतवासी अत्याचार के आदी हैं और अत्याचारी शासक ही उनको पसन्द हैं। कृपालु शासक से तो उन्हें शायद सख्त नफ़रत है। स्वराज्य और प्रजातंत्र राज्य का नाम तो उनके कानों को इतना ही कड़ुआ लगता है जितना कि जीभ को चिरायता। 'प्राकृतिक' हिन्दू जनता के अधिकार, व्यक्तिगत स्वाधीनता, इत्यादि शब्दों का कुछ भी अर्थ नहीं समझता। स्वातंत्र्य प्रेम तो उनमें इतना भी नहीं जितना कि आकाश में कुसुमोद्यान। विदेशियों के आधिपत्य में आपत्ति करने से तो वे इतने दूर थे कि उन्होंने स्वेच्छापूर्वक उनकी स्थापना में सहायता की। अशिक्षा और फूट तो उनके

हिस्से में पड़ी है। ब्राह्मण अत्याचार की मूर्ति थे और हैं। मराठा एक जाति थी (और है) शिवाजी पहाड़ी चूहा और धोखेबाज़ लुटेरा और पापी डाकू था और यह अधर्मी नरक को गया। ताज बीबी का रोज़ा इटली के शिल्पकारों का बनाया हुआ है। (आश्चर्य ही क्या, यदि एक दिन यह भी पढ़ना पड़े कि हिमालय पर्वत को हरक्यूलीज़ ने स्काटलैंड से उठाकर के भारत में रख दिया और गंगा को, जो थेम्स की एक शाखा थी, भागीरथ इंग्लैण्ड से लाया था)। इन इतिहासों में लिखा होता है कि जब हम यहां आए तब रेल न थी, तार न था, डाकखाने न थे और (अतः) था ही क्या ? केवल अशान्ति और अराजकता। भारतवासी निरे जंगली थे, उनको अज्ञानान्धकार के गर्त से उबारने, लूटमार, खून-खच्चड़ और दिन-रात की हाय-हाय से उनकी जान बचाने के लिए, हमने, तरस खाकर, उनके शासन का भार वहन करने का कष्ट उठाना स्वीकार किया है, इत्यादि। ऐसा प्रतीत होता है कि इन इतिहासकारों ने एक भयंकर और सुव्यवस्थित षड्यन्त्र रचा है जिसका उद्देश्य प्राचीन गौरव-रूपी यज्ञ छाग को कुत्ता सिद्ध कर भोले-भाले भारतीय राष्ट्र रूपी ब्राह्मण से उसे फिकवा देना है। हमारे आत्मविश्वास और प्राचीन गौरवाभिमान को नष्ट कर सिंह-शावक को गीदड़ बनाये रखना इनका उद्देश्य है। परन्तु षड्यन्त्रकारी स्मरण रखें कि यद्यपि कद्रू ने अपने पुत्र सर्पों की सहायता से सूर्य रथाश्वों की पूँछ का रंग काला दिखाकर स्वपत्नी विनता को दासी बनाने में सफलता प्राप्त की थी तथापि उससे न तो रविरथाश्वों की पूँछें ही काली हो गई थीं और न कोई अच्छा परिणाम ही निकला था, क्योंकि उससे कद्रू-पुत्र सर्प और विनता-पुत्र गरुड़ में सदैव के लिए कट्टर शत्रुता हो गई थी !

25

सत्याग्रह

देश-भर में, इस समय, सत्याग्रह की ध्वनि गूंज रही है। परन्तु उसके तत्त्व को ठीक-ठीक समझने में अधिकांश अवसरों पर भूल हो रही है। जो लोग उसके विरोधी हैं वे तो भूल करते ही हैं, परन्तु वे लोग भी भूल करते हैं जो उसके पक्षपाती हैं। रौलट बिल को पास कराते हुए सर विलियम विसेंट ने इस बात पर खेद प्रकट किया था कि मि० गांधी-ऐसे स्वार्थ-त्यागी आदमी ने यह आन्दोलन छेड़ दिया है। उन्होंने यह भी कहा था कि इससे गरम मिज़ाज के युवक उपद्रव कर बैठेंगे और इसका नतीजा खराब होगा। बा० सुरेन्द्रनाथ, सर बाचा, मि० शास्त्री आदि माडरेट नेताओं ने भी 'सत्याग्रह' के उचित न होने तथा आगामी सुधारों में बाधक सिद्ध होने की घोषणा की है। मद्रास प्रान्त के कुछ माडरेट सज्जनों ने भी ऐसा ही किया है। एक मुसलमान उर्दू पत्र ने 'सत्याग्रह' को 'बुज़दिलाना मुकाबला' के नाम से पुकारा है ! कहीं-कहीं 'सत्याग्रह' और 'निष्क्रिय प्रतिरोध' में कोई भी अन्तर नहीं माना जाता। कहा जाता है कि जिस प्रकार, कुछ भी कर-धर न सकने वालों के लिए इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं रह जाता कि वे अत्याचारों को मन मारे और विष का घूंट निगलते हुए सहते रहें, उसी प्रकार सत्याग्रही भी करेंगे। परन्तु यह सब भ्रम है और भ्रम में हैं वे लोग भी, जो सत्याग्रह का पक्ष इसलिए ग्रहण करते हैं कि उनके मन के कुछ हौसले पूरे होंगे; जिन्हें वे नीचा दिखाना चाहते थे उन्हें इस प्रकार नीचा देखना पड़ेगा; या जो यह समझते हैं कि हमारा अन्याय अन्याय नहीं है, दूसरों का अन्याय घोर अन्याय है। हमारा दूसरों को क्लेश पहुँचाना क्रूरता नहीं, दूसरों का हमारी छाती पर कोदों दलना घोर अत्याचार है। सत्याग्रह से उपद्रव और अशान्ति नहीं मच सकती। सत्य के लिए आग्रह करने से सच्चे सुधारों के मार्ग में कोई बाधा उपस्थित नहीं हो सकती। सत्याग्रह बुजदिलों का गुण नहीं है। और वह अनीति के नीचे दबे रहकर सिसकियाँ भरते और झुकड़ते रहने का आदेश नहीं देता। वह न्याय के लिए अन्यायी से लड़ने का निमन्त्रण देता है और साथ ही यह आदेश भी कि अन्यायी तक के प्रति

न्याय का भाव हृदय में रखो। केवल सत्य और न्याय के लिए, सब कहीं और सब के साथ सत्य और न्याय का व्यवहार रखने के लिए सत्याग्रही अपना जीवन समर्पण करता है। हम स्वीकार करते हैं कि सत्य और न्याय की लड़ाइयाँ बाहुबल द्वारा भी लड़ी जा सकती हैं, परन्तु अहिंसा के बल के साथ उसका लड़ना अधिक न्याय-युक्त हितकर, शान्तिदायक और निश्चय रूप से शुभ फल प्रद है। बाहुबल का प्रयोग मन को स्थिर और बुद्धि को निश्चल और निष्पक्ष नहीं रहने दे सकता। उसके कारण होने वाले घात-प्रतिघात शान्ति नहीं बनी रहने देंगे, सफलता का कोई निश्चय नहीं, और यदि, वह मिलेगी, तो लगी हुई आग उसे भस्म कर डालने को प्रत्येक पल भय दिखाती रहेगी। विपक्षी पर प्रहार न करके केवल अपने ही ऊपर उसके प्रहार ओढ़ते जाना और अपने स्थान पर डटे रहना ही एक ऐसा ढंग है, जो अन्त में, अन्याय को मेटने के साथ आगे चलकर उखड़ पड़ने वाले विद्वेष के भाव को भी निर्मूल कर देगा। केवल इसी प्रणाली से, अन्यायी के अन्तरतर के देवत्व से उसके पशुत्व के विरुद्ध अपील की जा सकेगी, उसके अन्तरात्मा में न्याय की ज्योति जगाई जा सकेगी और उसके मन में उत्पन्न होने तथा बढ़ सकने वाले द्वेषों का उन्मूलन किया जा सकेगा। कुछ लोग मजाक उड़ाते हैं कि सत्याग्रह का अर्थ यह है कि कोई एक थप्पड़ लगाता हो, तो उससे कह दिया जाय कि, भाई, एक थप्पड़ और मार लो! हमारे ये दोस्त भी ग़लती पर हैं। सत्याग्रही थप्पड़ खायगा, और ज़रूरत पड़ेगी, तो, केवल दूसरा ही थप्पड़ नहीं, तीसरा और चौथा भी। परन्तु यह किस प्रकार और किस लिए? वह जिस बात को अन्याय समझता है उसे अन्याय के नाम से पुकारेगा और उसका सभ्यता और शान्ति के साथ पूरा विरोध करेगा। उसके ऊपर प्रहार होंगे। वह हटेगा नहीं, और बिना हिचकिचाहट के उस अन्याय को अन्याय ही कहता रहेगा और जो काम न्यायानुकूल होगा, उसी को करता रहेगा। और अन्त तक, प्रहारों की वर्षा में रहता हुआ भी वह ऐसा ही करेगा। वह अपनी दृढ़ता से और उस विश्वास से, जो उसे न्याय के सिद्धान्त पर है, अन्त में अन्याय-पथ पर जाने वाले को राह पर लाये बिना नहीं छोड़ेगा। उसके ऊपर होने वाला प्रत्येक प्रहार और उसका शान्ति और दृढ़ता के साथ प्रहार सहन करने का प्रत्येक घंटा उसके प्रहार-कर्ता को अन्याय से दूर और न्याय के निकट ले आवेगा। इस प्रकार, अन्त में उसे विजय मिलेगी, और वह सिद्ध करेगा कि सर विलियम विसेंट के कथनानुसार, सत्याग्रह बहुत-सी खराबियों से भरा हुआ नहीं है, मा० मालवीयजी के उत्तरानुसार उसमें केवल बहुत-सी अच्छाइयाँ ही नहीं हैं, बा० सुरेन्द्रनाथ और उनकी पार्टी के अनुसार, वह सुधारों का बाधक नहीं है, और किसी के कथनानुसार वह बुज़दिली का मुकाबला नहीं है, किन्तु वह म० गांधी के

शब्दों में केवल शुभ फलों को ही देने वाला है, बाहुबल पर आत्मिक बल की विजय है, सच्चे सुधारों का आवाहन-कर्ता है और सच्चे बलवानों का श्रेष्ठ गुण है। केवल रौलट ऐक्ट के विरोध ही के लिए नहीं, किन्तु सर्वत्र और सब काल में वह मनुष्य की मनुष्यता के बनाये रखने के लिए आवश्यक है। भारतवर्ष में उसकी आवश्यकता और भी अधिक है। जिस देश के लाखों आदमी धर्म के नाम पर अपने प्राण तक देने के लिए तैयार रहते थे, और जिनमें तपस्या का अत्यन्त महत्त्व था, उसकी दशा आज यह है कि उच्च आदर्शों के लिए अपना जीवन अर्पण कर देने वाले आदमी बहुत ही कम संख्या में पाये जाते हैं। हमारे सार्वजनिक जीवन का ऐसा बुरा हाल है कि लोग किसी बात के लिए कुछ भी कष्ट उठाने के लिए तैयार नहीं। जहाँ तनिक भी आँच लगी कि बस, करवट बदल डालते हैं! देश के भविष्यत् के लिए हमारा यह ढंग अत्यन्त हानिकारक है। कमज़ोर ईंटों के आधार पर कोई महल खड़ा नहीं हो सकता। और चंचल और निर्बल चित के व्यक्तियों के आधार पर किसी देश की महत्ता स्थिर नहीं रह सकती। इसलिए न केवल रौलट-क़ानून के अन्याय के विरोध के लिए, परन्तु इस प्राचीन भूमि में, उसकी वर्तमान चरित्र-हीन सन्तति में चरित्र-बल की शक्ति उपजाने के लिए, तथा उसमें इस सिद्धान्त की सत्ता फिर से जगाने के लिए, कि आत्मिक बल सब बलों से श्रेष्ठ है और उससे कोई भी बल नहीं जीत सकता, सत्याग्रह के कर्मक्षेत्र में देश के प्रत्येक सबल जन के आने की आवश्यकता है। हमें विश्वास है कि देश के युवक इस बड़े अवसर पर कदापि शिथिल न रहेंगे, और वे इस पवित्र निमंत्रण के अनुसार अपना पग आगे बढ़ाएँगे। जो लोग इस क्षेत्र में आवें वे कदापि उतावली से काम न लें। खूब सोच-समझ लें। अपनी दशा पर विचार कर लें और अपना बल आज़मा लें। तब, वे आवें। यदि कोई किसी कारण से न भी आ सके, तो कोई हर्ज नहीं, संख्या के अधिक होने की आवश्यकता नहीं है। यदि आदमी थोड़े हों, पर वे दृढ़ और सात्विक हों, तो भी काम भली रीति से चल सकता है।

26

सत्याग्रह : उसकी उपयोगिता

कुछ काल पहले तक, सत्याग्रह प्रह्लाद की कहानी में या राष्ट्रीय दल के कार्यक्रम में दीख पड़ता था। तब तक वह एक सुखमय कल्पना थी। और एक प्यारा एवं मधुर शब्द। अब वह समाज में एक शक्ति है। उसका व्यावहारिक जीवन में आना एक नई बात है। पहले वह दूर से प्रसंशा करने की एक वस्तु थी, अब उसका व्यवहार क्षेत्र में कर्म-पथ की कठिनाइयों के साथ, निकट आना एकदम नई चीज़ है। और हरएक नई बातों की तरह सत्याग्रह के विषय में भी तरह-तरह के भ्रम फैले हुए हैं। सब लोगों ने सत्याग्रह की मूर्ति को अपनी-अपनी भावना के अनुसार देखा है। अपने भक्तों को यह इष्टदेव के रूप में दिखाई पड़ रहा है और राष्ट्रीय दल को उद्धारक एवं त्राता के रूप में। नरम दल सत्याग्रह को उसी दृष्टि से देखता है जिस दृष्टि से राजा जनक और उनके सुहृदों ने महा पराक्रमी और क्रोधी परशुराम से प्रत्युत्तर करते हुए बालक लक्ष्मण को देखा था। एंग्लो इण्डियनों को वह अपडर से कृतान्त के रूप में दीखता है और वे चिल्लाते हैं—अरे बचाओ! गांधी को चौरंधी में झटपट फाँसी दे दो। और सब सत्याग्रहियों को बंगाल की खाड़ी में डुबा दो। परन्तु यदि हम प्रत्येक नई चीज़ से भेड़िये की तरह डराना छोड़ दें और विवेकशील मनुष्यों की तरह उपयोगिता—अधिक लोगों के अधिक सुख—की दृष्टि से विचार करें तो सत्याग्रह की महत्ता बहुत बढ़ जाती है।

सत्याग्रह के विषय में सबसे पहला भ्रम जो दूर हो जाना चाहिए, यह है कि, सत्याग्रह एक राजनैतिक शस्त्र है। लोग समझते हैं कि हमारे राजनैतिक संग्राम में सत्याग्रह एक शस्त्र और सबसे प्रबल शस्त्र है, इसलिए उसका प्रयोग अन्तिम समय में ही होना चाहिए। वह उनकी भारी भूल है, क्योंकि सत्याग्रह राजनैतिक दाँव-पेंच नहीं, किन्तु मनुष्य जीवन का ध्येय है। और इसलिए उसका प्रयोग समय-औचित्य की दृष्टि से नहीं बल्कि सर्वदा, सर्वत्र और सब काल में किया जाना चाहिए। जो लोग सत्याग्रह को असमयोचित बताते हैं, वे या तो इस बात को जानते नहीं या फिर उस पर ध्यान नहीं देते।

सत्याग्रह के विरुद्ध जो दूसरी भारी दलील दी जाती है वह यह है कि सत्याग्रह से उपद्रव हो जाने की आशंका रहती है—सत्याग्रह और दुराग्रह के बीच की रेखा सरलता से लाँघी जा सकती है। अपनी इस आशंका के प्रमाण में इस मत के लोग हाल में हुए दंगों की ओर संकेत करते हैं। परन्तु उनका भय और उसका प्रमाण दोनों ही निराधार हैं। क्योंकि उपद्रव और दंगे सत्याग्रह के आधारभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध ही नहीं, बल्कि इतने विपरीत हैं जितना कि वर्गों के कर्ण का एक कोना दूसरे कोने से। किसी तर्क और किसी प्रमाण से सत्याग्रह को हम हाल में हुए उपद्रवों का कारण नहीं बता सकते। पंजाब के दंगों को ही लीजिए। युक्तप्रान्त में शोक-दिवस, मनुष्यों और नगरों की संख्या तथा भावों की गहराई किसी बात में पंजाब से कम नहीं मनाया गया था परन्तु यहाँ कोई उपद्रव नहीं हुआ। क्यों ? क्योंकि यहाँ सरदार कोर्ट बटलर थे और वहाँ ओडावरशाही। कलकत्ते में एक दिन दंगा हुआ और दूसरे दिन नहीं। क्यों ? क्योंकि एक दिन पुलिस न थी इससे न हुआ और जिस दिन थी, उस दिन हुआ। फिर अहमदाबाद में महात्मा गांधी के जाते ही सब उपद्रव शान्त हो गया जबकि पंजाब में मशीनगनों, हवाई जहाजों तथा फ़ौजी क़ानून की सहायता से अशान्ति तो क्या उपद्रव दूर करने में भी इतने दिन लगे तो क्यों ? तात्पर्य यह कि स्थानीय अधिकारियों में कार्य-कुशलता (Tact) न होने से यदि उपद्रव हुए तो उसके लिए सत्याग्रह कदापि दोषी नहीं कहा जा सकता। सत्याग्रह से तो बल्कि उपद्रव बन्द होता है। इस बात का प्रत्यक्ष और ताजा प्रमाण यह है कि जब लो० तिलक मंडले भेजे गए थे तब बम्बई में बड़ा भारी उपद्रव हो गया था परन्तु अब मि० हर्निमैन के देश-निकाले पर भी लोग शान्त रहे क्योंकि तब सत्याग्रह न था, अब है।

विरोधियों को ठीक करके अब हम सत्याग्रह की उपयोगिता की ओर आते हैं। सत्याग्रह से तुरन्त लाभ यह होगा कि हमारे सार्वजनिक जीवन की अशुचिता दूर हो जायगी। इस समय हमारे सार्वजनिक जीवन की बड़ी दुरवस्था हो रही है। जो देश के नेता हैं और देश-हित की हामी भरते हैं वे, अपनी शक्तियाँ 'तू-तू मैं-मैं' में नष्ट कर रहे हैं। ज़रा-ज़रा-सी बातों को बढ़ाकर तूल दे दिया जाता है और देश के उद्धार में लगाई जाने वाली शक्तियाँ, नित नई अपनी-अपनी दलबन्दी करने में लगाई जा रही हैं। सत्याग्रह से यह अहम्मन्यता और द्वेष बुद्धि दूर हो जायगी। हमारे नेता छोटी-छोटी बातों में मतभेद रखते हुए भी एक व्यापक महान् और पवित्र उद्देश्य के लिए मिलकर काम करना सीख जाएँगे। सत्याग्रह से वर्तमान कटुता दूर हो जायगी पाठक जानते हैं कि बंगाल के राष्ट्रीय दल के नवयुवक नेता मि० सी० आर० दास ने, नरम पक्ष के नेता बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी पर एक लाख का

मान-हानि का दावा किया था। परन्तु सत्याग्रह की प्रतिज्ञा लेते ही उन्होंने वह दावा वापस ले लिया! इस घटना को देखकर, इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि 'श्रीगणेश' अच्छा हुआ है और यह सत्याग्रह के उज्ज्वल भविष्य का सूचक है।

इसके अतिरिक्त अत्याचारों और अन्यायों के दूरीकरण तथा अपने स्वत्वों और स्वराज्य की प्राप्ति के लिए सत्याग्रह रामवाण है, अमोघ और सुस्पष्ट साधन है। अब तक हमारे देश में मुख्यत: तीन प्रकार के मनुष्य हैं। एक तो वे थे जो अत्याचार के इतने आदी हो गए हैं कि वे सारे अत्याचारों और अन्यायों को चुपचाप सहा करते हैं, स्वत्व और स्वराज्य प्राप्ति की अपनी प्रबल इच्छा को भी प्रगट करने में डरते हैं, दूसरे वे जो अन्यायों का विरोध और स्वत्वों की माँग तो करने लगे हैं लेकिन द्राविड़ी प्राणायाम से—राजनैतिक भाषा में। तीसरे वे जो आपे से बाहर होकर बम्ब, रिवाल्वर और षड्यंत्रों से काम लेते हैं। इनमें से पहले प्रकार के लोगों की संख्या अधिक है। ये लोग अत्याचार और अन्याय का विरोध नहीं करते इसलिए ईश्वर की आज्ञा भंग करने के कारण ईश्वर के सामने दोषी हैं। साथ ही अन्याय करने वाले को अन्याय तथा अत्याचार करने वाले को अन्याय और अत्याचार करने की आदत डालने का दोष भी इन्हीं लोगों के ऊपर है। दूसरे प्रकार के लोग संख्या में कम परन्तु प्रभाव, विद्या-बुद्धि और योग्यता में बढ़े हुए हैं। ये लोग कूट नीति का अनुसरण करके एक तो नैतिक पाप करते हैं, दूसरे कूट नीति विशारद विरोधियों के मुकाबले में सफल नहीं हो सकते। क्योंकि वे उसमें रंगे हुए हैं, जबकि ये उनकी नकल मात्र करते हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि विपक्षी को उसी के शस्त्रास्त्रों से नहीं, अपने शस्त्रास्त्रों से ही हराया जा सकता है। तीसरे जो संख्या में इने-गिने एक तरह से नगराम ही हैं, कीट-पतंगों की तरह अन्त में गिरकर जल मरते हैं। वे व्यर्थ ही भारी त्याग करते हैं तथा अत्याचार के लिए और भी बहाना एवं मौका देते हैं। इस प्रकार सत्याग्रह ही एकमात्र उपाय रह जाता है—उसी में मुक्ति है। लोग सत्य का आग्रह करें—सच बोलें—साफ-साफ कहें कि हमारे साथ अमुक अन्याय हो रहा है और अमुक स्वत्व हमें मिलना चाहिए। इससे लोक-मत बनेगा, और अन्याय तथा अत्याचार चुपचाप बिना मालूम हुए नहीं हो सकेगा। प्रबल लोक मत और अत्याचार की गूँज से अन्त में अधिकारियों का आसन हिलेगा—अभीष्ट की प्राप्ति होगी। लाभ बहुत अधिक होगा, हानि बहुत कम। अधिक से अधिक किसी अधिकारी की भृकुटी टेढ़ी हो जाएगी तो वह हाथ मिलाना छोड़ देगा, कोई उपाधि न देगा—या कोई और मामूली हानि पहुँचा देगा। परन्तु क्या अपने स्वत्वों की रक्षा, स्वराज्य की प्राप्ति, ईश्वर की आज्ञा-पालन अन्याय और अत्याचार के दूरीकरण, अपनी सर्व प्रकार की उन्नति और स्वाभिमान एवं प्रतिष्ठा की

वृद्धि के लिए हम इतना तुच्छ त्याग भी करने को तैयार नहीं होंगे ? सत्याग्रह से सचमुच, न्यूनतम विरोध के मार्ग से (On the line of least resistance) अभीष्ट-सिद्धि होगी। (यह स्मरण रहे कि मैं सत्याग्रह को 'निष्क्रिय-प्रतिरोध' या 'शिष्ट अवज्ञा' के अर्थ में नहीं ले रहा हूँ, वरन्, उसके व्यापक अर्थ में।)

यदि नौकरशाही मध्य कालीन राजनैतिक सिद्धान्त से भारत का शासन करे तो भी सत्याग्रह से स्वराज्य-प्राप्ति में और असुविधाएँ मिटाने में सफलता मिलेगी। क्योंकि मध्यकाल में लोग यह मानते थे कि राज्य की शक्ति अपरिमित है—वह जो चाहे कर सकता है, उसकी शक्ति की कोई क़ानूनी सीमा (Legal restraint) नहीं है, सत्याग्रह कहता है कि क़ानूनी न सही नैतिक तो है । राज्य की शक्ति की नैतिक सीमा (Moral restraint) को तो मध्यकालीन लोग भी स्वीकार करते थे। सत्याग्रह नैतिक बल से सरकार की शक्ति को उसकी नैतिक सीमा का उल्लंघन करने से रोकेगा यदि इस सीमा का पालन किया जाय तो भी सब कुछ है। इधर सत्याग्रह अराजकता और क्रान्ति को बलहीन कर देगा।

सत्याग्रह से देश में निर्भीक, स्वतन्त्र और कैद भोगी लोगों का एक समुदाय उत्पन्न हो जायगा, जिसमें लोगों का भय दूर होगा, और कैद इतनी बुरी चीज़ न मानी जाएगी जितनी कि मानी जाती है। बल्कि स्वतन्त्र देशों की तरह लोग यह मानने लगेंगे कि अन्याय सहते हुए, अन्यायपूर्ण क़ानूनों के रहते हुए—स्वतन्त्र रहना बुरा है और ऐसी दशा में स्वतन्त्र रहने से कैद जाना अच्छा है। सत्याग्रह के कारण ऊँच-नीच और अमीर-ग़रीब का भेद-भाव दूर होने से समाज सुधार होगा और कष्ट सहन के कारण सहानुभूति तथा बन्धत्व का भाव देश में जाग्रत और दृढ़ होगा।

सत्याग्रह का मंत्र संसार को शान्ति का सन्देश सुनाएगा, जो सन्धि-परिषद् न कर सकी उसे सत्याग्रह करेगा । वर्तमान युद्ध में वैसे नष्ट हो जाने पर भी जर्मनी की नैतिक विजय हुई क्योंकि प्रतिहिंसा और स्वार्थ के भावों में यूरोपीय राष्ट्र बह गए हैं। सत्याग्रह जर्मनी को नैतिक पराजय देगा। धार्मिक भारत भौतिक (Materialistic) यूरोप को आत्मबल की श्रेष्ठता और शसक्तता का उपदेश देगा। युद्ध की आवश्यकता न रहेगी। पूर्ण स्वतन्त्रता होगी, सच्ची समता होगी—और होगा भ्रातृत्व। वसुधा कुटुम्ब होगी, उदात्त चरितों की ही नहीं—मनुष्यमात्र की। और यह सब सत्याग्रह से ही सम्भव है।

27

चीन : 'आगामी एशिया' की पहेली ?

संसार के ग़रीब देशों में एक देश चीन भी है। वहाँ के निवासियों के भी दो-दो हाथ-पैर हैं, और वे उतने ही भले और अच्छे हैं जैसे और लोग। चीन में प्रजातन्त्र राज्य है। परन्तु यदि कमी उनमें है तो यह कि वे अपने ऊपर आँख गड़ाने वालों की आँखों की ओर निर्भीकता से अँगुली नहीं उठा सकते। और वर्तमान दुनिया में, जिसमें इतना बल नहीं, उसकी गुज़र नहीं !

अपनी इस लाचारी से ही, चीन सन्धि-कान्फ्रेंस के सामने अपना मसला पेश करने के लिए उपस्थित हुआ। लेकिन खेद की बात है कि उसकी तरफ अब तक बहुत कम ध्यान दिया गया है। पर, इसके यह अर्थ कदापि नहीं कि उसकी पहेली ध्यान दिए जाने के योग्य ही नहीं। यदि ऐसा होता तो, चीन कान्फ्रेंस से खिच बैठने की धमकी कदापि न देता। परन्तु वहाँ पर हम यह कह देना चाहते हैं कि चीन और इटली में अन्तर है। बहुत अन्तर है। तथापि मित्र-राष्ट्रों की गोष्ठी से अलग होकर किसी भी मुसीबत का सामना करना उसके लिए कम है लेकिन जबकि उसकी पहेली पर विचार नहीं किया गया, तब सन्धि पर हस्ताक्षर करना उसकी समझ में बड़ी मुसीबत है। चीन के प्रतिनिधि पेरिस में अपनी करुण कहानी सुनाने गए थे, पर अभी तक उसकी कहानी नहीं सुनी गई। अकेला अमेरिका उसकी तरफदारी पर है, परन्तु यह तनिक भी महत्त्व की बात नहीं, क्योंकि संसार में केवल अमेरिका ही एक देश है जिसका चीन में कोई स्वार्थ नहीं, और जो वहाँ कोई क्षेत्र भी तैयार नहीं करना चाहता। पैसफिक की समस्या भले ही इस समय किसी कारण से न हल की जाय पर वह कभी-न-कभी हल होकर ही रहेगी और चीन की असहाय दुखिया देश की आहें एक-न-एक दिन सारे संसार को कँपा देंगी। इतना ही क्यों, बहुत सम्भव है, कि, जो लोग आगामी 'एशियाई महाभारत' का स्वप्न देख रहे हैं, वे सच्ची कल्पना कर रहे हों। और सचमुच में, चीन के मामले की उपेक्षा 'आगामी एशिया' में काले बादलों के घुमड़ने की आशंका उत्पन्न कर रही है।

चीन की समस्या इतनी गम्भीर क्यों है, यह एक उत्तर देने योग्य प्रश्न है। कमजोरी और ग़रीबी, यों दोनों ही राष्ट्रों के लिए मरण के वारण्ट हैं! चीन के नाम ये वारण्ट बहुत दिन हुए कट चुके हैं। 1914 में चीन ने मित्रों से सहानुभूति रखने के कारण जर्मनी से सम्बन्ध त्याग दिया था। परन्तु वह किसी प्रकार की सैनिक सहायता नहीं दे सका। शायद उसका यह पहला पाप था। और इसी के प्रतिफल में जब सन्धि-कान्फ्रेंस के लिए उसके प्रतिनिधि चलने लगे, तो जापान ने यह कहकर उनका विरोध किया था कि ये प्रतिनिधि तो जापान के विरोधी (Anti-japannese) हैं। फिर जब जर्मनी को सन्धि की शर्तें दी जा रही थीं, तब भी चीन के प्रतिनिधि उस कमरे से बाहर रखे गए। क्योंकि चीन ने युद्ध में भाग नहीं लिया था। फिर ऐसी ही हीनावस्था उसकी 'राष्ट्रीय पंचायत' में रखी गई है, वहाँ भी उसके इने-गिने प्रतिनिधि रखे गए हैं। ये तीनों बातें प्रकट करती हैं कि सन्धि-कान्फ्रेंस ने अभी तक चीन की ओर कम ध्यान दिया है।

यदि मुसीबतों का अन्त यहाँ हो जाता तो खैर थी। परन्तु इन उपेक्षाओं की जड़ 'कियाओ-चाओ' टापू है युद्ध के पहले तक चीन कमज़ोर होते हुए भी सुरक्षित इसलिए था कि उसमें संसार के कई राष्ट्रों का स्वार्थ था, युद्धारम्भ होते ही यूरोपीय राष्ट्रों का ध्यान इधर-उधर खिच गया, जापान ने घात पाकर 'कियाओ-चाओ' पर क़ब्ज़ा कर लिया। यद्यपि 99 वर्षों के 'रहननामे' के पश्चात् जर्मनी चीन को कियाओ-चाओ वापस दे देता, पर युद्ध-पर्यन्त जापान ने कियाओ-चाओ चीन को वापस नहीं दिया। इतना ही नहीं जापान ने मौका पाकर 'शाण्टुंग' प्रान्त में भी पैर फैला दिए। जब चीन ने इस पर नाक-भौं सिकोड़ी, तो उसे लेने के देने पड़ गए। जापान ने अपनी आँखें तनैनी करके उसे युद्ध की धमकी दी! असहाय चीन को झुकना पड़ा और वह भी बुरी तरह। 1915 में जापान ने ज़ोर डालकर एक गुप्त सन्धि कर ली। इस सन्धि की 21 शर्तें थीं। इनके अनुसार चीन के 'कियाओ-चाओ' और 'शाण्टुंग' की पुलिस पर जापान का प्रभुत्व माना गया, चीनी सेना के अफसरों पर भी जापान की प्रधानता स्वीकार की गई और साथ ही अनेक क्षेत्रों में जापान के व्यापार-क्षेत्र (Sphere of interest) मंजूर किये गए! ये शर्तें लगभग वैसी ही रहीं जैसी कोरिया के साथ की गई थीं। और अन्त में जापान ने कोरिया को हथिया लिया! जापान की इन कार्रवाइयों पर मित्र राष्ट्रों को, कम-से-कम अपनी स्वार्थ-रक्षा के लिए ही सही, कुछ-न-कुछ आपत्ति करनी चाहिए ही थी, परन्तु जापान निधड़क अपनी मनमानी करता गया!

चीन सन्धि-कान्फ्रेंस से जो कुछ चाहता है, वह केवल इतना कि, 'कियाओ-चाओ' का पूरा द्वीप उसे सौंप दिया जाय और 1915 की सन्धि रद्द कर दी जाय।

चीन की सम्मति में, यदि ऐसा नहीं होता, तो अपने स्वत्वों से वह हाथ धोता है। इस अवसर पर चीन को यदि, उसका द्वीप वापस नहीं दिया जाता, तो जापान उस पर सदा लोहे का पंजा फैलाए रहेगा, उसके स्वार्थ-क्षेत्र चीन में बढ़ते जाएँगे। और अन्त में वह धीरे-धीरे जापान का एक मातहत राज्य हो जायगा। इस प्रकार वर्तमान समस्या चीन के जीवन-मरण की समस्या है।

पर चीन का मरण महत्त्व रखता है। और यदि मित्र-राष्ट्रों में राजनीतिज्ञों की उपज एक नहीं हो गई है तो उन्हें यह सोच लेना चाहिए कि चीन का मरण रंग लाएगा और यह एशियाई अशान्ति संसारभर के लिए चिन्ताजनक होगी। चीन का उद्धार एक बात में है। उसे उसका द्वीप वापस दे दिया जाय, 1915 की सन्धि तोड़ दी जाय और कृपा या दया समझकर ही सही, पर, 'बाक्सर विद्रोह' वाली क्षतिपूर्ति अब उससे वसूल न की जाय, इन उपायों से आगामी 'एशियाई महाभारत' का एक विषैला कारण दूर हो जायगा।

28

बोल्शेविज्म की लहर

युद्ध के बाद शान्ति की आशा थी, परन्तु, शान्ति तो दूर रही, ऐसी अशान्ति पल्ले पड़ी कि पहले कभी वैसी न देखी गई थी और न सुनी ही। बोल्शेविज़्म के रूप में एक नई बला का जन्म हुआ है। यूरोप की शक्तिशालिनी गवर्नमेंटें उसके मारे दम नहीं ले पातीं। जर्मनी-ऐसे बलवान देश का सिर कुचल दिया गया और नरेशों तथा सम्राटों को अपने सिरों पर से मुकुट उतार देने पड़े, परन्तु, रूस के दीन-हीन, सताये और छकाये हुए लोगों की बिलकुल ही नये ढंग की यह लीला यूरोप के वीर सैनिकों और धुरन्धर राजनीतिज्ञों का दम खुश्क किये हुए है। इंग्लैंड और फ्रांस ऐसे बलशाली देश रूस के बोल्शेविकों को नेस्तनाबूद कर देने के लिए ऐड़ी-चोटी का पसीना एक कर रहे हैं। महीनों अंग्रेज़ी और फ्रांसीसी सेनाएँ रूस के नाकों को दाबे रहीं, और आज भी उनके जहाज़ रूस को घेरे पड़े हैं। महीनों रूस में शान्ति की स्थापना और उसके राष्ट्रीय विकास की दुहाई देते हुए, एडमिरल कोलचक और जनरल डेंकिन को बोल्शेविकों के दबाने के लिए इंग्लैंड और फ्रांस से धन और अस्त्र की भारी मदद दी जाती रही। बड़े-बड़े प्रयत्न हुए, कि बोल्शेविक रूस का अन्य देशों से कुछ भी सम्पर्क न होने पावे, और इस प्रकार बोल्शेविज़्म की छूत एक दायरे में ही घिरी रहकर घुल-घुलकर मर जाय। परन्तु, जितनी कोशिशें इस तरह की, की जाती थीं, बोल्शेविज़्म का ज़ोर उतना ही बढ़ता गया। इस समय एडमिरल कोलचक बोल्शेविकों की कैद में हैं, और जनरल डेंकिन बुरी तरह पिट चुके हैं। बोल्शेविक सायबेरिया में बढ़ते जा रहे हैं। पश्चिमीय यूरोप पर धावा की तैयारी है। काबुल पर उनका मंत्र चल गया है। अन्य देशों पर भी वे अपना जाल फेंक रहे हैं। यूरोप के शक्तिशाली देश बोल्शेविज़्म की इस बाढ़ पर बहुत चिन्तित हैं। उनकी चिन्ता इन बातों से भली-भाँति जानी जा सकती है कि इस बला से यूरोप की रक्षा करने ही के लिए टर्की से सुलह करना स्थगित कर दिया गया, और अब, मित्र राष्ट्र अपनी शक्तियाँ केवल इस बाढ़ के रोकने में लगा रहे हैं। इसीलिए भारतवर्ष की सरहद पर सैनिक मज़बूती की जा रही है। इसलिए

आरमीनिया के प्रजातन्त्र को मित्र राष्ट्रों ने इस सप्ताह स्वीकार कर लिया। इसीलिए, दक्षिणीय रूस में मित्र राष्ट्रों का जहाज़ी बेड़ा एकत्र हो रहा है। और इसलिए, पोलैंड की रक्षा की चिन्ता हो रही है। यूरोप की इन शक्तियों की दृष्टि से बोल्शेविज़्म से बढ़कर घृणित और कोई चीज़ ही नहीं। वे संसार-भर के लिए इसे एक भारी विपत्ति समझते हैं। इस भारी विपत्ति से संसार को मुक्त रखने ही के लिए वे अपने धन और जन का भीषण विनाश करके बोल्शेविज़्म का मुकाबला कर रहे हैं। वे कहते हैं, बोल्शेविज़्म व्यक्तिगत सम्पत्ति का विनाशक और समाज के वर्तमान क्रम का संहारक है। उनके अनुसार, धनवानों और जायदाद वालों का कहीं ठिकाना नहीं। स्त्रियाँ बाँट ली जाती हैं। सोवियत शासन प्रणाली पूरा हुल्लड़ है। कहीं शान्ति नहीं। मारकाट और छीना-झपटी का राज्य है। उस समस्त भूमि पर, जिस पर बोल्शेविकों के चरण पड़े, समस्त दिशाएँ हा-हाकार से गूँज उठीं। नृशंसता और रक्तपात, ज़बर्दस्ती और लूटमार यही बोल्शेविकों के अस्त्र हैं, और इन्हीं के बल पर वे आतंक जमाये हुए हैं। यह एक पक्ष का विवरण है दूसरा पक्ष और ही कुछ कहता है। विलायत के मज़दूर पक्ष के पत्र बहुधा उस पक्ष की बातें प्रकाशित करते रहते हैं। बोल्शेविकों को धनवानों और ज़मींदारों के विरोधी होने से इन्कार नहीं। वे कहते हैं कि समाज को इनकी आवश्यकता ही नहीं। जो लोग हाथ या दिमाग़ से मेहनत करके देश का उत्पादन नहीं बढ़ाते, उन्हें देश के शासन और संगठन के काम में कोई भी स्थान नहीं मिलना चाहिए। संसार की वर्तमान शासन-प्रणाली को वे अत्यन्त दूषित कहते हैं। वे कहते हैं कि जो लोग अपने परिश्रम से देश को पालते-पोषते हैं, उनके पूरे विकास के लिए यह आवश्यक है कि देश के प्रबन्ध में उनका पूरा हाथ हो और यह तभी हो सकता है जबकि सोवियत शासन प्रणाली से काम लिया जाय, अर्थात्, जबकि मज़दूरों, किसानों आदि श्रमजीवी आदमियों की पंचायतें ही अपने-अपने स्थान का सब प्रकार का प्रबन्ध आप कर लें। और देश-भर का प्रबन्ध सम्बन्धी काम इन पंचायतों के प्रतिनिधियों की सभा करे। वे कहते हैं कि स्त्रियों और पुरुषों के समान हक हैं, स्त्रियाँ बाँटी नहीं जाती, विरोधियों ने इस प्रकार की बातें फैलाई हैं। वे कहते हैं, रूस में अशान्ति नहीं, अत्याचार नहीं, रक्तपात नहीं, ज़ार के समय की अपेक्षा इस समय कहीं अच्छा प्रबन्ध है, दरिद्रता और अकाल है, परन्तु वह बोल्शेविज़्म के कारण नहीं, वह इस कारण है कि मित्र राष्ट्र रूस को घेरे पड़े हैं, उसे सामान नहीं मिलने देते, उसे भूखों मारना चाहते हैं। हम लोगों के लिए जो घटनास्थल से बहुत दूर हैं, इस निश्चय पर पहुँचना बहुत कठिन है कि दोनों पक्षों की बातों में कितनी बातें ठीक हैं और कितनी नहीं। परन्तु इसमें किसी को कोई सन्देह नहीं हो सकता कि, बोल्शे-

विज़म साधारण भावोद्रेक नहीं है, संसार के इतिहास में उसका स्थान रहेगा और संसार के अनेक देश उसके भारी प्रभाव से किसी प्रकार भी न बच सकेंगे। जहाँ तक उसके सिद्धान्तों की बात है, वहाँ तक तो यह कहा जा सकता है कि वे बुरे नहीं हैं, और यद्यपि घटनाओं और ज़मींदारों को विशेष स्थान नहीं देते, परन्तु अन्य आदमियों को, जिनकी संख्या प्रत्येक देश में बहुत अधिक होती है, और जो दरिद्रता और कष्ट के शिकार हुआ करते हैं, कीड़े के स्थान से उठाकर वे मनुष्य का स्थान देते हैं। व्यक्तिगत सम्पत्ति राष्ट्रीय सम्पत्ति का रूप पाती है, और परिश्रम को सम्मान का पद मिलता है। जब बोल्शेविज़्म का उदय नहीं हुआ था तब भी यह बातें कही और सुनी जाती थीं, और उस समय उनसे कोई नहीं छेड़ सकता था। इस समय भयभीत होने के तीन कारण हैं। एक तो यह कि जो बातें पहले दार्शनिक ढंग से बहसों में ही समाप्त हो जाने वाली समझी जाती थीं, वे इस समय कार्य का रूप धारण कर रही हैं। लोगों ने ऐसा कभी न समझा था। फिर काम का रूप भी किस प्रकार धारण कर रही हैं? पूरी उग्रता से। यह बाढ़ आगे आने वाले वृक्षों को जड़ से उखाड़कर फेंकती जा रही है। इस प्रकार के आगमन का स्वागत कौन करेगा। तीसरी बात जो बेतरह खटकती है, है सोवियत शासन प्रणाली। वर्तमान संसार के बड़े-बड़े धनवानों और जमींदारों, व्यापारियों और कोठी वालों को उसमें कोई स्थान नहीं। यदि रूस ही तक यह बात रहती तो भी यूरोप वाले शायद न बिगड़ते। बिगड़ा हुआ रूस तो अकेले यूरोप ही में नहीं, अमेरिका और एशिया तक में यह विष फैला रहा है। रूस के धनहीन लोग संसार भर के शक्तिशाली और धनवान आदमियों की श्री और सत्ता का अन्त कर देने के लिए कटिबद्ध हैं। संसार के शक्तिशाली समुदाय इस प्रकार अपना विनाश चुपचाप कैसे देखें? इसीलिए बोल्शेविज़्म के रोकने की बड़ी तैयारियाँ हो रही हैं। हमारे खयाल से इन तैयारियों से कोई लाभ न होगा। आप बोल्शेविज़्म को जितना दबाएँगे, उतना ही सुरसा की भाँति वह अपना प्रसार बढ़ाएगा। इंग्लैंड की यह भारी ग़लती थी, और जिसके लिए अभी नहीं परन्तु आगे चलकर वह अवश्य ही पछताएगा—कि उसने घेरा डालकर, सेना उतारकर, डेंकिन और कोलचक को मदद देकर, रूस के भीतरी मामले में हस्तक्षेप किया। वाजिब मार्ग यह था कि जिस समय रूस ने पीठ डाल दी थी, उसी समय उसे छोड़ दिया जाता, उसे जर्मनी से लड़ते रहने के लिए कदापि न कोंचा जाता। परन्तु ठोक-पीटकर वैद्यराज बनाने की नीति ने रूस को इंग्लैंड का मित्र से विरोधी बना दिया, और अन्त में, इस समय तक होने वाली मूर्खताओं के कारण कटुता बढ़ती ही गई और विष फैल गया। यदि हस्तक्षेप न किया जाता तो गिरता पड़ता रूस संभल जाता, और उसे बोल्शेविज़्म

का विष इतना तेज़ कदापि न व्यापता। अब भी समय है। उसके घरेलू मामले में कुछ भी हस्तक्षेप न किया जाय। यदि ऐसा हो, तो बोल्शेविज़्म की शक्तियाँ दूसरों से लड़ने और नाहक विष फैलाने के बजाय अपना घर संभालने में लग जाएँगी। यदि रूस वाले अपने यहाँ सोवियत गवर्नमेंट ही रखना चाहते हैं, तो भी हस्तक्षेप की क्या आवश्यकता है? यदि वह अच्छी चीज़ है तो चल जाएगी। यदि बुरी है तो टूट जाएगी और उसके स्थान पर और कोई दूसरा खेल खड़ा होगा। इसके अतिरिक्त, एक बात और भी है, जिस पर संसार के सभी विचार-शील आदमियों का ध्यान जाना चाहिए। इस समय संसार में धन की उपासना बेतरह हो रही है। धन की पूजा होती है और उसके इशारों पर नाचा जाता है। पता नहीं, मनुष्य के मन में धन की उपासना की जो भावना इस समय भली भाँति घर कर चुकी है वह निकट भविष्यत् में दूर भी हो सकेगी या नहीं, ऐसा हो या न हो, परन्तु इसलिए कि, समाज में विषमता न फैले, इसलिए कि एक ओर मुट्ठी-भर आदमी बेतरह अमीर न हों और दूसरी ओर असंख्यों आदमी खाने-पीने और ओढ़ने-पहनने तक के लिए न तरसें, इसलिए कि ग़रीब-अमीरों की अमीरी देखकर ईर्ष्या से न जलें और पशुता के भावों से न भर जाएँ और वैसे ही कामों को न कर डालें, यह आवश्यक है कि समाज में अत्यन्त अमीरी और अत्यन्त ग़रीबी अवांछनीय मान ली जाएँ और रियायतों के युग का बिलकुल अन्त कर दिया जाय। इस परिवर्तन से वे शक्तियाँ ढीली पड़ जाएँगी जो वर्तमान संगठन की क्रूरता और विषमता के कारण समाज को कुछ काल के लिए बिलकुल ही छिन्न-भिन्न कर डालने के लिए आगे बढ़ रही हैं। उन पर दाँत पीसने से काम न चलेगा। उनका पशुबल के आधार पर मुकाबला करने से कदापि विजय न होगी। समाज के पापों का पुंज इस प्रकार की समस्याएँ समय-समय पर उपस्थित करता है। ऐसे अवसरों पर उद्धार, और, और भी ऊँचा उठने का उपाय केवल यही है कि त्याग और तपस्या द्वारा समाज पूरा प्रायश्चित्त करे। वे त्याग करें जो अभी तक बहुत कुछ लिये बैठे थे। वे प्रायश्चित करें जिनके हाथ पापों से सने थे। यदि ऐसा नहीं होगा — जैसा कि वर्तमान संसार के रंग-ढंग को देखकर, कौन कह सकता है कि ऐसा ही होगा, तो संसार देखेगा कि मनुष्यों की रक्त की नदी में बड़ी-बड़ी क्रांतियाँ उतराती और बहती जा रही हैं। ऊँचे उठे हुए सिर धरातल में लोट रहे हैं और गिरे हुए सिर उन पर क़हक़हा लगा रहे हैं। पग-पग पर उसे आशा और उद्धार की हुँकार, सुनाई पड़ेगी। परन्तु प्रत्येक क्षण, क्रिया और प्रतिक्रिया एक के बाद दूसरा विभीषिका पूर्ण दृश्य उपस्थित करती हुई उसे सुख और शान्ति से और भी दूर और, अति दूर लेती चली जाएगी।

29

बोल्शेविक ख़तरा

आशंका है कि बोल्शेविज़्म की छूत भारतवर्ष तक फैलेगी। उसकी बाढ़ रोकने का काम यूरोप में शिथिल पड़ गया है। दक्षिण यूरोप में जनरल डेंकिन को शिकस्त मिली। पूर्व में, एडमिरल कोलचक कैद कर लिया गया। ये दोनों रूसी सेना नायक बोल्शेविज़्म के शत्रु थे। मित्र राष्ट्रों की सहायता के बल पर वे इस तूफान का मुकाबिला कर रहे थे। आशा थी, और समाचारों से मालूम भी पड़ता था, कि इन दोनों के उद्योग से बोल्शेविकों का बल टूट जायगा, और यदि इन दोनों की सेना मिल गई, जैसा कि चाहा जाता था और उसके लिए यत्न भी किया जा रहा था तो फिर यूरोपीय रूस की चहारदीवारी में बन्द करके बोल्शेविज़्म का अन्त कर दिया जायगा, और रूस में फिर से राज सत्ता की स्थापना हो जायगी। परन्तु इन दोनों की सेनाएँ न मिलने पाईं और बोल्शेविकों की वीरता से नहीं, किन्तु, ऐसा मालूम पड़ता है कि अधिकांश में उनकी बातों की मोहकता ने इन सेनाओं को लक्ष्य से नीचे गिरा दिया, और डेंकिन और कोलचक की आशाओं और कल्पनाओं पर पानी फिर गया। बाँध टूट गया, सैलाव बढ़ता जा रहा है। सायबेरिया-भर में बोल्शेविज़्म का राज्य-सा है। वहाँ से वह मध्य-एशिया में पहुँच रहा है। इधर दक्षिणी रूस से आगे बढ़कर बोल्शेविज़्म की लहर कासपियन समुद्र को पार करती हुई ईरान और काबुल के किनारों को स्पर्श कर रही है। कहते हैं, बोल्शेविक लोग ईरान पर अपना जादू चलाने वाले हैं, हिरात में उनके दूतों का अच्छा आदर सत्कार हुआ है और काबुल में भी उनके आदमी पहुँचे हैं। 'पायोनियर' के विशेष तारों और विलायती पत्रों के समाचारों से, यह विदित होता है कि बोल्शेविज़्म के आचार्य लेनिन और ट्राड्जकी का दृढ़ विचार है कि वे भारतवर्ष में बोल्शेविज़्म की आँधी चलावें और इस प्रकार अंग्रेजी साम्राज्य को गहरा धक्का मारें। कहते हैं, इस उद्देश्य से बोल्शेविक दूतों ने मध्य एशिया की मुसलिम जातियों को उकसाना, उनमें बोल्शेविज़्म की आग लगाना और उनके सामने भारतवर्ष की सम्पदा की प्राप्ति का प्रलोभन रखना आरम्भ कर दिया है। हमारे देश के शासक इन बातों से बेख़बर नहीं हैं।

इम्पीरियल कौंसिल की पिछली बैठक में श्रीमान लार्ड चेम्सफोर्ड ने इस खतरे पर कुछ वज़नदार शब्द कहे थे। वे बोल्शेविक खतरे को तुच्छ नहीं समझते। यद्यपि वे कहते हैं कि बोल्शेविकों का कोई ठीक संगठन नहीं, और शान्ति और व्यापार सम्बन्धों की स्थापना से आस्ट्रिया और जर्मनी का कष्ट दूर हो जाएगा और उस समय बोल्शेविज़्म का ज़ोर भी कम हो जाएगा। परन्तु तो भी वे स्वीकार करते हैं कि बोल्शेविज़्म के सिद्धान्तों में आकर्षण का बड़ा भारी खतरा है, और हमले का तो नहीं परन्तु इसी प्रकार के मोहजाल में मध्य एशिया के पड़ जाने का भय है। वायसराय कहते हैं कि इस मामले में गवर्नमेंट ग़ाफिल नहीं है। सर गंगाधर चिटनवीस के एक प्रश्न के उत्तर में कौंसिल में सरकार की ओर से यह भी उत्तर दिया गया कि भारतवर्ष में बोल्शेविज़्म के प्रचार की रोक के लिए सरकार कुछ कर रही है। यह 'कुछ' क्या है यह नहीं प्रकट किया गया। और न उसका प्रकट किया जाना उचित ही समझा गया। हमारा अनुमान यह है कि इस विषय में सैनिक शक्ति दृढ़ की जा रही होगी और शायद उसे बढ़ाया भी जा रहा हो। विलायत के 'टाइम्स पत्र' ने कहा भी था कि भारतीय सीमा पर सैनिक बल बढ़ाया जा रहा है। विगत सप्ताह ब्लैक-सी में मित्र राष्ट्रों के जहाज़ी बेड़े के जाने और कासपियन सी के नाकेबन्दी के समाचार भी आए थे। इसमें सन्देह नहीं कि, इंग्लैण्ड के हाथ बहुत बलयुक्त हैं, और उनसे भिड़कर पार पाना असम्भव है। इन तैयारियों से बोल्शेविज़्म के ढीले-ढाले संगठन के आगे बढ़ते हुए क़दम रुक जाएँगे। परन्तु हमें दूसरी ओर भी दृष्टि डालने की आवश्यकता है। यह बात असंदिग्ध है कि बोल्शेविज़्म के सिपाहियों का जत्था भले ही कमज़ोर हो, परन्तु उनकी बातों का जाल बहुत भारी अवश्य है। उसमें बल है और वह प्रत्येक देश के अगणित लोगों को अपनी ओर खींच लेने की प्रबल शक्ति रखता है। जो लोग जोश और पक्षपात छोड़कर संसार के इस उबाल पर विचार करेंगे वे कदापि इस बात को स्वीकार न कर सकेंगे कि बोल्शेविज़्म तत्त्वशून्य काल प्रवाह मात्र है। समाजों और देशों के वर्षों के संस्कारों और कुकृत्यों के कारण संसार की निम्न श्रेणियाँ अपने प्रति साधु और न्याय युक्त व्यवहार के किये जाने की आशा से इतनी निराश हो गई हैं कि उन्होंने ज़ोर के साथ सिमटकर ऊपर वालों के विरोध के लिए, उन्हें कुचल डालने के लिए, कमर कस ली है। इस समय वे अपना भीषण कटुता से भरा हुआ खेल खेल रही हैं। वे बुरी हैं या भली, यथार्थ में, संसार के सामने यह प्रश्न नहीं है। प्रश्न तो यह है कि जो उलट-पुलट हो रही है, उसके कारण गहरे हैं या थोथे ? यदि वे थोथे हैं, तो कुछ काल के बाद ही चलने वाली हवा का चलचलाव हो जायगा। यदि वे गहरे हैं, तो

पक्षपात और उत्तेजना को विसर्जित करके, काम करने वाली शक्तियों को चाहिए कि वे अपना दिल और दिमाग़ वर्तमान बातों के समझने और आगामी पहेलियों को शान्ति के साथ सुलझाने के लिए तैयार करें। संसार भर में ऐसा ही हो। समाज में जो परिवर्तन अवश्यम्भावी हों उनका पथ न रोका जाय। घोर दरिद्रता और विषम धनाढ्यता से नमस्कार किया जाय। एक देश दूसरे देश को खाये न जिए। एक जाति दूसरी जाति के अज्ञान और निर्बलता से लाभ उठाने की नियत छोड़ दे। व्यक्ति विकास चाहें, और अधिकारों के साथ कर्त्तव्य और संयम के आदर्श को भी साथ लेकर। लक्ष्य हो सुख का, परन्तु दूसरों को बलि करके नहीं। भावना हो विकास की, परन्तु दूसरों के सिरों पर पैर रखकर नहीं। हमें अपने देश के विषय में कुछ बातें कहनी हैं, हम हृदय से चाहते हैं कि बोल्शेविज़्म की छूत हमारे पवित्र देश को न छुए। यह भूमि मध्य एशिया की बर्बर जातियों और असभ्य लोगों की आखेटस्थली न बने। परन्तु सुन्दर अभिलाषाएँ केवल सुन्दर होने के कारण सफल नहीं होतीं उनकी सफलता उनकी सुन्दरता तथा उनको कार्यरूप में परिणत करने की अवस्था की सुन्दरता पर निर्भर है। हम अपने देश के शक्तिशाली लोगों का, अत्यन्त विनय के साथ समय के वर्तमान प्रवाह पर, उसकी विषमता और उसकी अटलता पर विचार करने के लिए आह्वान करते हैं। हमें सत्य बात से इन्कार न करना चाहिए कि हमारे देश में विषमता का राज्य ज़ोरों पर है। हम मानते हैं कि लोगों के हृदय धनाढ्यता पर यहाँ उतने ही लट्टू नहीं जितने कि पाश्चात्य देशों में। इसीलिए धनाढ्यता की क्रूरता यहाँ उतनी बढ़ी हुई नहीं जितनी यूरोप के कई देशों में। परन्तु समूह का स्वार्थ इस देश के अगणित लोगों के तन और मन को जिस प्रकार पददलित कर रहा है, वह अत्यन्त शोचनीय अवश्य है। बोल्शेविज़्म की छाया स्वप्न में भी इस देश पर न पड़े, यदि यह स्वार्थ कम हो जाय। हम यह नहीं कह सकते कि वह मिट जाय, क्योंकि मानव स्वभाव शायद ही कभी ऐसा होने दे। परन्तु इस भीषण अवसर पर, दूसरों के कल्याण के साथ अपने कल्याण का विचार, समूहों के हृदय में भगवान् करे, यह भावना उदय हो, कि इस देश में गोरे और काले का भेद कम पड़ जाय, ज़मींदार किसानों को अपना भक्ष्य न समझें, और व्यापारी व्यापार को केवल मोटे होने और नफ़ाबाजी का साधन। कुलीनता प्रतिष्ठा का पट्टा न हो और अछूतता भ्रष्टता का चिह्न। नन्हें बच्चे दूध बिना भूखों न मरें, बड़े बच्चे शिक्षा बिना बुद्धू न बनें। युवक और युवतियाँ बेकारी और दरिद्रता में दिन न काटें और बूढ़ों को खाने-पीने का कष्ट न हो। क्षुधा मन और शरीर को कष्ट न होने दे। और दमन मन और आत्मा का विकास हरण न

करें। देश की गवर्नमेंट और देश की जनता दोनों देखें कि स्वार्थ की घटा कम हो, अज्ञान, दरिद्रता और निर्बलता में पड़े होने वाले लोगों की लूट न होने पावे, धन ही बल न हो और बल ही धन। यदि किसी अंश में भी यह, या इस प्रकार का कुछ भी, कार्य के रूप में परिणत हो सके, तो बोल्शेविज़्म की विषमता इस देश को कदापि न छू सकेगी।

30

आगामी 'महाभारत

मनुष्य के हृदय में यह भाव निरन्तर काम किया करता है कि, वह दूसरों पर प्रभुता प्राप्त करके अपने को सबसे ऊपर रखे। विकास और उन्नति की दृष्टि से यह भाव निन्दनीय नहीं है। पर, यह भाव उन लोगों के समस्त तर्कों का विरोधी है, जो संसार में समता और बन्धुत्व के दावेदार बनकर विश्व-व्यापी शान्ति के स्वप्न देखा करते हैं। सचमुच में, समता और बन्धुत्व, सुख और शान्ति के भाव श्रेय हैं। यदि, ऐसा न होता, तो मनुष्य कभी इनकी दुहाई देते हुए अपनी प्रभुता स्थापित करने का स्वाँग न रचा करता। इन भावों में सार अवश्य है, पर उसके अनुसार सच्चे हृदयों से काम करने वाले इने-गिने हैं। वर्तमान युग की उलझनें बतलाती हैं कि अभी इन सात्विक भावों के अनुयायियों की संख्या बढ़ भी नहीं सकती। बहुतों का खयाल है कि मनुष्य-स्वभाव प्रत्येक स्थिति में व्यक्तिगत अथवा समूह-गत प्रभुता का इच्छुक रहेगा, अतएव इश पृथ्वी पर शान्ति युग कभी नहीं आ सकता। विरोधियों का कहना है कि विश्वव्यापी स्थायी शान्ति की कल्पना विश्रान्त तथा क्लान्त पथिकों का उद्गार मात्र है। क्योंकि संसार संग्राम-मय है। मनुष्य विज्ञान, कला-कौशल और कूट-नीति द्वारा तथा अपने स्वभावगत स्वार्थोंकी सफलता के लिए सदा प्रयत्न करता रहेगा। अतः शान्ति वाद एक ऐसी सुन्दर और सात्विक सनक (Maniae) है जो, मनुष्यों के मस्तिष्कों में निवास करती हुई भी सफल न हो सकेगी।

एक-दूसरे से संघर्ष करने वाले भाव इतने ज़ोरों पर हैं कि कभी-कभी मनुष्य विकास और विनाश की परिभाषा के अद्वैत होने की कल्पना करने लगता है! शीघ्र ही दो पक्ष बन जाते हैं। एक का कहना है कि, विकास के लिए यह आवश्यक है कि, दूसरों की अपेक्षा आगे बढ़ा जाय। आगे बढ़ने के लिए, वरन् आपेक्षित दृष्टि से शीघ्र आगे बढ़ने के लिए, विज्ञान, कला-कौशल तथा कूट-नीति से काम लिया जाय। दूसरे पक्ष का कहना है कि, आगे बढ़ा जाय, पर वर्तमान साधनों को छोड़कर। सबको साथ लेकर आगे बढ़ा जाय, समता, बन्धुत्व तथा शान्ति के ध्येय आगे रख-

कर बढ़ा जाय। यह मत-भेद इस केन्द्र पर जाकर आपस में टकराता है कि, विकास की ओर बढ़ने की परिभाषा क्या है ? संघर्ष-वादियों का कहना है कि विकास की माप करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि, कुछ लोग पिछड़े रहें। इस तर्क से समता और सर्वव्यापी शान्ति की भावना चूर-चूर हो जाती है। व्यक्तिगत अथवा समूहगत स्वार्थ विकास को कलंकित करता है। इस प्रकार लोक-प्रियता तथा समव्यापकता के भावों को ठुकराकर संसार का बहुत बड़ा जन-समूह संसार-संघर्ष में अपनी शक्तियाँ खर्च कर रहा है। शान्तिवादियों की क्रियाशीलता मंद-सी पड़ी हुई है। मार्ग से हटकर, अलग विश्राम करने वाले बटोही की तरह वे इस संघर्ष-लीला को देख रहे हैं। उनका कहना है कि, विज्ञान की नाशक शक्तियों, विलासिता की नई-नई समाग्रियों तथा Consumption की वर्तमान स्थिति की उन्नति करने में सच्चा विकास नहीं है। साम्यवाद या समष्टिवाद भी मनुष्य को विकास के उस शान्तिप्रिय ध्येय की ओर नहीं ले जा सकता। इसमें भी, सुविधाओं (Facilities) की चढ़ा-उतारी तथा व्यय (Consumption) की वृद्धि की छूत लगी हुई है !

संघर्ष-वादी अपने ध्येय की ओर प्रत्यक्ष उन्नति कर रहे हैं। परन्तु, शान्ति-वादियों का कहना है कि जब मनुष्य वर्तमान संघर्ष की अन्तिम सीमा तक पहुँचकर उससे ठोकर खाएगा, तब हमारा काम आरम्भ होगा !

चूँकि व्यक्तियों और समूहों से ही राष्ट्रों का निर्माण हुआ है, अतः संसार के सभी राष्ट्र संघर्ष के संग्राम की ओर अग्रसर हो रहे हैं। इंग्लैंड अपनी प्रभुता को लोक-सत्ता के नाम पर संसार-भर में स्थापित किया चाहता है। जापान और अमेरिका अपने व्यापार और कला-कौशल के आगे संसार के अन्य राष्ट्रों को माथा टेकने के लिए विवश करने के प्रयास में हैं। जर्मनी सोचता है कि यदि, इंग्लैंड ने अपनी प्रभुता की छाप संसार भर पर छाप दी, तो, हमारा वैज्ञानिक तथा शैल्पिक विकास, विकास नहीं, वरन् विनाश के सदृश है ? मुस्लिम राष्ट्रों का कहना है कि, यदि, हमने अपनी धार्मिक कट्टरता की रक्षा न कर पाई तो हमारा विनाश समीप है। रूस का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति को खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने तथा सुख से अपना जीवन व्यतीत करने का समान अधिकार है। यदि सुख और पदार्थ भोग प्राप्त हों तो सबको बराबर-बराबर प्राप्त हों। इस प्रकार प्रत्येक राष्ट्र अपने-अपने ध्येय को अपना-अपना विकास माने हुए बैठा है, उसकी पूर्ति के लिए संघर्ष यज्ञ में अपनी-अपनी आहुतियाँ देता जा रहा है। एक-एक आहुति बड़े-बड़े संग्रामों की रचना करती है। विज्ञान के भयंकर साधनों ने इस यज्ञ को इन दिनों इतना अधिक प्रज्वलित कर दिया है कि उसकी नाशकारी लपटों के साथ, शान्ति-युग की भावना

विलीन-सी होती जा रही है। रूस की राज्य-क्रान्ति, जर्मनी का राज-सत्ता-प्रेम, इंग्लैंड और अमेरिका की हड़तालें, फ्रांस की मज़दूर-क्रांतियाँ, स्पेन के विप्लव, इटली के साम्यवादी आन्दोलन, टर्की के धर्म-युद्ध और गुलाम जातियों के स्वाधीन बनने के लिए होने वाले आन्दोलन—सभी इस संघर्ष-यज्ञ के आहुतिदाता हैं। अभी तक जितने संघर्षण हो चुके हैं, उनसे कुछ भी निर्णय नहीं हो पाया है। पता नहीं, अभी कितने संघर्षण और होंगे। पर, वर्तमान स्थिति से यह स्पष्ट पता चल रहा है कि संघर्षण स्वयं कुछ भी निर्णय न कर सकेंगे। हाँ, उनके परिणामों से ऐसे साधन अवश्य उत्पन्न हो जाएँगे, जो सच्चे निर्णय की ओर जाने का मार्ग बतला सकेंगे। गत यूरोपीय महा संग्राम ने ऐसे कुछ साधन दिए हैं, पर उतने से ही काम न चलेगा। इसीलिए फिर नए संग्राम की तैयारियाँ हो रही हैं। भले ही यह आगामी महाभारत उतना बड़ा और उतना भयंकर न हो पर हमें विश्वास है कि, इसकी व्यापकता, पिछले महा संग्राम की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत होगी।

मनुष्यों की रक्तांजलियों से ही मनुष्य के कल्याण की स्वयं रचना होने जा रही है। कितना भीषण दृश्य है! पर अब स्थितियाँ बतलाती हैं कि वर्तमान उलझनों ने कोई दूसरा मार्ग ही नहीं छोड़ा है। यदि वास्तव में ऐसी स्थिति है, तो, हम मनुष्य जाति के सच्चे विकास और उद्धार के नाम पर सजल नेत्रों सहित इस विकराल संघर्षण का स्वागत करते हैं।

31

सुगमता की माया !

काम करने के दो मार्ग हैं। एक तो यह कि आगे बढ़ा जाय, परन्तु आदि से लेकर अन्त तक नैतिक आधार न छोड़ा जाय। दूसरा यह कि, काम हो, और फिर चाहे जिस तरह, नैतिक आधारों के बल से या उन्हें छोड़कर। पहले ढंग से काम करने वाले अपनी दृष्टि के सामने नैतिक सिद्धान्तों को रखते हैं। वे इन उसूलों के बल जीते हैं और उन्हीं पर मरने के लिए तैयार रहते हैं। वे उसूलों पर शहीद होकर अपनी लाशों का ज़ीना तैयार करते हैं। और, ऊपर चढ़ने की लालसा रखने वाले पथिक को इस ज़ीने पर क़दम रखते हुए आकाश-चुम्बी चोटी पर पहुँच जाने का प्रबल संदेश देते हैं। दूसरा मार्ग पास का है। दूर तक चलकर यात्रा तय करने की इच्छा नहीं की जाती। सुगमता ही का सदा सहारा लिया जाता है। सिद्धान्तों के लिए रुकने या ठहरने की आवश्यकता नहीं जिस ढंग को तुम घृणित से घृणित समझते हों, यदि उससे भी तुम्हारा काम होता-सा दिखाई पड़े जो कभी यथार्थ में नहीं होता, क्योंकि आचरण की वह विषमता उसी ढंग की एक के बाद दूसरी नई पहेली खड़ी किये बिना नहीं रह सकती तो, मत चूको फौरन प्रहार कर दो, मनुष्य से पशु और अन्त में पशु से भी गिरे हुए बन जाओ। पहला ढंग मन को ऊपर चढ़ने के लिए मार्ग देता है, दूसरा, अन्त में, उसे नीचे उतरने के लिए विवश करता है। पहला समाज में विश्वास और निर्भयता का साम्राज्य स्थापित करता है, दूसरा मनुष्य को मनुष्य पर बिलकुल अविश्वास करना सिखाता है और समाज में भय और कायरता का संचार करता है। संसार में नाना प्रकार के मनुष्य हैं, इसलिए काम करने की ये दोनों प्रणालियाँ पहले भी चलती रहीं और आगे भी चलती रहेंगी। परन्तु पहली प्रणाली सदा श्रेष्ठ समझी जाती रही और दूसरी प्रणाली को वह दर्जा कभी नसीब नहीं हुआ। अब गहरा परिवर्तन हो रहा है। आदर्शों पर मरना और उनके लिए ही जीना उन लोगों की दृष्टि में केवल मूर्खता है जिन्हें सुगमता प्रिय है, और जो हाथ के पास का लाभ ही देख सकते हैं, और जिनकी संख्या अब दिन-दिन बढ़ती ही जाती है। राष्ट्रीयता, राजनैतिक विकास, आर्थिक

संघर्षण और प्रतिद्वन्द्विता आदि वर्तमान काल की चहल-पहल की बातें सुगम लाभों की प्राप्ति की ओर और भी सरपट दौड़कर चलने की शिक्षा देती हैं। वर्तमान युग इन्हीं भावनाओं का युग है। संसार की समस्त शक्तियाँ इन्हीं भावनाओं की उपासना के लिए आगे बढ़ती जा रही हैं। राजनैतिक विकास ही इस समय सब कुछ है। राजनैतिक सत्ता ही इस समय समरी सत्ता की जड़ है। जो इस समय राजनैतिक आन्दोलनों का कर्त्ता है, वही जगद्‌गुरु है। लोग उसके चरणों पर सिर रखते हैं और अपनी आत्माओं को उसके हाथ सौंपते हैं। संसार में अन्धी भेड़ की यह चाल सदा रही है, और इसलिए कोई आश्चर्य नहीं, यदि आज भी वह हो, यद्यपि दूसरी ही दिशा में। परन्तु क्षणिक लाभ, सुगमता, राजनैतिक प्रपंचों और उथले जीवन की उपासना के लिए दौड़ पड़ने के पहले इस देश के उन लोगों को कुछ सोच लेने की आवश्यकता है जिन्हें अपने देश की सभ्यता का ज्ञान है और जो यह भी समझते हैं कि, वे सब लाभ जो लाभ के सदृश दीख पड़ते हैं, यथार्थ में उसी प्रकार लाभ नहीं हैं, जैसे कि, वे सब चमकदार टुकड़े सोने के टुकड़े नहीं हैं, जो सोने की भाँति चमकते हुए दिखाई पड़े। संसार की अच्छी बातों को हम लें। परन्तु, लेने वाले इतनी होशियारी अवश्य करें कि, कहीं ऊपरी चमक-दमक पर रीझकर वे अच्छी चीज़ों के स्थान पर नकली चीज़ें न उठा लें। कहीं सात्विकता के स्थान पर धूर्तता का और वीरता तथा निर्भयता के स्थान पर कायरता और भय का सौदा न हो जाय। कहीं यह न हो कि जब सर्वस्व ही दाँव पर लगा दिया जाय, हृदय की बाज़ी लगी हो, तब हम सब खो बैठें और बदले में जो कुछ मिले, वह इतना थोड़ा हो कि उसका स्थायी मूल्य कुछ भी न हो।

हम एक अत्यन्त परिवर्तन शील युग में से होकर गुज़र रहे हैं। अच्छे आदमी अभी तक अच्छे ही कहे जाते हैं, और बदमाशों को अब भी बदमाश कहा जाता है। परन्तु, व्यक्ति के लिए जो काम बुरा है, वह इस युग में व्यक्तियों के समूह के लिए बुरा नहीं समझा जाता। चोरी करने वाला व्यक्ति निन्दनीय और दण्डनीय है, परन्तु डाका डालने वाला और दूसरों का माल उड़ाने वाला व्यक्तियों का समूह—राष्ट्र—बुरा नहीं कहा जाता। नहीं, दशा तो यह है, कि लोग ऐसा करते हुए खुश होते हैं। यदि आपका राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का धन या धरती हड़प कर जाय, तो आप खुश होंगे, अपने राष्ट्र की इस पापमयी प्राप्ति पर आँसू बहाने के बजाय उसे विजय और राष्ट्रीय उन्नति कहकर खुशी के शादियाने बजाएँगे। एक आदमी दूसरे को सताए तो वह बुरा, और यदि एक क़ौम दूसरे की जड़ काटे तो देशभक्त और राष्ट्र-भक्त फूले अंग नहीं समाते। व्यक्तियों के लिए क़ानून है, परन्तु व्यक्तियों के समूहों के लिए कोई क़ानून नहीं। इस क़ानून के बनने की आवश्यकता है परन्तु वह बने भी

कैसे ? अपनी-अपनी सुगमता के ध्यान में सभी दीवाने हैं। अपना मतलब साधना ही सबका परम उद्देश्य रह गया है। और उसी ओर आने के लिए ये सब, वर्तमान संसार के कर्त्ता-धर्त्ता, संसार भर को पूरा निमंत्रण दे रहे हैं। संसार उनका निमंत्रण स्वीकार कर रहा है। उन्हें युग का संस्थापक मानता हुआ वह उनके चरणों में दीक्षा लेने के लिए बैठता जा रहा है। वह भक्ति से, अपना हृदय उनके सामने भेंट-स्वरूप रखता हुआ, शपथ-सी खाकर कह रहा है, कि हृदय तुम्हारे हाथों बेचता हूँ, अक्ल भी उधर ही जायगी जिधर तुम हाँकोगे; सुगमता के नाम पर वर्तमान संसार की परम-संचालिनी कूट-नीति के नाम पर, मनुष्य को मनुष्य से दूर रखने, उसे अविश्वास और अशान्ति की मूर्ति बनाने, उसे निर्भय और निडर अवस्था से सदा परे रखने की तैयारी करने वाले वर्तमान महा-मंत्र के नामपर, तुम जो कहोगे, वही करूँगा, मुर्दनी को, यदि तुम ज़िन्दगी कहोगे, तो उसे ज़िन्दगी कहूँगा। और ज़िन्दगी को यदि मुर्दापन का नाम दोगे तो उसे वैसा ही मानूँगा। हमारा देश इस जगद्व्यापी लहर से बच नहीं सकता। एक बार संसार भर के सिर पर से निकल जाने वाली यह लहर सर्वत्र फैलेगी, और जोर से फैलेगी, परन्तु, मनुष्य के स्वभाव की लचक और घुमाव का ध्यान और अवश्यम्भावी बातों का विचार रखते हुए भी, इस भूमि के आदर्श, अपने प्रबल संस्कारों और अन्त में होने वाली प्रतिक्रिया के बड़े विश्वास पर, इस भूमि के निवासियों से कहते हैं कि, बहती हुई लहर में मत बह जाओ ! कूट-नीति की सुगमता और मन के स्वास्थ्य की अवहेलना ने किस प्रश्न को आज तक हल किया, और किस देश और किस जाति के स्वास्थ्य को ऊँचा और बलवान बनाया ? मृग तृष्णा के प्रलोभन से संसार में अनेक हिरनों ने बड़ी-बड़ी उछालें मारीं, परन्तु वे प्यासे-के-प्यासे ही रहे। राजनैतिक शरीरों में विष के प्रयोगों ने विष का प्रचार ही किया, रोग कभी नहीं हटा। कूटनीति, छल, प्रपंच धोखा-धड़ी, लूटमार के वृक्षों के फल कभी मीठे नहीं हुए और भूमि पर पड़कर वे सदा रक्त-बीज ही सिद्ध होते रहे। फिर ऐसी अवस्था में, क्रियाशीलता के लिए वर्तमान टेढ़ी शक्तियों के साथ घर और बाहर दोनों स्थानों की विषमयी प्रणालियों के साथ संग्राम करने की विशेष आवश्यकता रखते हुए भी, दल-दल में फँसने और दलदल फैलाने के फेर में पड़ने के लिए, क्यों आतुर हो ?

32

मानव-हृदय का उन्माद

अपने भूत जीवन को देखने तक का समय नहीं, घुड़दौड़ में सिंहावलोकन का समय ही नहीं मिलता; मनुष्यता चली जा रही है, अनन्त काल की प्रवासिनी इस मानवता की इष्टवस्तुएँ अभी तक उसे नहीं मिलीं। ऐसा प्रतीत होता है मानो अनेक विघ्नों, अनेक झाड़ियों, अनेक कंटकों को पार कर आज मनुष्यता समय रूपी भूधर के इस वर्तमान शिखर पर चढ़ी हुई एक अज्ञात गर्भ में कूदने को उद्यत है। एक ओर भूत जीवन का गहरा गढ़ा है जिसे वह पार कर चुका है। तथा दूसरी ओर भविष्य का गम्भीर गह्वर। जिस मार्ग से होकर वह आई है उस मार्ग की ओर दृष्टिपात नहीं करती। यदि ऐसा करे तो संभवतः उसे अपने ही खून में रंगे हुए कुछ आरक्त वर्ण मार्गदर्शक स्तम्भ दिखलाई देंगे। जिन पर विषाद ने अपनी अँगुलियों से लिखा है 'सावधान!' किन्तु उन्हें कौन देखता है?

इस जीवन-रात्रि की घड़ियाँ कभी सूर्य की रश्मियों से आलोकित नहीं हुईं। इसी कालिमा में मनुष्यता ने आशा और तृष्णा के काले धागे पर अपनी न जाने कितनी आकांक्षाओं को लटका रखा है। उसका हृदय जब ठेस पर ठेस खाता है तक वह व्याकुल हो उठता है। इसी आकुलता की अवस्था में वह उस धागे पर अपनी इच्छाओं को लटका देता है। उस धागे का अस्तित्व कहाँ है? रात्रि के घनान्धकार में एक काले धागे का कहाँ पता? लेकिन, कहते हैं, मनुष्यता की आँखों से बहुत दूर वह धागा भविष्य के अंचल में छिपा हुआ है, कल्पना सृष्टि के रसाल बन से कई कानों ने कुहुकनी आशा की कुहुक सुनी है, अन्य विश्वसनीयता कहती है कि मेरी दृष्टि तीक्ष्ण है मुझे उस धागे पर वे सब इच्छाएँ लटकती दिखाई देती हैं। किन्तु द्रष्टा कौन है? अन्धविश्वास! श्रोता कौन? कल्पना कर्णेन्द्रिय।

मनुष्य हृदय सर्वत्र अपने-आपके दर्शन करने का इच्छुक रहा। अपने छोटे-से घर में उसने 'मेरा' लड़का 'मेरी' सम्पत्ति देखी। अपने छोटे-से गाँव में उसने 'मेरा' खेत और 'मेरा' कुआँ-तालाब देखा। अपनी छोटी-सी दिनचर्या में उसने सदा ममत्व के ही प्रतिबिम्ब को देखा। प्राकृतिक जलवायु की समानता में उसने 'मेरा'

देश और 'मेरा' वेष ही देखा। यहाँ तक कि त्यागी संन्यासी की शान्त कुटीर में भी सदा 'मेरा' दंड और मेरा 'कमण्डलु' दिखाई दिया। मनुष्यता ने अभाग्यवश कभी इस ममता को विकसित न होने दिया। अच्छा होता यदि मानव हृदय 'तेरे' को भी मेरा ही समझने लगता। किन्तु ऐसा न हुआ। और इसका फल मानवता आज अपनी आँखों से देख रही है। भगवान् बुद्ध के अनुयायी सम्राट् अशोक ने बौद्धत्व का प्रसार तो किया, किन्तु उसके साथ-साथ भारतवर्ष भर में सम्राट् के विजय स्तभों की सृष्टि हो गई। ऐसा होने से बुद्ध के सर्व कालीन सत् सिद्धान्तों में व्यक्ति-विशेष और काल-विशेष की छटा का प्रादुर्भाव हो गया। इससे उनमें संकुचित 'ममत्व' आ गया और इस ममत्व ने आने वाले इतर सम्राटों के अहंतात्मक भाव को जागृत कर दिया।

सब वस्तुओं में मनुष्य इस प्रकार आत्मदर्शन (Self-Projection) करने की इच्छा क्यों करता है? यह मानव-स्वभाव के विपरीत है कि वह एकाकी रहे। विद्वद्वर अरस्तू का कथन है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। यही कारण है कि मनुष्य अहंता ममतात्मक भावों को पोषित करता है। यहाँ यदि प्रश्न उठे कि मनुष्य सामाजिक प्राणी क्यों है? तो हम कहेंगे कि कदाचित् ऐसा करने से उसे आत्म संरक्षण में सहायता मिलती है। जिस-जिस वस्तु को वह पाता है उसमें वह अपनापन स्थापित करने का प्रयत्न किया करता है। और यही अपनेपन के भाव सर्व मनुष्यों में समान रूप से स्थित रहने के कारण एक व्यक्ति का ममत्व दूसरे व्यक्ति के ममत्व से भिन्न होता है। अतः जहाँ इस प्रकार के दो विभिन्न ममतात्मक भावों का समावेश होता है वहीं संघर्षण प्रारम्भ होता है। युद्ध, रक्तपात आदि इस बात के द्योतक हैं। हृदय में जिस समय कुभावों का आन्दोलन होता है, जिस समय कटुता अपना सन्देश सुनाने आती है, जिस समय त्यौरियाँ चढ़ जाती हैं और भौंहें तन जाती है; जिस समय सद्-असद् का ज्ञान विलीयमान हो जाता है उस समय समझ लेना चाहिए कि दो 'मेरे' के संगम से एक 'तेरा' और एक 'मेरा' का आविर्भाव हुआ है।

रूस के ज़ार ने अपने ममत्व को यहाँ तक विस्तृत किया कि उसे सारे के सारे भीमकाय रूस में सिवाय अपने और कोई नहीं जँचता था। उसका ममत्व संकुचित था, उसका ममत्व अंधकारमय था; उसके ममत्व में असद् की मात्रा के सिवा और कुछ न था, उसका ममत्व आततायी था; फल यह हुआ कि अन्यान्य ममत्व संघर्षण के लिए उठ खड़े हुए। दूसरी ओर टालस्टाय के ममत्व का रूप है। इसमें पूर्ण ज्ञान का समावेश था, यह अपनापन पूर्ण विस्तृत था—फल यह हुआ कि इस प्रकार की अहन्ता में अहम्मन्यता का लेश भी नहीं रह गया और इस कारण सघर्षण का पूर्ण-

रूप से अभाव ही रहा।

अनन्त समय—पर्वत के वर्तमान-शिखर पर खड़ी हुई मनुष्यता भविष्य की अतल गहराई में कूदने को उद्यत है। अपने उन्माद में उसने अभी संकुचित ममता ही को जहाँ-तहाँ प्रसारित किया है। उसे चाहिए कि वह अपने भूत जीवन की घूमघुमैयाँ चढ़ाई की ओर एक बार सचेत होकर दृष्टिपात करे। कुछ स्तंभों पर उसे लिखा हुआ मिलेगा—'सावधान, उन्मादिनी !', यदि इसे देखकर उसने सावधानी से आगे को पैर बढ़ाया तो आशा है कि काले डोरे पर लटकी हुई उसकी अकांक्षाएँ कालिमामय पथ में ज्वलंत मणियाँ बनकर चमकेंगी। अन्यथा सन-सन करती हुई वायु का एक झकोरा उस धागे को न जाने किधर उड़ा ले जाएगा।

33

आदर्श और समझौता

आदर्श के उपासक और समझौते के पक्षपाती में उतना ही अन्तर है जितना प्रातःकाल और सायंकाल में। जिस प्रकार प्रातःकाल की लालिमा का मंद समीरण आगे प्रस्फुटित होने वाले प्रकाशमान दिनमणि के पूर्ण तेज का सूचक होता है, उसी प्रकार आदर्शवादी का आशामय जीवन अपने इष्ट की मूर्ति को अपने हृदय में रखता हुआ संसार के विपुल तेजमय कल्याण का सूचक होता है। सांध्य प्रकाश जिस प्रकार रात्रि के आगमन का द्योतक है उसी प्रकार समझौते का उपासक अपनी जीवन-चर्या को इस प्रकार वाहित करता है कि वह ठीक-ठीक नहीं जानता कि उसके आगे कुहू की निराशामय निशा है या पूर्णिमा के निशानाथ का धीमा प्रकाश। आदर्श का उपासक निराशाओं के प्रति उपेक्षा की दृष्टि से देखता है, उसका जीवन युद्धमय है। समझौते का उपासक व्यावहारिक कठिनता की दुर्दमनीयता का विकराल रूप देखकर घबराता है वह अपने को चतुर और नीतिकुशल के नाम से पुकारता है, वह मरना नहीं जानता। वैयक्तिक जीवन में तथा राष्ट्रीय जीवन में जिस समय आदर्श की पूजा होती है उस समय वह व्यक्ति या राष्ट्र संसार को नवजीवन का संदेश देता है, उस समय का उसका जीवन या मरण आगामी अनन्तकाल के लिए संसार की अमूल्य सम्पत्ति बन जाता है। दूसरी ओर जब यह व्यक्ति अपने आदर्श से च्युत हो जाता है और समझौते को अपना सर्वस्व मानने लगता है उस समय उसके जीवन में तथा संसार के इतर व्यवितयों के अथवा राष्ट्रों के जीवन में कोई अन्तर नहीं रह जाता। वह भी उतना ही समयानुकूलता वादी (Opportunist) हो जाता है, जितना कि संसार का अन्य कोई राष्ट्र। उस समय उसके जीवन में अमर कवित्व नहीं रह जाता, सरसता का लोप हो जाता है, शुष्क नीरस भौतिकता की शरण में वह अपनी नौका को डाल देता है और इस प्रकार अपने आदर्श के त्याग और समझौते के ग्रहण से उसका पतन हो जाता है। हमारी दशा वर्तमान समय में ऐसी ही है। थोड़े ही काल के उपरान्त हमारे पराधीन देश को भी इसी चौरस्ते पर आना होगा। सीधे चले जाने पर अनन्त कठिनाइयाँ, असीम आपदाएँ, सतत युद्ध और अन्तोगत्वा

अमर जीवन तथा अविनाशी मरण मिलेगा, साथ ही दाहिने बाएँ समझौते की सड़क होगी। उस पर चलने से आदर्श सिद्धि का भूलभुलैया से पूरित प्रलोभन, मार्ग की सुगमता का लालच, कुछ सरलता और साथ ही अपने आदर्श से पतन की प्राप्ति होगी। प्रत्येक देश के जीवन में इस प्रकार के मौके आते हैं। उसी प्रकार व्यक्तियों को अपनी जीवन-यात्रा में भी यह चौराहा पार करना होता है और अधिकतर व्यक्ति दाहिने-बाएँ घूम जाते हैं। किन्तु कुछ लोग ऐसे निकलते हैं जो इधर-उधर दाहिने-बाएँ देखने के हिए नहीं ठहरते। उनकी दृष्टि सीधी अपनी इष्ट वस्तु की ओर लगी रहती है। वे सीधे चले जाते हैं। चाहे वे अपनी इष्ट वस्तु को प्राप्त कर सकें या न कर सकें, किन्तु उनका जीवन संसार के इतिहास में ज्वलंत अक्षरों में लिखा रहता है। ये अक्षर अँधेरे में भी चमकते हैं।

आदर्शवादी के और समझौते के उपासक के दृष्टिकोण में बड़ा अन्तर है। इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए जीवन की परिभाषाएँ भिन्न हैं। प्रसिद्ध फ्रेंच तत्वज्ञानी मि० विक्टर ह्यूगो ने अपने श्रेष्ठ उपन्यास 'ले मिज़रेबिल' में एक धर्माचार्य और मरणासन्न क्रांतिवादी के सम्भाषण का चित्रण किया है। उस क्रांतिवादी से उस विशप ने उपालम्भ देते हुए कहा, "महाशय आपने क्रांति की, खून खराबा किया, क्रूरताएँ कीं, प्रभु ईसा मसीह के उपदेशों को पैरों तले रौंदा और आपके कथनानुसार यह सब कुछ आपने स्वतंत्रता, भ्रातृभाव और समानता के नाम पर किया।" इस समय क्रांतिकारी कहता है, "हाँ, यह सब ठीक है। किन्तु आप समझे रहिए, हमारा आदर्श यह खून-खराबा नहीं था। आदर्श तो वही समानता, भ्रातृभाव और स्वतंत्रता का प्रचार और व्यवहार था।" विशप बिगड़कर बोला, "लेकिन, हुआ क्या जनाब ?" यह सुनकर उस वृद्ध मरणासन्न क्रांतिकारी ने अपने भारनमित लोचनों को आकाश की ओर उठाया और बड़े धीमे स्वर में ये शब्द कहे : "O Thou ! O Ideal !! Thou alone exists !! (हे आदर्श केवल तू है !!) इतना कहने के पश्चात् उसके विशाल नेत्रों से एक बड़ा-सा मुक्ता बिन्दु ढुलक पड़ा। इसे आप देख सकते हैं कि आदर्शवादी का जीवन कितना विचित्र लोकोत्तर आनन्दोत्साहपूर्ण होता है। मरते दम तक अपने आदर्श की सिद्धि न होने पर भी वह विश्वास अटल ही बना रहा कि 'केवलम् त्वमसि हे आदर्श' आदर्शवादी से यदि हम पूछें कि तुम जीवन की परिभाषा कैसे करोगे तो वह केवल एक उत्तर देगा। अत्यन्त गंभीरतापूर्वक कह देगा कि जीवन वह अवस्था है जहाँ सज्ञान जीवनधारी अपने इष्ट की पूर्ति के लिए सतत प्रयत्नशील रहें। जीवन आदर्श प्रचार का साधन है (Life is mission)। आदर्शवादी के लिए जीवन सिवाय संदेश के प्रचार-साधन के और कुछ नहीं। दूसरी ओर समयानुकूलतावाद के पोषक, समझौते के

उपासक से यही प्रश्न किया जाय तो वह कहेगा कि परिस्थित्यानुकूल अपने आपको बना लेना ही जीवन है (Life is an adaptation to circumstances)। समझौते के पक्षपाती तथा आदर्श के उपासक की जीवन की परिभाषाओं में इतनी भिन्नता है कि दोनों के दृष्टिकोणों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। आदर्शवादी के लिए जीवन संदेश प्रचार मय है। इसके लिए उसे यह परवाह नहीं कि उसका जीवन किसी खतरे में पड़ जायगा, अथवा वह संदेश जिसको वह संसार को देना चाहता है वहाँ के कीटाणुओं के लिए अनुपयुक्त है। इसका विचार करना वह अपना धर्म नहीं समझता उसे तो अपने संदेश को कोने-कोने में पहुँचाने की लगन है। वह सदा सर्वदा उसी लगन में मस्त रहता है। देश काल की अनुकूलता या प्रतिकूलता उसके लिए कोई बन्धन नहीं डाल सकती। वह अपने प्रचार में अपने गीत की माधुर्यमयी तरल तान में अपने संदेश कोकिल की कुहुक में तल्लीन रहता है। इसके मानी यह नहीं कि आदर्शवादी इतना मूर्ख होता है कि वह उपयुक्त अनुपयुक्त समय की निर्णयात्मक शक्ति से रहित होता है। इसके अर्थ यह नहीं कि वह मानव हृदयों की अशक्तता को अनुभव नहीं करता। इसके अर्थ यह नहीं कि वह हठधर्मी के समान अपनी डफली और अपना राग अलापता रहता है। आदर्शवादी यदि इतना अज्ञानी तथा मानव-स्वभाव से इतना अपरिचित रहे तो वह इसी अपूर्ण संसार के मन्दिर में अपने आदर्श का शंखनाद नहीं कर सकता। यदि वह अपने आपको नहीं समझ सकता; साथ ही उनको भी नहीं जान सकता जिनके लिए वह सदा सर्वदा मरने के लिए तैयार रहता है तो वह उनकी सेवा के साथ-ही-साथ अपने आदर्श का प्रतिपादन कैसे कर सकता है? यदि आत्मविस्मरण और मनुष्य-स्वभाव-अज्ञान दोनों ही आदर्शवादी के अंग हों तो लोग बहुत शीघ्र उसकी गणना अस्थिर स्वभाव वाले उन्नतों की श्रेणी में करने लगें। इसलिए उपरोक्त विवेचन से कोई यह ख्याल न कर ले कि आदर्शवादी निरे मूर्ख होते हैं। नहीं वे समय की प्रतिकूलता का अनुभव करते हैं, वे मनुष्य स्वभाव की उच्छृंखलता को भी खूब पहचानते हैं, किन्तु उन्हें अपने आदर्श की अनन्त सत्यता में तथा अपने प्रयत्नों में इतना विश्वास होता है कि वे प्रतिकूलता को अनुकूलता में परिणत करने का प्रयत्न करते हैं और साथ ही मनुष्यों के स्वभाव को परिवर्तित करने का भी प्रयत्न करते हुए अपने संदेश को सर्वत्र पहुँचाया करते हैं। दूसरी ओर समझौते के सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं। यहाँ दो श्रेणी के मनुष्य पाए जाते हैं—एक तो वे जिनका जीवनारम्भ ही ऐसे संस्कारों को लेकर होता है कि वे प्रारम्भ ही से आदर्शवाद को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। दूसरे प्रकार के वे लोग होते हैं जो प्रथम तो आदर्शवादी रहते हैं, किन्तु जीवन की कठिनाइयों तथा समय की प्रतिकूलता के कटु अनुभव से निराश होकर समझौते के

सिद्धान्त को मानने लगते हैं। यह बात प्रति समय में प्रत्येक देश के जीवन में आती है। जिस समय कोई देश स्वतंत्रता के लिए लड़ता है, उस समय उसका प्रतिरोधी दल कुछ समय के युद्ध के पश्चात् उसकी भविष्य की कुछ कर सकने वाली सम्भावना से भयभीत होकर उसे ऐसे प्रलोभन दिखाता है जिसके कारण वह राष्ट्र अपने ध्येय से पदच्युत हो जाय और वह उस प्रयत्नशीलता को परित्यक्त कर दे जिसके सफल होने से विरोधी दल का नाश सन्निकट आ जाता है। युद्धशील परतन्त्र राष्ट्र या व्यक्ति अपनी शक्ति में विश्वासी होने के कारण विपक्षी दल की इस बात को मान लेता है जो इस प्रकार के समझौते के सिद्धान्त के मानने वाले होते हैं। वे अपने मनसा, वाचा, कर्मणा ऐसा प्रकट करते हैं कि मानो आदर्श प्राप्त करने की सच्ची सीढ़ी वही है जिसे उन्होंने ग्रहण किया है। ऐसे मनुष्यों के सिद्धान्तों में थोड़ी-थोड़ी आदर्श की गंध रहती है। यहाँ कई प्रश्न उठते हैं। समाज का कल्याण महा आदर्शवाद में है या समझौते के सिद्धान्त के ग्रहण करने में ? संसार को मरना और जीना किसने सिखलाया ? समझौते ने या आदर्श ने ? हृदय की तंत्रियों को बजा देने वाली लय किसने गायी, समझौते ने या आदर्श ने ? धर्म के सिद्धान्तों को किसने प्रतिपादित किया ? समझौते ने या आदर्श ने ? सुन्दर-से-सुन्दर और कोमल-से-कोमल नाट्य गीत किसने रचे ? समझौते ने या आदर्श ने ? मनुष्यता की उच्च-से-उच्च नैतिक भावना, अर्चना व वन्दना के कुंकुम अक्षत किसने ग्रहण किये ? समझौते ने या आदर्श ने ? ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर हमें विचार करके अपने आप देना चाहिए।

34

सार्वजनिक सदाचार

महात्मा गांधी ने भारतवर्ष ही के राजनैतिक दृष्टिकोण को परिवर्तित नहीं किया, उन्होंने संसार-भर के राजनैतिक दृष्टिकोण में परिवर्तन कर दिया है। अभी तक हम लोग यह समझते थे कि जीवन कई हिस्सों में बाँटा जा सकता है और यदि किसी व्यक्ति के सार्वजनिक और वैयक्तिक जीवन में महदन्तर हो तो भी कोई बात नहीं। परन्तु महात्माजी ने अपने वैयक्तिक आचरण की महत्ता तथा अपने उच्च आदर्शों के व्यवहार से यह सिद्ध कर दिया कि राजनैतिक और वैयक्तिक जीवन में जो अन्तर दिखाई देता है वह बहुत नगण्य और मिटा देने के योग्य ही है। यही कारण है कि आज देश के सामने वह आदमी, जिसकी जीवन सरणि अहंकार की शिला से टकराकर बहती है, अपने नेतृत्व की छाप नहीं जमा सकता। हम लेख के प्रारम्भिक वाक्य में कह आये हैं कि महात्मा के उच्च नैतिक जीवन का असर विदेशीय जनता पर भी पड़ा है। इसका सबसे जबर्दस्त सबूत मि० विलार्ड के वे लेख हैं जिनमें उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि जर्मनी में यदि सत्याग्रह की असफलता हुई है तो उसका कारण सिर्फ नेताओं के वैयक्तिक आचरणों की कमज़ोरी है। व्यक्ति और समाज में मनुष्य का जैसा आचरण होता है, उसी के अनुसार उसका जीवन बनता या बिगड़ता है। यही कारण है कि एक दुराचारी विद्वान राजनीतिज्ञ अपने देश के नाम पर कई बार ऐसे आचरण कर बैठता है जिन्हें वह सदाचार-शास्त्र की दृष्टि से तो नहीं पर सार्वजनिक या राष्ट्रीय हित की दृष्टि से अच्छे सिद्ध करता है।

व्यक्तिगत सदाचार-शास्त्र और सार्वजनिक किंवा राजनैतिक सदाचार शास्त्र में बड़ा अन्तर होता है। हम लोगों की ऐसी धारणा हो गई है कि वैयक्तिक जीवन में साधुता और सत्य परायणता अच्छी और प्रशंसनीय वस्तुएँ हैं, परन्तु राजनैतिक जीवन में यदि इनका सहारा लिया जाय तो वे प्राणघातक सिद्ध होती हैं—इनके कारण राष्ट्रों का सर्वनाश हो जाता है। ज़रा ध्यान से देखिए तो कि जो बातें एक राष्ट्र के प्रत्येक सदस्य के लिए उत्तम हैं वे ही उनके सामाजिक हित

की घातक बन जाती है। वास्तव में ऐसा है या नहीं सो तो हम नहीं कहते परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हममें से बहुतों की ऐसी ही धारणा है। हमें याद है कि जिस समय अमृतसर कांग्रेस के अवसर पर महात्मा गांधी ने सत्य और न्याय के नाम पर यह प्रस्ताव रखा कि कांग्रेस उन झुण्डों की हत्याओं के प्रति खेद और विषाद तथा विरोध प्रकट करती है जिन्होंने आवेश में आकर निरपराध अंग्रेज़ों का खून किया, उस समय लोकमान्य तिलक ने महात्माजी के प्रस्ताव का विरोध किया और जब महात्माजी ने सत्य के नाम पर अपील की तो लोकमान्य ने सत्य और न्याय का तात्विक विवेचन प्रारम्भ कर दिया। उस घटना के उपरान्त महात्माजी और तिलक देव में पत्र-व्यवहार हुआ। पत्र में लोकमान्य ने यह कह दिया कि World is not meant for sadhus (दुनियाँ साधुओं के लिए नहीं है।) इस पर महात्मा जी ने लिखा था कि दुनिया को साधुओं के लिए न समझना बौद्धिक आलस्य है। कहने का तात्पर्य यह कि हम समझते आए हैं कि व्यक्तिगत सत्य और राजनैतिक सत्य का मापदण्ड जुदा होता है। वैयक्तिक सदाचार-शास्त्र की दृष्टि से जिस वस्तु को हम घृणा की दृष्टि से देखते हैं उसी वस्तु को हम राजनैतिक दृष्टि से अच्छी समझते हैं। धोखा देना, विश्वासघात करना, झूठ बोलना सदाचार शास्त्र की दृष्टि से पाप है, परन्तु राजनीतिज्ञ यदि विश्वासघात, झूठ और दम्भ की शरण लेता है तो उसे कोई बुरा नहीं कहता। मनुष्य की इस विचारशैली का जन्म किन कारणों से हुआ ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। प्रलाप और प्रगल्भ शव्दजाल के फन्दे में फँसने वाले लोग इसकी छान-बीन करने के लिए बैठें तो वे इसके कई कारण ढूँढ़ निकालेंगे, परन्तु सन्तोषजनक मूल कारण का पता लगाना प्रगल्भता का काम नहीं। हम सूक्ष्म में इस विभिन्नता के कारण का पता लगाने की कोशिश करेंगे।

हमारा प्रश्न इस प्रकार है; साधारण सदाचार-शस्त्र के सिद्धान्त और राजनैतिक अथवा सार्वदेशिक सदाचार-शास्त्र के सिद्धान्तों में भेद क्यों है ? जो बात एक व्यक्ति के लिए बुरी समझी जाती है वह राष्ट्र के लिए बुरी क्यों नहीं समझी जाती ? प्रश्न गहन है और इसका सीधा-सा उत्तर देने के पहले हम एक उदाहरण द्वारा इस प्रश्न को अधिक स्पष्ट कर दिया चाहते हैं। मान लीजिए कि हम आप ऐसे समाज में रहते हैं जहाँ ज़बर्दस्ती लड़कियों को भगा ले जाना वहुत बुरा समझा जाता है पर, साथ ही जहाँ विवाह के समय धींगाधींगी करके दूसरे दल की लड़की भगा लाना और उससे विवाह कर लेना बुरा नहीं समझते। यहाँ यह बात स्पष्ट दिखाई देती है कि एक दल दूसरे दल के साथ वही व्यवहार करता है जो वह अपने आपस में भूल के भी नहीं करेगा। अथवा दूसरा उदाहरण यों लीजिए।

थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि हम आप चोरों के समाज में रहते हैं। ऐसी अवस्था में हम दूसरे लोगों के गाय-बैल चुरा लाने में ज़रा भी नहीं हिचकेंगे, पर यदि कोई सभ्य मनुष्य चोर समाज में रहने वाले चोरों से यह पूछें कि तुम दूसरे की चीज़ें क्यों नहीं चुरा लेते, तो चोर समाज के सदस्य उस प्रश्न करने वाले व्यक्ति को महामूर्ख—और पापी कहेगे। कारण क्या है ? क्योंकि एक दल दूसरे दल की लड़कियों को भगा लाता है; पर आपस में एक-दूसरे की लड़की को नहीं भगाता ? क्योंकि चोरों का समाज आपस में चोरी नहीं करता पर पराए समाज के माल को हड़प कर जाता है।

यदि इन प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर मिल जाय तो निस्संदेह हमें सदाचार-शास्त्र के व्यक्तिगत और राजनैतिक सिद्धान्तों की विभिन्नता के कारण का पता लग जाएगा। ऊपर उल्लिखित दो उदाहरणों पर ज़रा ध्यानपूर्वक विचार करने से मालूम होगा कि उक्त दोनों समाज में रहने वाले व्यक्तियों ने अनुभव, हिताहित और आन्तरिक-वेदना से प्रेरित होकर कुछ नियमों की उत्क्रान्ति पूर्ण (evolutionary) सृष्टि की है। उन दोनों समाज के लिए वे नियम सदाचार-शास्त्र का सिद्धान्त बन गए हैं। उन समाजों में उन नियमों का तोड़ना पाप समझा जाता है। यदि एक समाज का आदमी अपने ही समाज के किसी अन्य सदस्य की लड़की को चुराकर उससे विवाह कर ले तो समाज उसे पापी कहेगा—उसे दण्ड देगा। इसी प्रकार यदि समाज का सदस्य उस समाज के अन्य चोर सदस्य के यहाँ सेंध लगावे तो वह पापी है। इसके विपरीत सारा का सारा समाज दूसरे समाज की चोरी भी कर सकता है और लड़की भी भगा सकता है। ऐसा करने में मनुष्य सबसे अधिक चौर-कौशल दिखलावेगा वही समाज का Great Man (महापुरुष) कहलावेगा कारण ? कारण है मनुष्य हृदय के विकास की अपूर्णता। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन हमारे मतलब को स्पष्ट कर देगा। चोर समाज में रहने वाले व्यक्ति ने अपने उसी छोटे-से संकीर्ण समाज में आत्मीयता का अनुभव किया है अन्य समाज के प्रति उसके हृदय में परकीयता के भाव हैं। अपने आपके प्रति कोई दुराचार नहीं करना चाहता, परन्तु अन्यों के प्रति बिना किसी तरद्दुद के बदमाशी की जाती है।

ठीक यही उदाहरण राजनीतिक और वैयक्तिक नीति सिद्धान्तों पर घटित होती है। यदि मोसिए पाकरे जर्मनी पर अत्याचार करे तो वे फ्रांस की नाक के बाल हैं पर यदि वे कहीं फ्रांस ही पर अत्याचार करने लगें तो वे आततायी, नृशंस और पामर की पदवी से विभूषित किये जाएँगे। मानव-विकास की अपूर्णता के कारण हम सामाजिक और वैयक्तिक अन्तः सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय सदाचार

शास्त्र को भिन्न-भिन्न वस्तु समझने लगे हैं। आत्मीयता के अभाव के कारण अन्तर्राष्ट्रीय जगत में लड़ाई के काले बादल उठा करते हैं। Individual Ethics (वैयक्तिक सदाचार) एवं Political Ethics (राजनैतिक आचार) के बीच एक घृणास्पद विभिन्नता का साम्राज्य है। कारण है आत्मीयता का अभाव, अपने वृत की परिधि का संकुचित होना और आधिभौतिक आत्म तुष्टि की आकांक्षा।

35

स्वराज्य किसके लिए ?

कुछ वर्ष पहले यह आदत-सी पड़ गई थी कि लोग जब स्वराज्य का विचार मन में लावें, तो वे यह सोचें कि इंग्लैण्ड की कृपा से, अंग्रेजी पार्लियामेंट और अंग्रेजी जाति ही की दया से, हमें स्वराज्य मिलेगा। इसीलिए, बड़े और छोटे नेता इंग्लैंड और अंग्रेज जाति के कृपा कटाक्ष का सदा ध्यान रखते थे। असहयोग ने देश को अपने पैरों पर खड़ा होना सिखाया। परन्तु, पुरानी आदत अभीतक नहीं गई। देश में अभी तक ऐसे आदमियों की तादाद बहुत अधिक है जिन्हें अपने बल पर भरोसा नहीं है, और जो इग्लैंड की कृपा या कमज़ोरी से देश के लिए लाभ उठाना चाहते हैं। अहमदाबाद की बैठक में महात्मा गांधी ने इस मनोवृत्ति की ओर संकेत किया था। उन्होंने कहा था कि स्वराजियों का ढंग कुछ इसी प्रकार का है, वे स्वराज्य के लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट का रुख देखते हैं। महात्माजी की इस बात पर, 'मराठा' और 'केसरी' नाराज़ हुए हैं, और मद्रास के किसी समय बहुत कुछ नाम कमा चुकने वाले मि० सत्यमूर्ति ने भी असन्तोष प्रकट किया है। वे कहते हैं कि महात्माजी की धारणा भ्रमात्मक है। स्वराजी अंग्रेजी माल के बहिष्कार के पोषक हैं, इसलिए वे अंग्रेजों की नज़रों में और भी खटकते हैं, महात्माजी तो यहाँ तक कह चुके हैं कि हम मन, वचन और कर्म से अहिंसा का इतना पालन करें कि अंग्रेज अपने लिए इस देश में कोई खतरा न समझे। परन्तु स्वराजी यह चाहते हैं कि देश में सबसे पहले देशवासियों के लिए कोई खतरा न रहे। वे पार्लियामेंट से स्वराज्य नहीं माँगते। वे उसे जता देना चाहते हैं कि स्वराज्य बिना भारतवर्ष पर शासन किया ही नहीं जा सकता। पुराने ढंग के आदमियों को छोड़कर निस्सन्देह स्वराजियों में ऐसे आदमी नहीं हैं जो इंग्लैंड से देश के लिए कृपा की भीख चाहते हैं। स्वराजी लोग अपने ढंग से इस बात की कोशिश भी कर रहे हैं कि इंग्लैंड और अंग्रेज जाति को यह जता दिया जाय कि बिना स्वराज्य के भारतवर्ष पर शासन नहीं हो सकता। परन्तु जब हम अपने स्वराजी देश-भाइयों के कार्य करने के ढंग पर विचार करते हैं तब हमें इस नतीजे

पर पहुँचना पड़ता ही है कि उनके मन में ऐसे स्वराज्य की कल्पना घूम रही है जिसके सुख के भोगने वाले देश के इने-गिने आदमी ही होंगे, साधारण जनता नहीं। देशबन्धु दास गया कांग्रेस में कह चुके हैं कि हम जिस स्वराज्य को चाहते हैं वह होगा देश के छोटे-से छोटे आदमी का। परन्तु कौंसिलों में शुद्ध अड़ंगा नीति को छोड़कर, मनमाने ढंग से, देशवासियों के सामने पूरी स्थिति के रखे बिना और उनसे सम्मति और आदेश लिये बिना, स्वराजियों ने अपने कार्यक्रम में जो गहरा परिवर्तन कर डाला है उसको देखते हुए यह कहना पड़ता है कि उन्हें देश की जनता की राय और मनोवृत्तियों की अधिक परवाह नहीं है। 10 अगस्त को कलकत्ते में स्वराजियों की जो कान्फ्रेंस होने वाली है उसमें उनके कार्यक्रम में कुछ बड़े-बड़े परिवर्तन होने की सम्भावना है। कहते हैं, वे पाँचों बहिष्कारों को नमस्कार कर लेंगे और प्रयत्न यह करेंगे कि देश के किसान और मज़दूर आन्दोलन को अपने हाथ में लें। देश की वर्तमान स्थिति में असहयोगी की अपेक्षा स्वराजी लोग देश के किसानों और मज़दूरों को अधिक अस्थायी लाभ पहुँचा सकते हैं। परन्तु देश के झोंपड़े-झोंपड़े में बल और आशा का स्थायी सन्देश पहुँचाने के लिए जिस प्रकार के त्याग और तपस्या की भावनाओं की आवश्यकता है उस प्रकार के त्याग और तपस्या की, हमारी साधारण बुद्धि के अनुसार, न तो अधिकांश स्वराजी कर ही सकते हैं और और न वे उसे पसन्द ही करेंगे। आज वर्षभर पहले स्वराजी लोग देश के साधारण आदमी के जितने पास थे आज उससे कहीं अधिक दूर हैं। जो लक्षण है उससे मालूम पड़ता है कि यह अन्तर बढ़ता ही जायगा। वे जनता से दूर पड़ते जायँगे। आज उनकी तादाद जितनी नज़र आती है, देश के शरीर से अलग कट जाने के कारण, उनकी तादाद उतनी भी न रह जायगी। अन्त में, स्वराज्य दल शिक्षितों और धनवानों का एक साधारण दल रह जायगा। उस ओर, उसका झुकाव भी स्पस्ट रूप से है। इस प्रकार के आदमी किसी बड़े परिवर्तन के लिए तैयार नहीं होते। बड़ी उथल-पुथल से वे डरते हैं। वे चाहते हैं कि वर्तमान शासन में कोई गहरा धक्का न लगे, क्योंकि उन्हें यह डर लगता है कि यदि ऐसा हुआ तो हमारी छोटी-सी नैया की खैरियत नहीं। स्वराजियों की यह अवस्था उनमें ब्रिटिश पार्लियामेंट और अंग्रेज़ जाति की ओर लौ लगाने की इच्छा को बढ़ायेगी, और देश की अनन्त शक्तियों की ओर से उनका चित्त और भी हटायेगी। इस प्रकार के लोगों से शासकों को बल मिलेगा। देश की आत्मा को आगे बढ़ने में कुछ बाधाएँ मिलेंगी। परन्तु, अन्त में, वह बाधा भी और बाधाओं की भाँति टूट जायगी। देश में जो स्वराज्य होगा, वह होगा किसी छोटे-मोटे समुदाय का नहीं,

धनवानों और शिक्षितों का नहीं, वह होगा साधारण से साधारण आदमी तक का। संसार-भर की शासन-पद्धति इस समय उलट-पलट रही है। व्यक्ति को समान अधिकार कागज़ों पर दिये गए हैं, परन्तु कुलीनों, धनवानों और शिक्षितों के गुट करोड़ों आदमियों को दाबे बैठे हैं। साधारण व्यक्ति, अपनी हीन अवस्था को अनुभव कर रहा है। वह कहता है कि कागज़ के इन अक्षरों का कोई मूल्य नहीं, समान अधिकार हैं तो आगे बढ़ने के लिए भी समान अवसर दो। इस युग में, केवल भारतवर्ष के करोड़ों नर-नारियों के ललाट ही पर, ये शब्द अंकित नहीं हैं कि जब आज़ाद होंगे तब तुम्हीं गुलाम बने रहोगे, तुम्हारे ही यहाँ मुट्ठी-भर आदमी—कभी गोरे और कभी भूरे—तुम्हारे भाग्य-विधाता बने रहेंगे, तुम्हारी राह में रोड़े अटकाएँगे और तुम्हें अज्ञान और अन्धकार में रखेंगे। यदि सचमुच इस देश के भाग्य में यही बदा है, तो हम यही कहेंगे, हमें स्वराज्य नहीं चाहिए, हमारे करोड़ों भाई, यदि गुलामी के बन्धन में जकड़े हुए हैं, यदि वे अज्ञान और अन्धकार में पड़े हैं, यदि उन्हें पेटभर खाने को नहीं मिलता और पहनने-भर को कपड़ा, यदि उन्हें रहने के लिए जगह नहीं मिलती और चलने के लिए राह, तो उस दिशा की ओर, जिधर हमारे इने-गिने आदमी सुख से समय बिताते हों और प्रभुता के अधिकारी बने हुए हों, उधर, हम अपना मुँह भी नहीं करना चाहते। हम तो उसी ओर जाएँगे—उसी ओर रहेंगे—सड़ने, घुटने और गुमनामी में मर जाने तक के लिए, जिधर हमारे शरीर के शरीर, हमारे हृदय के हृदय, हमारे दीन-हीन और पीड़ित करोड़ों भाई होंगे ! उस दुख में एक शान्ति होगी, और उस सुख में—करोड़ों के कंकाल पर भोगे जाने वाले थोड़े-से आदमियों के उस सुख में—एक गहरी ग्लानि।

36

चलिए गाँव की तरफ

जिन्हें काम करना है, वे गाँव की तरफ मुड़ें। शहरों में काम हो चुका। शहर के लोगों को उतनी तकलीफें भी नहीं। शहरों में देश की सच्ची आबादी रहती भी नहीं। देश-भर में फैले हुए छोटे-छोटे गाँव के छोटे-छोटे झोंपड़े ही देश की सच्ची संतति के निवास स्थान हैं। उनके जगाने का अभी तक बहुत कम प्रयत्न हुआ है, इस वर्ष जब कि महात्मा गांधी देश की फूट और आपस की लड़ाई के मिटाने का प्रयत्न करेंगे, स्वराजी लोग कौंसिलों में अपनी युद्ध-कला दिखाएँगे, नेता लोग कौंसिल की मेम्बरियों, सरकारी नौकरियों और अधिकारों के बंटवारे की चिन्ता में रत रहेंगे, तेज़ लोग सरकार से भिड़ने के उपाय को खोजते फिरेंगे; साधारण काम करने वालों को चाहिए कि वे इधर-उधर न भटकें, वे देश के गाँव की छिपी हुई शक्ति का संगठन करें। इस बात की शिकायत है कि बेलगाँव कांग्रेस ने देश के सामने कोई ऐसा राजनैतिक काम नहीं रखा, जिसमें, देश की बिखरी हुई ताक़तें लग जातीं, और जिसके करने से, हम अपने राजनैतिक क्षेत्र में, आगे बढ़ सकते। निःसन्देह हमारे इस समय के काम में, कोई बात ऐसी नहीं है, जिसके आधार पर हम सरकारी सत्ता से भिड़ सकें। परन्तु देश का शासन देश के आदमियों के हाथों में न होने के कारण सरकारी सत्ता से हर समय भिड़े रहने की आवश्यकता होने पर भी, ऐसा कर सकना हर समय सम्भव नहीं है। हमारे पिछले तीन वर्ष इस सत्ता से लड़ाई लड़ने में कटे। साधारण दृष्टि से देखने वाला यह कहेगा कि हमारे हाथों कुछ भी नहीं आया। परन्तु बात ऐसी नहीं है। हम अपने क्षेत्र में, पहले से आज बहुत आगे बढ़े हुए हैं, सरकारी सत्ताधारियों को बहुत पीछे हटना पड़ा है। इस समय हमारा और आगे बढ़ सकना इसलिए कठिन ही नहीं असंभव-सा है, कि हम आगे बहुत बढ़ आए हैं, हमने अपने पीछे की तैयारी अधूरी छोड़ रखी है। यदि हमारे पीछे पूरी तैयारी हो, तो हमें पीछे मुड़ना ही न पड़े। इस समय केवल आगे बढ़ने की ही धुन रखना केवल भूल है। उसके लिए अधिक चटपटे और गरम साधनों

की आवश्यकता समझना भ्रम है। नशा द्वारा शरीर में तेज़ी कब तक क़ायम रखी जा सकती है ? इसके लिए तो शराब की बोतलों की अपेक्षा पौष्टिक भोजन स्थायी रूप से अधिक हितकर होगा। नशे के प्रयोग से पहले जो क्षणिक तत्परता दिखाई देती है, वह तत्परता भी उसके बारम्बार प्रयोग से शेष नहीं रह जाती। आगे चलकर एक ऐसी अवस्था पहुँच जाती है जब कि तेज़-से-तेज़ नशा भी तेजी नहीं पैदा करता। देश की दशा इस समय कुछ ऐसी ही है। हमारी धारणा है कि इस समय उग्र-से-उग्र साधन भी हृदय को अधिक काल तक लक्ष्य की ओर लगाए न रख सकेगा। हर तरह से आवश्यकता इसी बात की है कि तुरन्त के लाभ का विचार त्याग करके दूर के लाभ की बात पर ध्यान दिया जाय। और उसके लिए अपनी शक्तियाँ भर-पूर लगा दी जायँ। गाँव के लिए काम करना तुरन्त लाभदायक सिद्ध न होगा। परन्तु कुछ दिनों तक उसको कर लेने के बाद, कार्यकर्ता देखेंगे कि वह कितना अधिक लाभदायक है, और उसके कारण हमारी कितनी अधिक शक्ति बढ़ गई। यह खेद की बात है कि कांग्रेस ने गाँव का कोई स्पष्ट कार्यक्रम तय नहीं किया। तो भी, प्रत्येक ज़िले और प्रान्त के लोग अपनी जरूरत के अनुसार उसे सहज में तैयार कर सकते हैं। गाँव में वाचनालय और पुस्तकालय स्थापित करके गाँव वालों को इस बात के जानने का मौका दिया जा सकता है कि दुनिया में क्या हो रहा है, दूसरे क्या कर रहे हैं और हमें क्या करना चाहिए। गाँव में ज़मींदार और किसान और अन्य समुदायों को मिलाकर उन्हें इस योग्य बनाया जा सकता है कि वे मिलकर अन्यायों से अपनी रक्षा करें। एकता स्थापित करने के पश्चात् पंचायतें क़ायम हो सकती हैं जिनमें गाँव की सब जातियों के प्रतिनिधि हों और जो अपने मामलों को अदालत में न जाने दें। यदि पंचायतों से मामले तय होने लगें, तो देहात वाले अदालत के बेजा खर्च की जेरबारी से बच जायँ, गाँव में चर्खा चल सकता है और खद्दर बन सकता है, यदि वहाँ खद्दर बनने लगे तो गाँव का पैसा गाँव में ही रहे। और लोगों की खुशहाली बढ़े। गाँव वालों को अछूतों के साथ अच्छे व्यवहार करने की शिक्षा देने की आवश्यकता है। गाँव के युवक स्वयं सेवक बनाकर गाँव की सेवा के लिए तैयार किये जा सकते हैं। गाँव में मिल-जुलकर कुछ नये ढंग के साथ राष्ट्रीय और धार्मिक अवसरों पर नये प्रकार के आयोजनों की भी आवश्यकता है। इन कामों के लिए कुछ पैसों की आवश्यकता पड़ेगी। गाँव वाले ग़रीब हैं किन्तु यदि युक्ति से काम लिया जाय तो अपने ख़र्च के लिए वे पैसे निकाल सकते हैं। घर-घर धर्मघट रख दिये जायँ। रोज़ उसमें मुट्ठी-भर अन्न या आटा छोड़ा जाय। हर पन्द्रहवे दिन कार्यकर्ता धर्मघट की आमदनी इकट्ठी करें। उसे बेचकर

पैसे खड़े कर लें। इस पैसे को अपनी कमेटी की राय से गाँव के संगठन के काम में लगावें। हमें आशा है कि गाँव में काम करने की ज़रूरत पर देश का पूरा ध्यान जायगा। और लोग आगे की तैयारी के लिए गाँवों के संगठन के काम को हर समय अपना मुख्य काम समझेंगे।

37

अंग्रेज़ी डींग

"भारतीय समस्या के सम्बन्ध में खास बात यह है कि आज के सदियों पहले हम (अंग्रेज) भारतवर्ष में इसलिए पहुँचे, कि अपनी तलवार की तेज़ धार के बल से उन झगड़ों को मिटा दें, जो भारतीय सभ्यता का विनाश कर रहे थे। हम इसी आधार पर भारतवर्ष गए, और इसी आधार पर हम भारतवर्ष पर इस समय अधिकार किये हुए हैं। यह सत्य है कि यदि आज हम भारतवर्ष को छोड़ दें, तो भारतवर्ष में हत्याओं और उत्पातों का वैसा ही राज्य हो जाय जैसा कि क्लाइव के समय में था। समय ने जो भार अंग्रेज़ों पर डाल दिया है, उसके प्रतिष्ठापूर्वक निभाने के सम्बन्ध में, प्रत्येक अंग्रेज़ का चाहे वह किसी दल का हो, इसके सिवा दूसरा कोई भी मत नहीं हो सकता।"

ये भारत सचिव लार्ड बरकेन हेड के शब्द हैं। 30 जून को एक भोज में, लार्ड बरकेन हेड ने इन शब्दों का उच्चारण किया। समाचार भेजने वाली अंग्रेज़ी कम्पनी ने इन शब्दों को तुरन्त तार द्वारा इस देश में भेज दिया। प्रत्येक समझदार भारतवासी इन बातों पर विचार करे। ऐसा मालूम होता है कि मानो विजयी सिकन्दर या नेपोलियन अपने ऊँचे आसन से विजित लोगों की ओर मुँह करके बोल रहा है। हम गड़े मुर्दों को उखाड़ना पसन्द नहीं करते। हम जातीय संघर्षों की पुरानी कथा को लेकर बैठ जाना भी उचित नहीं समझते, अंग्रेज़ों को हम बुरा नहीं समझते। हम उनकी जाति को एक बड़ी जाति मानते हैं। वे वीर हैं, बुद्धिमान हैं, उद्योगी हैं और व्यवहार चतुर हैं। किन्तु हमारे चित्त पर उनके इन गुणों की ऐसी कोई धाक नहीं छा गई, कि उनकी बुरी बातों को भी हम अच्छी कहने लगें, और जब वे डींग मारते हों और हमें अकारण ही हेय समझते हों, तो हम उनकी हाँ में हाँ मिलावें। सदियों पहले अंग्रेज़ इस देश में अपने पड़तले में तलवारें डालकर नहीं आए थे। वे पोटलियाँ बाँधकर आए थे, जिनमें शीशे, कंघे, हल्दी, धनिया आदि मशाले की चीज़ें बँधी हुई थीं। और जिन्हें वे इस देश की गलियों में घूम-घूमकर बेचते फिरते थे। क्षत्रिय नहीं, वे वैश्य बनकर देश में आए थे। तलवार का ज़ोर दिखाने नहीं, भारत

की स्वर्ण-भूमि से कुछ सोना-चाँदी लेकर अपनी उदर दरी भरने आए थे। यह ठीक है, कि यहाँ क्लाइव के समय में उत्पात होते थे, और बड़ी अशान्ति थी, यदि ऐसा न होता तो इस समय इस देश पर अंग्रेज़ी शासन होता भी नहीं। यह देश सदा उत्पातों का स्थान नहीं रहा। बड़े-बड़े साम्राज्य यहाँ थे, और उनमें से, एक मुगल साम्राज्य भी था, जिसके समय में, यूरोप वाले इस देश में आए थे, और जिसके सम्राटों के चरणों में, लार्ड बरकेन हेड के तलवारबन्द अंग्रेज़ अपने सिर झुकाना गौरव की बात समझते थे, और जिसके फरमान तक के स्वागत के लिए वे सैकड़ों तोपों की सलामी देना, और सैकड़ों मील आगे बढ़ना अपना कर्त्तव्य समझते थे। इस देश में उत्पात होते थे किन्तु किस देश में उत्पात नहीं हुए, और आगे नहीं हो सकेंगे? यदि एक समय में उत्पात हुए तो क्या सदा होते रहते? यदि अंग्रेज़ न आते तो क्या वे आज तक बन्द ही न होते? लड़कों की सी बातें करने या लोगों की आँखों में धूल डालने से इतिहास और समय की यथार्थ गति के ज्ञान पर पर्दा नहीं पड़ सकता। कहा जा रहा है कि क्लाइव और वारेन हिस्टिंग ने इस देश की सभ्यता की रक्षा की, परन्तु उनकी और उनके साथियों ने जो क्रूर करतूतें कीं उनसे देश हड़पे जा सकते थे, उन पर अंग्रेज़ी झंडा गाड़ा जा सकता था; सभ्यता या उसका त्राण तो उससे कोसों दूर की बात थी। लार्ड बरकेन हेड प्रत्येक अंग्रेज़ को भारतवर्ष के लिए खुदाई फ़ौजदार मानते हैं। वे समझते हैं कि, यदि आज अंग्रेज़ इस देश में न रहें तो इस देश पर आफत का पहाड़ ढा जाय, और इसलिए, प्रत्येक अंग्रेज़ इस धरोहर की ईमानदारी के साथ रक्षा करेगा। यह कोरी डींग है, किसी के न रहने से संसार के कामों में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। यदि अंग्रेज़ यहाँ से चले जाएँ, तो भारतवर्ष पर भी गाज नहीं फट पड़ेगी। उत्पात सदा होते न रहेंगे। कोई देश किसी दूसरे देश की धरोहर नहीं हुआ करता, ईश्वर एक देश का पट्टा दूसरे देश को लिख कर नहीं दे दिया करता। भारतवर्ष का भार अंग्रेज़ों को कहीं बाकायदा सौंपा नहीं गया था। अचानक उन्हें इतना बड़ा देश पड़ा-सा मिल गया था।

38

चुनाव के बन्धन-पाश में

कुछ अपने सम्बन्ध में कहने की ज़रूरत है। कौंसिल के चुनाव का समय निकट आ रहा है। कानपुर कांग्रेस के निर्णय के अनुसार कांग्रेस कमेटियाँ कौंसिल की मेम्बरियों के लिए अपने आदमी खड़े कर रही हैं। कानपुर कांग्रेस कमेटी की दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी। मैंने क्षमा चाही, किन्तु सुनवाई नहीं हुई। प्रान्तिक कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी समिति ने भी मेरी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। बड़े से बड़े स्थान से मुझे यही उपदेश मिला कि तुम्हें अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए। कर्त्तव्य यही है कि जिस समय देश के अधिकांश राजनैतिक दल इकट्ठे होकर देश की एकमात्र महासभा कांग्रेस के ऊपर आक्रमण करने और उसे हर तरह नीचा दिखाने के लिए तैयार हों, उस समय प्रत्येक कांग्रेस अनुयायी जहाँ उसे आज्ञा मिले, वहाँ एक अटल सिपाही की भाँति प्रहारों के सहने और उसके वेग को रोकने के लिए खड़ा रहे। कानपुर की वर्तमान दशा और भी भीषण है। यहाँ के विरोध में विचित्रता का विशेष संमिश्रण है। साम्यवाद से लेकर पूंजीवाद तक और स्वाधीनता की शंखध्वनि करने वालों से लेकर प्रतिसहयोगी और लिबरल तक, नाना प्रकार के उद्देश्यों और अस्त्रों को लेकर कानपुर में कांग्रेस को परास्त करने के लिए कटिबद्ध हैं। अपने ही भाइयों से लड़ना-भिड़ना कोई अच्छी बात नहीं है। और उनसे लड़ा भी जाय तो किस लिए ? क्या कौंसिल की मेम्बरी-ऐसी तुच्छ वस्तु के लिए ? किन्तु, यहाँ, कानपुर में, इस समय प्रश्न कौंसिल की मेम्बरी का नहीं है। वह है कांग्रेस की प्रतिष्ठा और उसके अस्तित्व तक का। मेरा दुर्भाग्य है कि क़ानूनी बन्धनों के कारण, मेरे माननीय बड़े डा० मुरारीलाल और डा० जवाहरलाल पर चुनाव का वर्तमान बोझ नहीं रखा जा सकता। इसीलिए, अत्यन्त अनिच्छा के साथ केवल इस भावना से, कि एक व्यक्ति की इच्छा या अनिच्छा के कारण कांग्रेस की प्रतिष्ठा कानपुर में धक्का न खाने पावे, मुझे चुनाव के बन्धन-पाश में बँधने के लिए तैयार होना पड़ा। मुझे खुशी होगी यदि फूट मिट जाय और सब मिलकर, कांग्रेस की प्रतिष्ठा रखते हुए, किसी एक को चुन लें और मैं अलग हट जाऊँ। अन्त तक मैं इस बात की प्रतीक्षा

करूँगा कि कोई भी ऐसी युक्ति निकल आये जिससे राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस की प्रतिष्ठा में धक्का लगे नहीं, और अलग-अलग चलने वाले सब लोग मिलकर साथ चलें और साथ काम करें।

कौंसिल के सम्बन्ध में मेरे जो विचार हैं वे प्रकट हैं। मैं किसी समय भी पूरा अपरिवर्तनवादी नहीं था। किन्तु मेरा कभी यह विश्वास नहीं था कि कौंसिल से स्वराज्य मिल सकता है, या लोगों का कोई विशेष व्यापक कल्याण हो सकता है। यथार्थ कार्य कौंसिल के बाहर है, उसके भीतर नहीं। कौंसिल के भीतर तो, ऐसा दूषित वायुमण्डल है कि, साधारण आदमी का दिल और दिमाग़ उसके विष के बुरे असर से बच ही नहीं सकता। ऐसी अवस्था में जब कि, सरकार अपने स्थान से तिल-भर जुम्बिश नहीं खाती, और यह समझती है कि, छोटी-छोटी कृपाओं के लिए इस देश के लोग उसके चरणों पर लोटते रहे हैं, और आगे चलकर एक-दूसरे से लड़ते हुए, और भी अधिक लोटने की होड़ लगावेंगे, ऐसे अवसर पर उनके लिए, जो लोग असहयोग के मैदान में कुछ भी आगे बढ़े थे, उनका प्रति सहयोग की माला जपना अत्यन्त हास्यास्पद है। देश के लिए भी, यह गति-मति बहुत हानिकारक है। देश के जो प्रेमी उस मार्ग के पक्षपाती हैं, वे भ्रम में हैं, और वे दूर के हानि-लाभ की बात सोचना भूल जाते हैं। इन विचारों को रखते हुए, यथार्थ में मेरे ऐसे आदमी को कौंसिल में न कोई आवश्यकता है, और न उसे लाना ही चाहिए। केवल कांग्रेस की प्रतिष्ठा का विचार मुझे इस समय घसीटता है। जहाँ कांग्रेस की प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा, बाजी पर लगी हो, वहाँ हम कांग्रेस के अनुयायी अपने विपरीत विचारों को लिये बैठे नहीं रह सकते। हम लोगों की दशा सेना के सैनिकों की भाँति है। इस बात को भली भाँति अनुभव करते हुए भी, कि, इस समय आक्रमण करना या आगे बढ़ना ठीक नहीं है, सिपाही का यह काम नहीं है कि आज्ञा पाने पर वह आगे बढ़ने या हमला करने से हिचके। उसके लिए उस समय यही धर्म है कि, हार और जीत की परवा न करते हुए आगे बढ़े, या उसके साथ धाराशायी होकर खाई-खन्दक में मर-खप जाय। कांग्रेस के अनुयायियों के लिए, इस समय यही अवसर उपस्थित है। हम ग़लती करते हुए भी मरेंगे, तो साथ ही मरेंगे और जिएँगे तो साथ ही जिएँगे। हम अपने पारस्परिक संमवेदना के दृढ़ बन्धन को कदापि न टूटने देंगे। हम राष्ट्रीय संग्राम क्षेत्र में घर या बाहर, दोनों प्रकार के दुश्मनों के सामने, सदा मुकाबले के लिए मज़बूत लोहे की दीवार सिद्ध होंगे। हम अपने घर में, फूट न होने देंगे, और मिटते-मिटते भी कांग्रेस की हस्ती को न मिटने देंगे। कौंसिल में मेरे ऐसे विचार रखने वाले क्या करेंगे, इस प्रश्न का उत्तर इस समय देने की आवश्यकता मुझे नहीं मालूम पड़ती। चुनाव के पश्चात् ही,

आसाम कांग्रेस होगी, और वहाँ आगे का कार्यक्रम तय होगा। उस अवसर पर मेरे-ऐसे विचार के लोगों का प्रयत्न यह होगा कि कांग्रेस कौंसिल और उसके बाहर इलेक्शन के पचड़े से उस समय तक के लिए बिलकुल अलग हो जाय, जब तक सरकार इलेक्शन में जाति-गत प्रतिनिधित्व की नाशक और जातीय-कलह फैलाने वाली नीति को अमल में लाकर देश की दुर्दशा करना नहीं छोड़ती। आसाम कांग्रेस में जो कुछ तय होगा, हम कांग्रेस के सिपाहियों के लिए वही शिरोधार्य होगा।

कुछ भ्रमों को दूर करने के लिए मुझे अपने सम्बन्ध में ये पंक्तियाँ लिखनी पड़ीं। संक्षेप में, उनका तात्पर्य यही है कि मुझे कौंसिल की मेम्बरी की परवाह नहीं है और न परवाह है हार और जीत की। केवल परवाह है कांग्रेस की प्रतिष्ठा की, और उसके आज्ञा-पालन करने की।

39

नवयुवकों से दो बातें

"कुछ समय से हमारे अधिकांश नौजवान जिस वातावरण में हैं उससे वे सन्तुष्ट नहीं हैं। निष्क्रियता में मुर्दों से बाजी लगाने वाले इस देश के युवक इस समय परिवर्तन और क्रान्ति का उत्साह के साथ आवाहन कर रहे हैं। क्रान्ति-जन्य विभीषिकाओं का उन्हें भय नहीं है। उन्हें डर दिखाइए तो कहते हैं कि जीती-जागती भीषणता वर्तमान मुर्दा शान्ति से अच्छी है। वर्तमान वायुमण्डल से तो वे हर तरह से पिण्ड छुड़ाना चाहते हैं। एक ही क्षेत्र में नहीं, जीवन के विविध क्षेत्रों में यही चहल-पहल देखी जा रही है। जो कुछ दकियानूसी है, जो कुछ सड़ा-गला है, जो प्रगति को रोकता है, जो कुछ हाथ-पैर और मन की जड़ता है, उन सबसे भिड़ जाने और उन पर विजय प्राप्त किये बिना चैन न लेने की यह तैयारी है। राजनैतिक क्षेत्र में तो नित्य इस प्रवृत्ति के प्रदर्शन हो रहे हैं। नौजवान भारत सभा, युवक संघ, क्रान्तिकारी दल, कम्युनिस्ट दल आदि चिह्न हैं कि युवकों के हृदय में आँधी चल रही है। लाहौर कांग्रेस के जो प्रतिनिधि चुने गए उसमें नौजवानों ने जहाँ तक बना, उन्हीं को प्रतिनिधि बनने दिया, जो पूर्ण स्वाधीनता के पक्षपाती हैं। कई जगह तो यहाँ तक हुआ कि पुराने से पुराने आदमी दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंके गए और नये नौजवानों ने उनका स्थान लिया। इस प्रवाह में अब इतनी तीव्रता है कि बहुत-से नौजवानों की दृष्टि में महात्मा गांधी अब पिछड़ जाने वाले व्यक्ति हो गए हैं, और अहिंसावाद उन्हें कुछ जँचता ही नहीं। वे कहने लगे हैं कि अब पुराने ढंग से काम न चलेगा, महात्मा गांधी का समय हो चुका अब उनसे कुछ नहीं होने का, और जो कुछ होगा वह नये आदमियों और नये ढंग से होगा। नौजवानों के इस ढंस से देश के बहुत बड़े समुदाय में कुछ घबराहट-सी है। घबराहट इसलिए नहीं कि पुराने लोग अपने स्थानों से चिपके रहना चाहते हैं, और नहीं चाहते कि कोई आगे बढ़े और कुछ जौहर दिखाए, किन्तु घबराहट इसलिए कि अधिकांश पुराने यह समझते हैं कि अपनी जल्दबाजी और नासमझी से ये नौजवान खन्दक में जा गिरेंगे और देश को भी उसमें ढकेल देंगे। आज नये और

पुराने में कहीं-कहीं संघर्षण-सा हो रहा है, और जहाँ नहीं हो रहा है, वहाँ उसके होने की संभावना है। संघर्षण में नये समझते हैं कि बूढ़े खूसट न मरते हैं और न माचा (चारपाई, स्थान) छोड़ते हैं, और पुराने समझते हैं कि महत्त्वाकांक्षा से नयों का सिर फिर गया है। दोनों ओर भ्रम है। देश के कल्याण के लिए उसे दूर होना चाहिए। युवक युवक ही क्या, यदि उसमें उत्साह और ओज न हो। युवकत्व का सबसे बड़ा प्रमाण ही यह है कि भावनाओं का वह पुंज हो और अखिल उत्साह का स्रोत। उसके (युवक के) उदय से घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। उसका तो हृदय से स्वागत होना चाहिए। आज से 20 वर्ष पहले की देश की शिथिलता से, जब आज की स्फूर्ति और चेतना की तुलना की जाय तब यह देखकर कि जीवन के चिह्न समस्त दिशाओं में छिटके हुए हैं, हृदय गद्गद हो उठना चाहिए। अभी तक जो खेती की गई थी, यदि आज वह फले और फूले तो किस खेतिहर को खुशी न होगी? यदि फसल अच्छी आई तो उसे संभालकर रखने की आवश्यकता है। वह सारे दुख-दारिद्र्य दूर कर देगी, उससे घबराने की क्या ज़रूरत? यदि विद्युत शक्ति का अटूट भंडार मिल गया हो तो उसके उचित संचालन की आवश्यकता है। उसकी भीषणता की बात सोच-सोचकर चिन्ता से सूखने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए देश के पुराने आदमी अपनी नई खेती पर खुश हों, वे उसका स्वागत करते हुए केवल उसका पथ-निर्देश करें, न उसे दबाएँ और न उसे घातक समझें। पुरानों की अपेक्षा नयों की अब अधिक बड़ी ज़िम्मेदारी है, समय उनकी प्रतीक्षा कर रहा है, सुविधाएँ उनके चरणों को पखारने के लिए तैयार हैं, किन्तु यह तभी जब वे केवल युवकत्व के नाम पर नहीं, केवल इसलिए नहीं कि वे पुनीत विद्रोही हैं जो इतिहास का निर्माण किया करते हैं, किन्तु अपनी प्रगाढ़ आदर्शभक्ति और आदर्श की ओर बढ़ने वाले व्यक्ति के योग्य विनम्रता और कर्त्तव्यशीलता का अखण्ड परिचय देकर अपने लिए स्थान चाहेंगे। गालियों के देने, डींग मारने, आज़ादी की व्यर्थ रट लगाने और दूसरों पर धूल फेंकने से न कोई बड़ा होता है और न कोई बड़ा काम हुआ करता है। बहुधा तो जो गरजते हैं वे बरसते ही नहीं, और जो बड़ी डींग मारा करते हैं वे बड़े कायर हुआ करते हैं। देश के नौजवान देश की खातिर और अपनी नौजवानी की खातिर इस कुटेव से बचें। वे बढ़-बढ़कर बातें न मारें, वे बढ़-बढ़कर काम करें। वे अपनी बात पर अटल रहें, किन्तु नम्रता के साथ, दूसरों पर बाण प्रहार करते हुए नहीं। जो लोग उनसे मतभेद रखें वे क्यों यह समझें कि वे सच्चे नहीं हैं? जिसे नौजवान कुर्बानी के नाम से पुकारते हैं, यदि उसे उनसे मतभेद रखने वाला आदमी नहीं करना चाहता तो इसलिए वह हीन क्यों समझा जाय? और यदि कोई नौजवान कुर्बानी करता है तो वह क्यों समझे कि देश पर कोई उपकार

करता है और केवल अपना कर्त्तव्य पालन नहीं करता ? अहिंसा के मज़ाक उड़ाने की प्रवृत्ति भी इस समय कुछ ज़ोरों पर है। यह काम किया तो आसानी से जाता है, किन्तु वह इस योग्य नहीं है कि ऐसे सहज ढंग से किया जाय। हिंसा और अहिंसा की विवेचना छोड़ दीजिए, विज्ञान ने वर्तमान रण-शैली को बेहद भयंकर बना दिया है, उसमें वीरता नहीं रही, उसमें पशुता और हत्या का राज्य है, और उसके मुकाबले में हमारे ऐसे शताब्दियों से निरस्त्र लोगों का खड़ा भी रह सकना असम्भव है। हमारे लिए तो अहिंसा ही परम अस्त्र है, उसी से हम दुनिया में किसी का मुकाबला कर सकते हैं। आगे बढ़ने वाले युवक सबसे विद्रोह करें, किन्तु वे एक भावना से विद्रोह करने की इच्छा को हृदय में न आने दें। उनके मन में ऊँचे चरित्र के प्रति कभी प्रताड़ना या उपेक्षा का भाव उदय न हो। वे स्वयं चरित्रवान हों, उनका सिर भी जब झुके तब चरित्रवान के लिए। यदि चरित्र के प्रति उनमें आदर-भाव रहा तो उनका विद्रोह, चाहे कितनी ही कटुता क्यों न धारण कर ले, देश के लिए अन्त में अमृत-फल ही सिद्ध होगा।"

40

माँ के अँचल में

वह आँधी सब जगह आई। रूस, जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी, टर्की, चीन, सब देशों के वन-उपवन उसके झोंके से कम्पित हो उठे। प्रजातंत्र की वह आँधी कई देशों में आई और उसने जनता की छाती पर शताब्दियों से रुपे हुए सिंहासनों को उखाड़कर फेंक दिया। जो राष्ट्र सुषुप्तावस्था में पड़े हुए थे, वे उन्निद्रित होकर अपनेपन को प्राप्त करने दौड़ पड़े। देश-देशान्तरों के घाटी-दर्रे स्वतंत्रता के झँझावात से घहरा उठे। आज, भारतवर्ष ने यह भी सुना कि ईरान के बादशाह, उस तख्त से उतार दिये गए, जिस पर बैठकर हुकूमत की मदिरापान करना वे अपना पुश्तैनी हक समझते थे। अब फारस के लोग अपना शासन आप करेंगे, वे अब किसी निरंकुश तानाशाह के इशारे पर न नाचेंगे। वहाँ अब कोई व्यक्ति यह हिम्मत न कर सकेगा कि वह जनता की कमाई के अठारह लाख रुपये यूरोप-भ्रमण में नष्ट कर दे। प्राण नाश की क्रीड़ाओं का अब वहाँ अन्त हो चुका। अब प्राण-रक्षा आत्म-निर्णय, स्वाधीता और उत्तरदायित्व का युग आरम्भ होता है। दुनिया में सब तरफ सब जगह, शक्तियों का; केन्द्रीभूत, निरंकुश, अनुत्तरदायिनी पाषाणी शासन-प्रणालियों का; इन असामयिक एकछत्र शासन पद्धतियों का, अन्त हो रहा है। जो लोग कल तक साधारण लोगों के मस्तक पर अपने श्रीचरण रखकर चलते थे, जो कल तक नीचे पड़े हुए पीड़ितों की पुकार को सुनना अपनी शान के खिलाफ़ समझते थे, जो लोग दीनों की फरियाद में अपने हुकुम की उदूली की परछाहीं देखा करते थे, वे ही मालिक लोग, वे आका, आज उपेक्षा की गिरि-कन्दराओं में अपना अपमानपूर्ण जीवन व्यतीत करने जा रहे हैं। वे सिर, जो कल तक कुचले जाते थे, आज ऊँचे और उससे भी ऊँचे, उठ रहे हैं। यह सब हमारे आस-पास हो रहा है। हम प्रतिदिन एक न एक राज्य क्रान्ति घटित होती देख रहे हैं। परसों मध्य यूरोप में, कल टर्की में, तो आज फारस में, वही लीला पुनः-पुनः हो रही है। एकछत्र शासन प्रणाली को नष्ट करने और जनसत्तात्मक राज्य-प्रथा को स्थापित करने की जो लहर भारतवर्ष के बौद्ध संघों तथा शाक्य

और लिच्छिवियों की जनसत्तात्मक संस्थाओं में प्रकट हुई थी, जिस लहर ने एथेन्स के शासन क्रम को कई रास्तों से घुमा-फिराकर जनतंत्र विधि के राज्य मार्ग पर ला छोड़ा था, जो लहर अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस और अमेरिका में आई थी, वही लहर आज फिर से उमड़ती हुई दिखाई पड़ रही है। हम भारतवासी आश्चर्य और कौतूहल से इस गतिविधि को देख रहे हैं। लेकिन, जो भविष्य के गर्भ में प्रवेश कर सकते हैं, उन्हें यह स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा है कि शक्ति के मदमाते लोग काँपते हुए हाथों से अपने सिंहासनों को थामकर भयत्रस्त अवस्था का परिचय दे रहे हैं। यह नाटक नहीं है, यह तो विश्व के रंग-मंच पर घटित घटनाओं का सुदूर प्रतिबिम्ब है। कहाँ एक जगद्विजयी अलक्षेन्द्र के वे सेनानी, और उनके द्वारा संचालित वह महाचमू, जो इस्सस के तट पर गगनभेदी कण्ठ रव से गरजा करती थी, ...एक अंग्रेज महा पुरुष के ये वाक्य आज प्रति क्षण सत्य होते दिखाई पड़ रहे हैं। जिन कोट कंगूरों के बनाने में, शान के जिस भवन का निर्माण करने में, आततताइयों ने प्रजा के रक्त और पसीने को एक कर दिया था, वे भवन और वे कोट कंगूरे आज विध्वस्त हो चुके हैं, और अभी जो बाकी हैं उनके लिए आगामी कल, अपनी कराल कुदाली का बेट ठीक कर रहा है। भारत माता के आसपास वह सब हो रहा है। उत्थान-पतन और परिवर्तन का परम सत्य, परम ध्रुव नियम नित्य प्रति अपने कर्त्तव्य दिखला रहा है। वह जादूगर एक ओर से शून्य से संसार का निर्माण कर रहा है और दूसरी ओर संसार को शून्य में परिवर्तित कर रहा है।

"पतन अभ्युदय बन्धुर पन्था युग-युग धावित यात्री।
तुमि चिर सारथी, तव चक्रे मुखरित पथ दिन-रात्रि।
दारुण विप्लव रथ माझे, तव शंखध्वनि बाजे !!

रवीन्द्र ठाकुर की ये अवलियाँ, आज भारतवासियों के हृदय पर एक नवीन अर्थ अंकित कर रही हैं। इस परिवर्तन और परिवर्धन को, इस प्राचीन नाश और नव्यनिर्माण को संचालित करने वाली, केवल उस चिरसारथी की शंख-ध्वनि ही है। किन्तु, वह दिन कहाँ है जब, हम भूमंडल में व्याप्त इस सर्वस्थान वासी पट-परिवर्तन को देख सकेंगे? हमारी आँखें अभ्युदय और परिवर्तन के प्रदर्शन की प्यासी हैं। अड़ोस-पड़ोस के राष्ट्र अपना भाग्य-निर्णय कर रहे हैं। पर, हम प्रमाद की चादर ओढ़े, अपने पड़ोसियों की गतिविधि देखकर भी, कर्मशील नहीं बनते। हाँ, यह ज़रूर है कि हमारे हृदयों में धड़कन अवशेष है, हमारी नाड़िका में स्पन्दन बाकी है और हमारे फेफड़ों में श्वासोच्छवास लेने की शक्ति भी, न जाने कैसे, इतना दम घुटने पर भी, बच रही है। जब आशा की आँधी से फारस, टर्की, चीन रूस आदि के वेणुवन गूंज उठते हैं तो हमारी बाँसुरी भी बजना चाहती है। हमारी

माँ की गोदी में वह शिशु जिसे परिवर्तन, अभ्युदय, विप्लव, या न जाने क्या, कहते हैं, कभी आन बैठे, ऐसे, जैसे रात में फूल की गोदी में ओस की बूंद चुपके से आ बैठती है, और वह शिशु हमारे मुर्दा दिलों के साथ क्रीड़ा करने लगे, यह मन की साध चित्त को व्यग्र कर देती है। इच्छा हो आती है कि वह आँधी जो कल पड़ोस में उमड़ी, यहाँ भी चल पड़े। रक्त के बीज बोये जाएँ इसकी जरूरत नहीं। श्वेत कमल की भाँति हमारे हृदय खिल उठें और शुभ्र क्रान्ति के लिए तैयार हो जाएँ, यही हम मना रहे हैं। हम विश्व में अनहोनी को सुगम सिद्ध कर दें, एक बार उथल-पुथल कर दें और खून के प्यासे संसार को यह सिखला दें कि खून की प्यास कैसे बुझाई जाती है। यही मनोभिलाषा हृदय को विचलित करती रहती है। माता की मूरत हमारे दिलों में बस जाय, उसकी नीरव, सौम्य, वेदनामयी आँखें हमारे हृदय में गड़ने लगें, और माँ के अंचल का छोर निष्प्राण-सा लटकता रहे, फिर एकाएक माँ चण्डी स्वरूपा हो जाएँ, उनके केश-कलाप खुल जाएँ एक भयानक आँधी आवे और उस आँधी से आलोड़ित होकर माँ के अंचल के छोर में वह हिलोर उत्पन्न हो कि लोक-लोकान्तर अपने निर्दिष्ट पथ से एक मुहूर्त भर के लिए तो अवश्य इधर-उधर हो जाएँ और अण्ड ब्रह्माणु के गायन (Music of the spheres) की तान केवल क्षण-भर को विकृत हो जाय···फिर सभ्यता और शान्ति का, प्रेम और स्नेह का, स्वातंत्र्य और साम्य का प्रवाह माँ के मुख मण्डल से वह उठे ऐसे दर्शन की लालसा से आज हृदय व्याकुल है।

41

धर्म की आड़

इस समय, देश में धर्म की धूम है। उत्पात किये जाते हैं, तो धर्म और ईमान के नाम पर, और ज़िद की जाती है, तो धर्म और ईमान के नाम पर। रमुआ पासी और बुद्धू मियाँ धर्म और ईमान को जानें, या न जानें, परन्तु उसके नाम पर उबल पड़ते हैं, और जान लेने और जान देने के लिए तैयार हो जाते हैं। देश के सभी शहरों का यही हाल है। उबल पड़ने वाले साधारण आदमी का इसमें केवल इतना ही दोष है कि वह कुछ भी नहीं समझता-बूझता, और दूसरे लोग उसे जिधर जोत देते हैं उधर जुत जाता है। यथार्थ दोष है, कुछ चलते-पुरजे, पढ़े-लिखे लोगों का, जो मूर्ख लोगों की शक्तियों और उत्साह का दुरुपयोग इसलिए कर रहे हैं कि इस प्रकार, जाहिलों के वल के आधार पर उनका नेतृत्व और बड़प्पन क़ायम रहे। इसके लिए धर्म और ईमान की बुराइयों से काम लेना उन्हें सबसे सुगम मालूम पड़ता है। सुगम है भी। साधारण से साधारण आदमी तक के दिल में यह बात अच्छी तरह बैठी हुई है कि धर्म और ईमान की रक्षा के लिए प्राण तक दे देना वाजिब है। बेचारा साधारण आदमी धर्म के तत्त्वों को क्या जाने? लकीर पीटते रहना ही वह अपना धर्म समझता है। उसकी इस अवस्था से चालाक लोग इस समय बहुत बेजा फ़ायदा उठा रहे हैं। पाश्चात्य देशों में, धनी लोग ग़रीब मज़दूरों के परिश्रम से बेजा लाभ उठाते हैं। उसी परिश्रम की बदौलत ग़रीब मज़दूर की झोंपड़ी का मज़ाक उड़ाती हुई उनकी अट्टालिकाएँ आकाश से बातें करती हैं! ग़रीबों की कमाई ही से वे मोटे पड़ते हैं, और उसी के बल से, वे सदा इस बात का प्रयत्न करते हैं कि ग़रीब सदा चूसे जाते रहें। यह भयंकर अवस्था है! इसी के कारण, साम्यवाद, बोल्शेविज़्म आदि का जन्म हुआ। हमारे देश में, इस समय, धनपतियों का इतना ज़ोर नहीं है। यहाँ, धर्म के नाम पर, कुछ इने-गिने आदमी अपने हीन स्वार्थों की सिद्धि के लिए, करोड़ों आदमियों की शक्ति का दुरुपयोग किया करते हैं। ग़रीबों का धनाढ्यों द्वारा चूसा जाना इतना बुरा नहीं है, जितना बुरा यह है कि वह है धन की मार, यह है बुद्धि पर मार। वहाँ धन दिखाकर करोड़ों

को वश में किया जाता है, और फिर मन-माना धन पैदा करने के लिए जोत दिया जाता है। यहाँ है बुद्धि पर परदा डालकर पहले ईश्वर और आत्मा का स्थान अपने लिए लेना, और फिर, धर्म, ईमान, ईश्वर और आत्मा के नाम पर अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए लोगों को लड़ाना-भिड़ाना। मूर्ख बेचारे धर्म की दुहाइयाँ देते और दीन-दीन चिल्लाते हैं, अपने प्राणों की बाजियाँ खेलते और थोड़े-से अनियंत्रित और धूर्त आदमियों का आसन ऊँचा करते और उनका बल बढ़ाते हैं। धर्म और ईमान के नाम पर किये जाने वाले इस भीषण व्यापार के रोकने के लिए, साहस और दृढ़ता के साथ, उद्योग होना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होगा, तब तक भारतवर्ष में नित्य-प्रति बढ़ते जाने वाले झगड़े कम न होंगे। धर्म की उपासना के मार्ग में कोई भी रुकावट न हो। जिसका मन जिस प्रकार चाहे, उसी प्रकार धर्म की भावना को अपने मन में जगावे। धर्म और ईमान, मन का सौदा हो, ईश्वर और आत्मा के बीच का सम्बन्ध हो, आत्मा को शुद्ध करने और ऊँचे उठाने का साधन हो! वह, किसी दशा में भी, किसी दूसरे व्यक्ति की स्वाधीनता के छीनने या कुचलने का साधन न बने। आपका मन चाहे, उस तरह का धर्म आप मानें, और दूसरे का मन चाहे, उस प्रकार का धर्म वह माने। दो भिन्न धर्मों के मानने वालों के टकरा जाने के लिए कोई भी स्थान न हो। यदि किसी धर्म के मानने वाले कहीं ज़बरदस्ती टांग अड़ाते हों, तो उनका इस प्रकार का कार्य देश की स्वाधीनता के विरुद्ध समझा जाय। देश की स्वाधीनता के लिए जो उद्योग किया जा रहा था, उसका वह दिन निःसन्देह, अत्यन्त बुरा था, जिस दिन, स्वाधीनता के क्षेत्र में, खिलाफ़त, मुल्ला, मौलवियों और धर्माचार्यों को स्थान दिया जाना आवश्यक समझा गया। एक प्रकार से उस दिन हमने स्वाधीनता के क्षेत्र में, एक क़दम पीछे हटकर रखा था। अपने उसी पाप का फल आज हमें भोगना पड़ रहा है। देश की स्वाधीनता के संग्राम ही ने मौलाना अब्दुल बारी और शंकराचार्य को देश के सामने दूसरे रूप में पेश किया, उन्हें अधिक शक्तिशाली बना दिया, और हमारे इस काम का फल यह हुआ, है कि इस समय, हमारे हाथों ही से बढ़ाई इनकी और इनके से लोगों की शक्तियाँ हमारी जड़ उखाड़ने और देश में मज़हबी पागलपन, प्रपंच और उत्पात का राज्य स्थापित कर रही हैं। म० गांधी धर्म को सर्वत्र स्थान देते हैं। वे एक पग भी धर्म के बिना चलने के लिए तैयार नहीं। परन्तु उनकी बात ले उड़ने के पहले, प्रत्येक आदमी का कर्त्तव्य यह है कि वह भली-भाँति समझ ले कि महात्माजी के धर्म का स्वरूप क्या है? धर्म से महात्माजी का मतलब धर्म के ऊँचे और उदार तत्त्वों ही का हुआ करता है। उनके मानने में किसे एतराज़ हो सकता है। अज़ाँ देने, शंख बजाने, नाक दाबने और नमाज पढ़ने का नाम धर्म नहीं

है। शुद्धाचरण और सदाचार ही धर्म के स्पष्ट चिह्न हैं। दो घंटे तक बैठकर पूजा कीजिए और पंच-वक्ता नमाज़ भी अदा कीजिए, परन्तु ईश्वर को इस प्रकार की रिश्वत के दे चुकने के पश्चात्, यदि आप अपने को दिन-भर बेईमानी करने और दूसरों को तकलीफ पहुँचाने के लिए, आज़ाद समझते हैं तो, इस धर्म को, अब आगे आने वाला समय कदापि नहीं टिकने देगा। अब तो, आपका पूजा-पाठ न देखा जायगा, आपकी भलमंसाहत की कसौटी केवल आपका आचरण होगा। सबके कल्याण की दृष्टि से, आपको अपने आचरण को सुधारना पड़ेगा, और यदि आप अपने आचरण को नहीं सुधारेंगे तो नमाज़ और रोज़े, पूजा और गायत्री आपको देश के अन्य लोगों की आज़ादी को रौंदने और देश-भर में उत्पातों का कीचड़ उछालने के लिए आज़ाद न छोड़ सकेगी। ऐसे धार्मिक और दीनदार आदमियों से तो, वे ला-मज़हब और नास्तिक आदमी कहीं अधिक अच्छे और ऊँचे हैं, जिनका आचरण अच्छा है, जो दूसरों के सुख-दुख का खयाल रखते हैं और जो मूर्खों को किसी स्वार्थ-सिद्धि के लिए उकसाना बहुत बुरा समझते हैं। ईश्वर इन नास्तिकों और ला-मजहब लोगों को अधिक़ प्यार करेगा, और वह अपने पवित्र नाम पर अपवित्र काम करने वालों से यही कहना पसन्द करेगा, मुझे मानो या न मानो, तुम्हारे मानने ही से मेरा ईश्वरत्व क़ायम नहीं रहेगा, दया करके, मनुष्यत्व को मानो, पशु बनना छोड़ो और आदमी बनो !"

42

भारतवर्ष और कम्यूनिज्म

दो घटनाओं के कारण इस समय इस देश का ध्यान 'कम्यूनिज़्म' की ओर बहुत अधिक जा रहा है। इन दो घटनाओं में एक है 'पब्लिक सेफ्टी बिल' (Puplic safety bill) जो असेम्बली में पेश है और जिसे गवर्नमेंट भारतवर्ष में कम्यूनिज़्म की लहर रोकने के लिए किसी तरह तुरन्त पास करा लेना चाहती है। दूसरी घटना है 'मेरठ षड्यंत्र केस' के नाम से पुकारे जाने वाले मामले में, देश भर के कुछ खास-खास अत्यन्त प्रतिष्टित कर्यकर्त्ताओं का पकड़ा जाना। इन लोगों में से अधिकांश, मेहनत-पेशा लोगों में काम कर रहे थे। अभी तक केवल उस दफ़ा का पता है जिसके अनुसार ये पकड़े गए, अर्थात् दफ़ा 121 ए० जो बादशाह के विरुद्ध युद्ध करने के लिए षड्यंत्र करने के सम्बन्ध में है, किन्तु अभी तक ठीक-ठीक यह नहीं मालूम है कि इन लोगों पर जो इलज़ाम लगाये गए हैं, उनकी शकल-सूरत क्या है? Public safety bill आज बहुत दिनों से देश के सामने है। उसका स्पष्ट मंशा है कि इस देश को 'कम्यूनिज़्म से बचाया जाय और कम्युनिस्टों को दबाया जाय। गवर्नमेंट की धारणा है कि इस देश में कम्यूनिज़्म बढ़ता जा रहा है, और यह यदि दबाया न गया, तो भयंकर रूप धारण कर लेगा। सितम्बर, 1928 ही में, पब्लिक सेफ्टी बिल पास हो गया होता, किन्तु असेम्बली के प्रेसीडेंट मि० पटेल ने अपना वोट उसके विरुद्ध देकर उसे रद्द कर दिया था। अब छः मास पश्चात्, उस क़ानून का ताजिया फिर खड़ा किया गया है। किन्तु इस बार मि० पटेल ने एक बहुत ज़बर्दस्त बात पेश की है। उनका गवर्नमेंट से यह कहना है कि या तो इस क़ानून को पास कराओ या मेरठ का षड्यंत्र केस चलाओ, दोनों काम एक साथ नहीं हो सकते। जिस समय मेरठ केस की गिरफ्तारियाँ हुई थीं, असेम्बली में, इस घटना पर बहस करने के लिए आज्ञा माँगी गई थी। मि० पटेल ने आज्ञा दे दी थी, किन्तु वाइसराय ने इस आधार पर मि० पटेल की आज्ञा रद्द कर दी कि मामला अदालत के सामने है, और इस बहस से हानि होगी। 'पब्लिक सेफ्टी बिल' पर भी यदि असेम्बली में बहस हो—जैसा होना उसको क़ानून के रूप में लाने के लिए

आवश्यक है—तो, कम्यूनिज़म और कम्युनिस्टों और मेरठ केस के अभियुक्तों का ज़िक्र उसमें आवेगा। मेम्बरों को अधिकार है कि वे जो कुछ हृदय में हो, उसे ऐसे अवसर पर साफ-साफ कहें। किन्तु, यदि वे ऐसा करें, तो अदालत में जो मामला पेश है उस पर रायज़नी होगी जो क़ानूनन और वायसराय के पहले फैसले के पश्चात् ठीक नहीं है, और यदि वे ऐसा नहीं करते, तो इसका अर्थ यह है कि बहस की आज़ादी और हितों की रक्षा के हक का बलिदान होता है। इसीलिए मि० पटेल ने गवर्नमेंट से कहा कि दो में से एक ही बात का होना बाजिव है, मेरठ केस चलाना है तो पब्लिक सेफ्टी बिल को कुछ समय के लिए दाबे रहो, और यदि उसे ही पास करना है, तो मेरठ केस को खारिज कर दो। इस प्रकार की अवस्था ने अनिवार्य रूप से, देश के सभी समझदार आदमियों का ध्यान इन बात की ओर आकर्षित कर दिया है कि वे ज़रा ग़ौर से देखें कि वह कम्युनिज़्म क्या बला है, और इससे डरने की इतनी ज़रूरत है, या नहीं? यहाँ इतना स्थान नहीं है कि हम कम्युनिज़्म के उदय और विकास के इतिहास का अधिक विशद रूप से वर्णन करें। कम्यूनिज़्म एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें, सम्पत्ति और शासन का समस्त प्रबंध पंचायत द्वारा होता है, और जिसमें व्यक्तिगत सम्पत्ति और व्यक्तिगत शासन के लिए स्थान नहीं है। समाज के सुधारने के लिए इस उपाय द्वारा बहुत प्राचीन काल से काम लिया जा रहा है। कितने ही धर्म आरम्भ में लौकिक कामों में इसी आचार को लेकर चले थे। मंदिरों, मठों, ख़ानकाहों, गिरजाघरों आदि की सम्पत्ति और व्यवस्था इसी आधार पर हुआ करती थी। किन्तु, धीरे-धीरे उनका पंचायती ढंग लुप्त हो गया, और एक या कुछ आदमियों की बन आई, और वे ही सब कुछ के कर्ता-धर्ता बन गए। वर्तमान समय के कम्यूनिज़्म का भी यह मतलब है कि संसार की उपज और सम्पत्ति पर व्यक्तियों के अधिकार न हों, पंचायतों का अधिकार हो, और इन पंचायतों को सब लोग मिलकर कुछ लोगों के लाभ के लिए नहीं, सबके लाभ के लिए बनाएँ और उन्हें चलाएँ। यूरोप और अमेरिका में कम्यूनिज़्म का कुछ विशेष ज़ोर है। रूस में, तो इसका पूरा अधिकार है। समय और स्थान के अनुसार कम्यूनिज़्म का ज़ोर बढ़ता रहा है। इधर 1919 से, संसार-भर के श्रमजीवियों की उस महा सभा के पश्चात् से, जो रूस के निमंत्रण पर मास्को नगर में हुई थी और जो थर्ड इण्टरनेशनल (Third International) के नाम से संसार में प्रसिद्ध है, कम्यूनिज़्म के वर्तमान रूप में, विशेष तीव्रता आ गई है। Third Inter national ने जो क़ायदे-क़ानून और अपनी मेम्बरी की 21 शर्तें बनाई थीं, उनमें इस संस्था का उद्देश्य इन शब्दों में रखा गया था—संसार भर के श्रमजीवियों का संघटन हो, केवल इस लक्ष्य को

सामने रखकर, कि पूँजीवाद का नाश किया जाय, पंचायती राज्य और श्रमजीवियों की उसमें अटल सत्ता स्थापित की जाय, ऊँच-नीच और छोटे-बड़े का भेद मिटा दिया जाय और सब सुखों और सब सुविधाओं के मार्ग सबके लिए खोल दिये जाएँ। 1919 से पहले इस आन्दोलन में जो कुछ हो रहा था, और इस समय भी यूरोप के अनेक देशों में, और यहाँ तक कि इंग्लैण्ड में जो कुछ हो रहा है, उससे और इसमें जो इस समय लक्ष्य के रूप में है और जो कुछ रूस में हो रहा है, सबसे बड़ा और स्पष्ट अन्तर यही है कि अब समस्त शासन-तन्त्र में केवल श्रमजीवियों का प्राधान्य चाहा जाता है, औरों का तनिक भी नहीं। यही बात इंग्लैण्ड को बहुत खटकती है। इंग्लैण्ड में श्रमजीवियों को अधिकारयुक्त बनने के लिए कोई विशेष रुकावट नहीं है, किन्तु इंग्लैण्ड केवल श्रमजीवियों के देश का विधाता बन बैठने के पक्ष में नहीं है और अपने श्रमजीवियों को संसार के श्रमजीवियों के साथ हाथ में हाथ मिलाते हुए देखकर भयभीत होता है। वह ऐसा क्यों करता है इस विषय पर इतना ही कहना यथेष्ठ है कि यदि वह ऐसा न करे तो वह अपने साम्राज्य और व्यापार से हाथ धो बैठे। इसीलिए, वह कम्यूनिज़्म को बुरा समझता है और जो लोग उसका नाम लेते हैं, उन्हें दण्डनीय मानता है। केवल इसलिए नहीं कि हमें इंग्लैण्ड को चिढ़ाना मंजूर है और इसलिए भी नहीं कि जिस चीज़ को वह बुरा कहता है उसे हमें अच्छा कहना चाहिए, किन्तु इसलिए कि चीज़ों को केवल उनकी बुराई और भलाई के माप ही से तोलना चाहिए, हम भारतवासियों को कम्यूनिज़्म के सम्बन्ध में जल्दबाजी के साथ, किसी नतीजे पर नहीं पहुँच जाना चाहिए। हमारी धारणा यह है कि अपनी शक्ति से अधिक सत्ता को अपने हाथों में कर लेने के कारण, इंग्लैण्ड का चित्त अस्थिर हो गया है, और उसे अपने खिलाफ़ तनिक-तनिक-सी बातें भी बहुत भयंकर मालूम पड़ती हैं। यह उसके चित की दुर्बलता है। किन्तु उसके चित्त की इस दुर्बलता के कारण, हम भारतवासियों के चित्त तो दुर्बल न हो जाने चाहिएँ। कम्यूनिज्म समाज सृजन की एक व्यवस्था है। अभी तक समाज में केवल धनी लोग श्रेष्ठ समझे जाते थे, उन्हीं के हाथों में सब अधिकारों को होना उचित समझा जाता था। कम्यूनिज्म के आधार पर, यह सत्ता, यह अधिकार, कुछ थोड़ों की नहीं, सबकी होगी। यह हो सकेगी, या नहीं, यह दूसरी बात है। किन्तु यदि कोई आदमी ऐसा मत रखता है, इस बात का प्रचार करता है, लोगों से कहता है कि इस विषय का साहित्य पढ़ो, तो बुरा ही क्या है? यदि कोई समाचार-पत्र इस विषय के लेख और दुनिया के कम्युनिस्टों के चित्र और चरित्र छापता है, तो इसमें क्यों आपत्ति हो? हमें आश्चर्य होता है जब हम यह देखते हैं कि इस बीसवीं शताब्दी में, कम्यूनिज़्म के सिद्धान्तों पर बहस करना और लेनिन आदि

के चित्रों का रखना या उनका छापना महा पाप समझा जाता है। यदि अधिकारियों की शक्ति हमारे इस प्रकार सोचने, बहस करने, बातें करने, आदि की आज़ादी का अपहरण करती है, तो हमें भयभीत नहीं होना चाहिए, और किसी हालत में भी अपने को परास्त नहीं मान लेना चाहिए। किन्तु हम स्पष्टता के साथ, चित्र के दूसरे खण्ड को भी पाठकों के सामने पेश कर देना चाहते हैं। हमारी धारणा है कि इस देश में उस प्रकार की कम्यूनिज्म का कोई दृढ़ प्रदेश हो ही नहीं सकता, जैसा कि वह रूस में है, या जैसा कि यूरोप के अन्य देशों में उसके हो जाने की सम्भावना है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि यह देश उद्योग-धंधों और इस प्रकार पूँजीवाद का उतना बड़ा क्रीड़ा-क्षेत्र नहीं है, जितना यूरोप के देश, और न यहाँ उतनी सामाजिक विषमता ही है। यह जो कष्ट है, वे सहज में थोड़ी-सी सहानुभूति, प्रेम और त्याग से मिटाये जा सकते हैं। किन्तु गवर्नमेंट घबराती है, वह कम्यूनिज्म के भूत से थर-थर काँपती है, और यह सब इसलिए कि वह विदेशी है, थोड़े-से विदेशी व्यापारियों की अंगुली के इशारे पर नाचती है, देश की आत्मा के परिचय से यह कोसों दूर है, यह देश के अधिकांश आदमियों के बलवान बन जाने में अपना ह्रास, अपनी प्रतिष्ठा का अपहरण मानती है, और उन्हें मूर्ख, उपेक्षित, अनादृत और पीड़ित रहने देकर, किसी प्रकार केवल अपना चलता काम चलाए रखना चाहती है। वह डरे, तो डरे, किन्तु हम सब देखते-सुनते क्यों डरें, हम क्यों जहाँ कुछ नहीं है, वहाँ भूत-प्रेत की व्याधि देखें।

43

अनुताप की महिमा

कितना सुन्दर चिह्न, अपने आत्म गौरव का ! कितनी अनमोल क्यारी आत्माभिमान को पल्लवित करने के लिए। अपनी की हुई भूलों को सुधार लेना, अपने दुराशय से पूरितभावों के लिए सिहर उठना, अपने दुष्कृत्यों पर पश्चात्ताप करना कितना मधुमय है। अभीष्ट धर्म में पश्चात्ताप की बड़ी महिमा गाई गई है। रोमन कैथोलिक धर्म की नींव इसी अनुताप की तप्त शिला पर है। शब्द में ही कितनी पवित्रता है। 'पश्चाताप' 'अनुताप' यह शब्द कितना ऊँचा उठाने वाला है। इसके शाब्दिक अर्थ ही में वह गहनता है जिस पर विचार करने से आत्मा को आनन्द लाभ होता है। 'पश्चात' के अर्थ हैं 'अनन्तर' 'बाद'। वही अर्थ अनु के हैं ताप के अर्थ हैं 'उष्णता' 'गर्मी'। शब्द के इस आशय को हृदयंगम कर लेने के अनन्तर इस शब्द का उच्चारण करने से हृदय में एक अत्यन्त पुनीत भावना का उदय हो जाता है। 'अनुताप' 'पश्चाताप' इन शब्दों से ही प्रतीत होता है मानो शुद्ध स्वच्छ स्वर्णमयी हार्दिक भावना अपने दुष्कृत्यों के कारण गन्दी हो गई है और वह एक जलती हुई; ताप पूर्ण भट्टी के मुख के सामने खड़ी है। और अब मानो 'अनुताप' दुष्कृत्यों के अनन्तर होने वाला यह ताप—पूर्व कृत कर्मों को भस्मीभूत करके उस आत्मा को सुन्दर निर्मल रूप दे देगा। इस शब्द में बड़ी महिमा है। ठीक-ठीक समझकर, सचेत होकर 'अनुताप' शब्द का उच्चारण मात्र करने से हृदय में बल-सा आता है।

'अनुताप' अथवा 'पश्चाताप' क्या है ? भौतिक मनोविज्ञान के आचार्यगण कदाचित् इस पश्चाताप का इस प्रकार वर्णन करने लगेंगे कि जिस समय कर्ता कोई ऐसा काम करता है जिसे लाचार शास्त्र 'बुरा' कहता है उस समय उसके मस्तिष्क में उस कार्य की नवीनता के कारण नई-नई रेखाएँ बनती हैं तथा उस कार्य के करने में भौतिक इन्द्रियों को अधिक परिमाण में हलचल करनी पड़ती है। इसलिए अब वह कार्य समाप्त हो जाता है तो उसके बाद थकावट के कारण कुछ ऐसा अनुभव होता है जिससे तबीयत ज़रा गिरी-गिरी सी मालूम पड़ती है। इसलिए भावुक लोग इसी क्षणिक भावावेश को अनुताप व पश्चाताप के नाम से पुकारते हैं। इन मनो-

विज्ञानवेत्ताओं की दृष्टि में प्रत्येक प्रकार के भाव, प्रत्येक प्रकार के आत्मानुभव, सबके सब भौतिक कारणों के फल कहे जा सकते हैं। अतएव इनकी दृष्टि में इस प्रकार के मान व हृदय के आवेश तथा भावनाओं का कोई आदर नहीं।

दूसरी ओर आध्यात्मिक मनोविज्ञानवादी हैं। वे कहते हैं कि हम अपने बाल्यकाल से कुछ संस्कारों एवं अवस्थाओं में लालित-पालित होते हैं। उन्हीं संस्कारों के प्रभाव से हमारी आत्मा पर विशेष प्रकार के भावों का अंकुर जम जाता है। यदि हम सदाचार पूर्ण संस्कारों के मध्य पले हैं तो हमारी आत्मा उन संस्कारों की शिक्षाओं के विरुद्ध कार्य करने में हिचकेगी। उदाहरणार्थ माता यशोदा ने कृष्ण को ऐसे संस्कार में पाला-पोसा था जहाँ सतत यह कहा जाता था कि चोरी करना बुरा है, मिट्टी खाना ठीक नहीं, दधि भांडों को तोड़ना उचित नहीं। किन्तु जब कृष्ण बड़े हुए और यार लोगों ने गोपिकाओं के सदन से चोरी करने की बात समझाई तो वे चोरी करने तो गए लेकिन उन्हें यह खयाल सदा सताता रहा कि कहीं किसी गोपिका को इस बात का पता न लग जाय, किंवा कहीं यशोदा मैया को इस शैतानी की खबर न हो जाय। फिर, जब कभी कोई गोपिका उन्हें पकड़ लेती थी तो कम से कम उस समय के लिए तो उन्हें अवश्य पश्चाताप होता था। उस समय तो ज़रूर वह यह समझते थे कि चोरी करना पाप है। आगे से न करनी चाहिए। अस्तु कहने का सारा सारांश यह है कि किसी भी अनौचित्यपूर्ण काम करने से सदाचारी हृदय के भाव शान्त नहीं रह सकते। उस कार्य के समाप्त होने के अनन्तर उस हृदय में आन्दोलन होता है, दुख होता है, अशान्ति उत्पन्न होती है, 'अनुताप' अथवा पश्चात्ताप' होता है। मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में अनुताप कुछ भी हो किन्तु हमारे लिए तो अनुताप वह वस्तु है जो मानव हृदय को उत्तरोत्तर उन्नत करती चली जाती है। स्वीकृति और अनुताप (Confesoion and Repentence) यह दो वस्तुएँ ऐसी हैं जो हृदय को बल देती हैं। यदि हमसे कोई भूल हो जाय और उस भूल को हम स्वीकार कर लें; यदि हमसे कोई अपराध हो जाय और हम उसे मान लें; यदि हमारे हृदय में धड़कन उत्पन्न न हो कि हमारे दोष स्वीकार कर लेने से हम लोगों की दृष्टि में गिर जाएँगे, तो उस दिन हम समझेंगे कि आज हमारी विजय का दिवस है। दोषों के स्वीकार कर लेने से हम अपने आत्मबल का परिचय देते हैं। हमारे पूजनीय महात्मा गांधी सदा सर्वदा इस बात को अपने सामने रखते हैं कि कभी मनसा वाचा कर्मणा कोई ऐसी बात न हो जाय जो अनुचित हो। और यदि इतना होने पर भी वह जान लेते हैं कि कहीं कोई भूल हुई है तो अपने दोष को तुरन्त स्वीकार कर लेना अपना आद्य कर्त्तव्य समझते हैं। एक बार यदि हममें से प्रत्येक अपने आपको उस मनुष्य के स्थान में रखे जो सर्व जनता के समक्ष अपने

कृत कर्मों का पश्चाताप करता है तथा अपने दोषों को स्वीकार करता है तो केवल उसी समय हम दोष स्वीकृति तथा अनुताप की महत्ता का एवं उनको करने के लिए आत्मबल की जितनी आवश्यकता है उसको ठीक-ठीक समझ सकेंगे। इसके विपरीत यदि हम केवल मिथ्या आत्माभिमान तथा बेबुनियाद की थोथी लोकलाज के मोहक पाश में फंसे रहे तो हम कदाचित् उस मनुष्य के आत्मबल की प्रशंसा नहीं कर सकते जो अपने विश्वास की दृढ़ता के कारण किसी की परवाह न कर सबके सम्मुख अपने दोष स्वीकार करता है तथा उसके लिए पश्चात्ताप करने को उद्यत है। अनुताप को हमने जलती हुई भट्टी कहा है। और इसकी सत्यता को केवल वही अनुभव कर सकता है जिसके हृदय में कभी अनुताप की भट्टी जली हो। जिस समय नींचतम प्रकृति वाले पुरुष को अपनी नीचता की विकरालता का ज्ञान हो जाता है; जिस समय वह यह अनुभव करने लगता है कि नियन्त्रित विश्व में केवल उसी का एक ऐसा जीवन है जो संसार में अनियन्त्रण का संचार कर रहा है, जिस समय हृदय में छुपे हुए अपने कराल विषधर सर्प की फुंकार से वह स्वयं व्याकुल-सा हो जाता है, जिस समय उसी व्याकुलता की चरमता में वह कातर होकर उन्मादी प्राणी के समान अपने आपको भूल जाना चाहता है, जिस समय प्राचीन-जीवन की एक-एक पैशाचिक क्रीडाएँ अपने नग्न रूप में उसके नेत्रों के सामने से गुजर जाती हैं—उस समय, केवल उसी समय, वह इस सत्यता का अनुभव करता है कि अनुताप काँच की भट्टी है। वह ऐसी भट्टी है कि यदि वह शरीर के अंग-प्रत्यंग को भी जला दे तो भी ख़ुशी-ख़ुशी मंजूर किया जा सकता है। उसमें जलते समय, उसमें तपते समय, उसकी उष्णता की पराकाष्ठा का अनुभव करते समय मनुष्य पद-पद पर यह अनुभव करता है कि उसके जीवन की एक-एक घटनाओं की स्मृति उस भट्टी की आग को धौंकनी बनकर फूंक रही है और लपटें ज्यों-ज्यों ऊँची-ऊँची उठती हैं त्यों-त्यों हृदय अपनी नीचता, पशुता, कायरता अनियन्त्रितता आदि मैल को भस्मीभूत कर अतीव ऊँचा जीवन लाभ कर रहा है। जी चाह उठता है—सब अधोगतिकारिणी वृत्तियाँ भस्मीमूत हो जाएँ और अनुताप के लिए काँच की भट्टी का नाम सार्थक हो एवं उसका एक-एक अंग-शिखा में मनुष्य अपने आत्मोत्सर्ग की छटा देखे।

जिस समय भक्तवर कबीर के पास एक मुमुक्षु गया और दीक्षित होने की अपनी इच्छा प्रकट की उस समय उन्होंने जो पद सुनाया था वह इतना सारगर्भित है कि उसकी एक ध्वनि में अनुताप की महिमा का गुँजार होता है। कबीर ने उससे एक दम यह नहीं कहा कि आओ मैं तुम्हें दीक्षा देता हूँ। वे बोले—

"चेला तुम्बी भर के लाना रे, गुरु ने मंगाई।
पहले वक्त तू पटनी लाना, नदी ताल के पास न जाना।
"कुआँ बावली छोड़ के लाना, तुम्बी भर के लाना रे।
"तुम्बी भर के लाना रे लाना बेटा गुरु ने भर के मँगाई।"

कैसा अमूल्य जल मँगवाया है? कुआँ, नदी, ताल-तलैया, झील, पोखर का जल नहीं। संत कबीर को इस आदिभौतिक जल की आवश्यकता नहीं। उन्हें इस जल से क्या काम? उन्हें तो चाहिए वह जल जो हृदय-मंथन करने के बाद प्राप्त हो। उन्हें आत्म-विस्मृति के पुनीत जल की आवश्यकता है। चेला आया है, वह मुमुक्षु है, आत्मज्ञान प्राप्त करते की उसे उत्कट अभिलाषा है, किन्तु गुरुदेव कबीर उस समय तक उसे आत्मज्ञानीय कैसे बना सकते हैं, जब तक कि आत्मा पर मैल का आवरण चढ़ा है? भूत जीवन के कुकर्मों ने निर्मलता पर जो झिल्ली चढ़ा रखी है उसे धोने की आवश्यकता जो है, और इसीलिए उन्होंने अपने आगन्तुक चेले से जल ले आने को कहा। उनका भाव था कि हे पुत्र तुम आज मुझसे दीक्षा ग्रहण करने आये हो; लेकिन क्या तुम नहीं जानते कि तुम पर आवरण पड़ा हुआ है। अपने कृत कुकर्मों पर जब तक तुम पश्चाताप नहीं करते तब तक मैं तुम्हें दीक्षा नहीं दे सकता। इसलिए तुम अनुताप करो तुम अपने पापों के लिए इतना पश्चाताप करो, इतना रो दो कि तुम्हारे नेत्रों के जल से यह तुम्बी भर जाय। इसलिए पहले 'चेला तुम्बी भरके लाना रे गुरु ने मँगाई।'

धन्य गुरु देव! अनुताप की महिमा को किस सुन्दरता से, किस गूढ़ भाव से प्रकट किया है। प्रसिद्ध अंग्रेज़ लेखक मि० चार्लस् रीड का एक संसार प्रसिद्ध ग्रन्थ है। उसमें भी उन्होंने एक स्थान पर लिखा है:—

"Lower aducket into the well of self deception and what comes out must be immortal truth, must'nt it?"

—अर्थात् आत्मविस्मृति के कूप में एक घट डालो और उसमें जो कुछ आवेगा अमर सत्यता होगी। क्यों न? यह अनुताप ही का प्रताप है कि मनुष्य अपने दैन्य के कारण आत्मविस्मृति के महत्त्व को समझ सके।

अनुताप तथा दोष स्वीकार (Repentence and confession) दोनों सहोदर भ्राता हैं। हमसे कोई पाप कर्म हो जाय और उसके लिए हम यदि किसी के प्रति उत्तरदायी हैं तो हमारा बल तभी है जब हम उसके सामने साफ-साफ शब्दों में अपने दोषों को स्वीकार कर लें। मनुष्य के हृदय में एक अशक्तता होती है। वह कोई ग़लती कर बैठता है और उस भूल को मिथ्या-अभिमान के वशीभूत होकर वह बजाय सुधारने के उसे छिपाता जाता है और ऐसा करने में उसे कई कृष्ण

कृत्य करने पड़ते हैं। आत्मबल तो कहता है कि सादर भूल स्वीकार करके अनुताप करो। तुम्हारा सच्चा स्वाभिमान इसी में है। किन्तु झूठी लोक-लाज की ऐसी हिचक होती है कि हम उस भूल को स्वीकार नहीं करते।

हमारे शासक दल सदा सर्वदा इसी अशान्तता के वशीभूत होकर अनेक पाप कर बैठते हैं। इसी मिथ्याभिमान शान (Prestiege) के कारण शासक और शासित के मनों में मालिन्य बढ़ जाता है। हमारा जीवन भी इसी अशक्ततासे खाली नहीं। हम यही प्रयत्न किया करते हैं कि किसी तरह हम अपनी भूलों को छिपाये रहें किन्तु ऐसा करना व्यक्तिगत रूप में ही हानिकारक नहीं वरन् जातीय रूप में भी वह हानिकारक है क्योंकि हमारी व्यक्तिगत करतूतें देश के सामने मिथ्याभिमान की आन निबाहने का नमूना रखती हैं और इससे न केवल हमारा व्यक्तित्व ही मलीन होता है वरन् हम अपने समाज, अपने देश, अपने आदर्श, अपने उत्कृष्ट विचार आदि सबको मैला करते हैं। क्या देश की आत्माओं में इतना बल आयेगा कि वे सदैव अपने कृत कुकर्मों पर खेद प्रकट करने को उद्यत रहें तथा उसे अनुताप की अंजलि से धो देने में न हिचकें ?

44

हमारी विशृंखलता

राष्ट्रों की घुड़दौड़ में हमारी विश्रृंखलता ही हमारे पिछड़ने का मुख्य कारण है और संगठन शक्ति पाश्चात्यों की चमत्कारिणी सफलता की वास्तविक कुंजी। अन्य युगों में, दूसरे प्रकार के सामाजिक, राजनैतिक और औद्योगिक संगठन में विश्रृंखलता से काम भले ही चल जाता हो परन्तु वर्तमान युग के विषय में तो कुशाग्रबुद्धि भारतीय विचारक भी यह कह गए हैं कि 'संघो कलयुगे' अर्थात् कलियुग में संघ शक्ति से ही विजय और सफलता मिल सकती है। यह सब जानते हुए भी और इतनी राजनीतिक जागृति हो जाने पर भी हममें अभी संगठन का भाव नहीं आया है। घातक विश्रृंखलता हमारे जातीय जीवन के रग-रग में इस प्रकार व्याप्त हो गई है कि वह हमसे दूर ही नहीं होती। कोई काम उठा लीजिए किसी आन्दोलन और किसी संस्था को देखिए सर्वत्र विश्रृङ्खलता अपने पूर्ण रूप में विराजमान है। यहाँ तक कि राष्ट्रीय संग्राम में जहाँ संगठन और सुदृढ़ एवं सूक्ष्म संगठन बिना सफलता मिलना स्पष्टतः असम्भव है वहाँ भी हम अपनी नाशक विश्रृङ्खल प्रवृत्ति को नहीं छोड़ सकते। जहाँ देखो वहाँ अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग। न परिस्थितियों का विचार और न राष्ट्रीय इच्छा का ध्यान, न किसी संस्था की परवाह और न किसी योग्य नेता के प्रति आदर-भाव, जिसे जो सूझ उठा वह उसे ही करने लगा और आड़ ली अन्तःकरणवाद की। हरएक को नेता बनने की धुन है कोई अनुयायी रहना ही नहीं चाहता। हरएक को अपनी मर्जी का ख्याल है। देश की परिस्थितियों और उसके भविष्य का तनिक भी विचार नहीं। सब अलग-अलग अपनी-अपनी संस्थाएँ खोलने में लगे हुए हैं, ज़रा-ज़रा सी बातों पर हड़तालें कराई जाती हैं। तनिक-तनिक सी बातों पर हुल्लड़ होने लगता है। महात्मा गांधी और कांग्रेस की स्पष्ट आज्ञा है कि सावधानी से और शिष्टता के साथ काम किया जाय परन्तु उसे बहुत कम लोग केवल उच्चकोटि के कार्यकर्ता ही मानते हैं। अनेक स्थानों से ऐसे समाचार भी आते हैं कि जिसका जी चाहता है वह लोगों से कांग्रेस और स्वराज्य के नाम पर चन्दा उगाह लेता है। इस प्रकार

की विश्रृङ्खलता से कब तक काम चल सकता है। ऐसी बातों से पवित्र से पवित्र आन्दोलन का नाम भी कलंकित हो सकता है। अपने राष्ट्रीय आन्दोलन की पवित्रता और धार्मिकता के नाम पर और देश के भविष्य के नाम पर हम इस विश्रृङ्खलता के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं। यदि यही होता रहा या यह शीघ्र ही बन्द नहीं किया गया तो फल यह होगा कि जो लोग हमारे आन्दोलन और उसके संचालकों की नैतिक पवित्रता और आदर्शवादिता से उस ओर आकर्षित हो रहे थे उनके भावों को गहरा धक्का लगेगा। आन्दोलन बदनाम हो जाएगा। और जनसाधारण की श्रद्धा उन पर से हट जाएगी। इस प्रकार उससे देश को अत्यन्त हानि पहुँचेगी। किसी शुभ आन्दोलन को इस प्रकार बदनाम करना और पवित्र ढंगों को छोड़कर कलुषित उपायों का अवलम्बन करना अत्यन्त निन्दनीय और विचारक है। देश के सार्वजनिक जीवन की शुचिता क़ायम रखने के लिए प्रत्येक विचारशील और प्रभावशाली देशभक्त का कर्त्तव्य है कि वह भरसक इस हानिकर प्रवृत्ति को रोकने का प्रयत्न करे। हर्ष की बात है कि हमारे नेताओं का ध्यान इस ओर गया है। हाल ही में महात्मा गांधी ने कराची की एक सार्वजनिक सभा में जनता से उसकी विश्रृङ्खलता के लिए बहुत बुरा-भला कहा है। पायोनियर का 27 अप्रैल का समाचार है कि शाम को राष्ट्रीय नेताओं से बात करते हुए महात्मा गांधी ने उनसे विना आवश्यकता और अधिकार के हड़ताल कराने पर अपनी भारी अप्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने कहा कि इस मूर्खता के कारण उनकी बदनामी होती है और हड़ताल के प्रबल अस्त्र पर धक्का लगता है। महात्मा गांधी के इन सदुपदेशों का पूर्णतया पालन होना चाहिए। नौकरशाही ने हमारे आन्दोलनों का दमन करने के लिए कमर कस ली है। उसके लिए जितने सम्भव उपाय काम में लाये जा सकते हैं लाये जा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय कार्यकर्ता बड़ी दृढ़ता, अत्यन्त संयम,, अतीव बुद्धि और धैर्य से काम करें। कोई ऐसी बात न होने पावे जो आन्दोलन के नाम को बदनाम करे। कोई यह न कह सके कि जान-बूझकर नौकरशाही को दमन करने के लिए विवश किया जा रहा है और खून लगाकर शहीद बनने की प्रवृत्ति ज़ोरों पर है। सत्य न छूटे, स्पष्टवादिता में कमी न होने पावे, कार्य न छोड़ा जाय परन्तु सत्यकथन में शिष्टता, सभ्यता और औचित्य को तिलांजलि न दी जाय। आपत्तियों को ज़बर्दस्ती न बुलाया जाय। परन्तु यदि वे आ जाएँ तो उनका साहसपूर्वक मुकाबिला किया जाय। अपनी ओर से किसी प्रकार का उपद्रव न होने पावे। अपने कार्य, अपने कथन और अपने वचनों में हिंसा, उपद्रव और उग्रता पास न फटकने पावे तभी हम सच्चे असहयोगी कहा सकते हैं और तभी और केवल तभी हम अपने कार्य को करने में सफल हो सकते हैं। राष्ट्रीय कार्य-

कर्ताग्रों में व्यक्तिगत गुणों के ग्रतिरिक्त संगठन में काम करने का गुण भी होना चाहिए। उनमें ग्राज्ञापालन का भाव हो ग्रौर वे ग्रपने विकारों को राष्ट्रीय इच्छा की वेदी पर न्यौछावर कर दें। जो काम हो वह संगठन के साथ। राष्ट्रीय महासभा की ग्राकांक्षाग्रों का उल्लंघन कभी न किया जाय। यदि सत्य ग्रन्तःकरण किसी भी तरह न माने तब भी राष्ट्रीय नेता की सम्मति तो ग्रवश्य ही ले ली जाय। हम यह नहीं कह सकते कि ग्रपने ग्रन्तःकरण ग्रौर विचार-शक्ति को बेच दिया जाय परन्तु हम यह ग्रवश्य कहेंगे कि बहुत ही ग्रसाधारण ग्रवस्थाग्रों को छोड़कर हमारे कार्य राष्ट्रीय महासभा के ग्राधीन हों। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता बड़ी ग्रच्छी चीज़ है—बड़ी ग्रच्छी ग्रौर ग्रत्यन्त ऊँची—परन्तु राष्ट्र की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए उसे संकुचित कर देना एक ऐसा त्याग है जिसकी समता नहीं हो सकती, जो सब त्यागों में श्रेष्ठ है। वर्तमान परिस्थितियों में यदि किसी त्याग से तुरन्त सफलता मिल सकती है तो वह यही त्याग है। हमें ग्राशा ही नहीं बल्कि विश्वास है कि जिन उत्साही ग्रौर त्यागी ग्रात्माग्रों ने सच्चे हृदय से राष्ट्रीय ग्राह्वान का उत्तर दिया है वे इस त्याग के करने में भी समर्थ होंगे। वे ग्रपने कार्यों से यह सिद्ध कर देंगे कि उन्होंने जो कुछ किया है ग्रौर वे जो कुछ कर रहे हैं वह केवल क्षणिक ग्रावेश ग्रौर युवकोचित ग्रावेग से ही प्रेरित होकर नहीं बल्कि एक ऐसे ग्रादर्श को लक्ष्य में रखकर जिसकी प्राप्ति के लिए, जिसकी झाँकी मात्र के लिए कोई भी त्याग बहुत नहीं है ग्रौर कोई काम पर्याप्त नहीं है ग्रौर कोई भी भौतिक सुख तथा भौतिक लाभ उसका मूल्य नहीं हो सकता। ऐसी ही ग्रात्माग्रों के प्रयत्न से हमारी विश्रृङ्खलता दूर हो सकेगी। ऐसी ही ग्रात्माग्रों के ग्रादर्श ग्रौर उदाहरण से हमारे राष्ट्रीय जीवन में शुचिता का साम्राज्य होगा ग्रौर ये ही वे ग्रात्माएँ हैं जिनके तपोबल से संसार-सूत्रधार का प्रभाव हिल जाएगा ग्रौर जिनके चरण चिह्नों को सादर चूमकर सफलता ग्रपने को कृतकृत्य करेगी।

45

हमारे जातीय जीवन के दोष

अंग्रेजी साहित्य क्षेत्र के हलधर मि० जी० के० चेस्टरटन ने एक बार कहा था कि स्वस्थ चित्त का यह चिह्न है कि वह कभी-कभी आपकी मूर्खताओं का मज़ाक उड़ा सके। किसी समाज की मानसिक स्वस्थता का पता तभी लगता है जब वह शुद्ध चित्त से निष्पक्ष होकर अपने स्वत: के गुण अथवा अवगुण की, विशेष रूप से अवगुण की, आलोचना कर सके। भारत के दुर्भाग्य से कभी-कभी तो उसके जातीय गुण व गुणों की आलोचना करने वाले ऐसे विषधर फणधारी मिले हैं जिनके प्रत्येक विश्वास में जातीय घृणा, द्वेष, पक्षपात, मनोमाजिन्य आदि की दुर्गन्ध आती है। इस प्रकार के आलोचकों के दल में हैं—लार्ड कर्जन। इन्होंने अपने शासन काल में कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपाधि वितरणोत्सव के अवसर पर भारतीय जाति पर नहीं किन्तु समस्त एशिया महाद्वीप की समस्त जातियों पर जिस लांछन को लगाया था वह इतना पक्षपातपूर्ण एवं इतना घृणा से पूरित है कि हमें यहाँ उसके ऊपर विचार तक करने की ज़रूरत नहीं। जो मनुष्य अन्धे बनकर तथ्यांशों पर दृष्टिपात न करते हुए किसी जाति के गुण-दोषों के विषय में कोई निष्कर्ष निकालते हैं उनके वाक्यों की छान-बीन करना भी समय का अपव्ययय करना है। लार्ड कर्जन-जैसे अभिमानी कट्टर साम्राज्यवादी नरपुंगव इन्हीं आलोचकों की श्रेणी में हैं जो पहले से अपनी आँखों पर पट्टी बाँध लेते हैं ताकि अनिष्ट सत्यताओं पर दृष्टि न पड़े। इसलिए जब लार्ड कर्जन-जैसे लोग हम लोगों के जातीय जीवन के गुण एवं दुर्गुण की सम्यक् रूपेण आलोचना करें तो हमें तुरन्त ही समझ लेना चाहिए कि वे जो कुछ कहते हैं वह समालोचना नहीं किन्तु अतीव एकांगी आलोचना है अतः वह किसी अंश में भी ग्राह्य नहीं।

इन भद्र पुरुषों के अतिरिक्त एक और प्रकार के आलोचकों की श्रेणी है। इस श्रेणी के लोग किसी भी जाति के प्रति किसी प्रकार के वैर-भाव से प्रेरित नहीं होते। वे निष्पक्ष होकर जहाँ तक उनकी बुद्धि सहायता देती है किसी जाति के गुण-दोष जानने की कोशिश करते हैं। उसके उपरान्त वे जिस रूप में जिस वस्तु तथा

जाति के दर्शन करते हैं उसको सर्वसाधारण के सम्मुख रख देते हैं ताकि वे उससे लाभ उठावें। यह मनुष्य ऐसे होते हैं कि ज्यों ही उन्हें यह ज्ञात हो जाता है कि उनके अन्वेषण तथा अनुवीक्षण में कहीं अशुद्धि रह गई है तो वे उसे सुधार तथा अपनी भूलों को मान लेने के लिए तैयार हो जाते हैं। ऐसे मनुष्यों के निष्कर्ष लार्ड कर्जन के सदृश मनुष्यों के निष्कर्ष से अतीव भिन्न होते हैं तथा उनके निष्कर्ष लार्ड महोदयों के सदृश अन्वेषकों के निष्कर्षों की अपेक्षा अधिक मान्य एवं अधिक आदरणीय होते हैं।

अभी थोड़े दिन हुए संसार के दो अद्वितीय पुरुषों ने एक-दूसरे से साक्षात्कार किया था। भारत कविता कौमुदी के धारक श्री रवीन्द्र ठाकुर यूरोपीय तत्त्वज्ञान सिन्धु की थाह लेने वाले महाशय वर्गसन से मिले थे। उस समय जब उक्त दोनों सज्जनों में सम्भाषण हो रहा था तब यह बात छिड़ गई कि भारतीयों में कौन-सा दोष है? महाशय वर्गसन ने रवीन्द्रनाथ से कहा मुझे जहाँ तक अवलोकन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उससे तो मैं केवल यही कह सकता हूँ कि भारतीय विचार प्रणाली में एक बड़ा भारी दोष है और वह यह है कि भारतीय मस्तिष्क कभी वास्तविकता के स्वरूप को नहीं देखता। वह कभी बाह्य ज्ञान की उपादेयता को नहीं समझता। और यदि उसको समझता भी है तो उसका प्रयोग करना नहीं जानता। भारतीय विचारक अधिकतर आत्मानुभव पर बड़ा विश्वास करता है। आत्मानुभव ही उसकी सारी की सारी विचार प्रणालियों में प्रतिलक्षित होता है। यही कारण है कि उसके विचार में निश्चितता की मात्रा अधिक नहीं होती। इसीके कारण उसकी ज्ञान-सरणि में बाह्य वस्तुओं की स्थिति का तिरस्कार किया गया है और अधिकतर भारतीय मस्तिष्क आत्मज्ञान की ओर विशेष रूप से झुकता हुआ प्रतीत होता है। जिस समय कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस प्रकार की बातें सुनीं उस समय उन्होंने भी वर्गसन महाशय के विचारों का पृष्ट-पेषण किया। अर्थात् कवीन्द्र रवीन्द्र भी यही समझते हैं कि भारतीय मस्तिष्क में निश्चितता नहीं है, वह वस्तुस्थिति को ठीक-ठीक समझ लेने में असमर्थ है एवं अधिकतर वह आत्मानुभव पर ही अधिक विश्वास करता है बाह्य ज्ञान पर कम।

पहले-पहले जो कोई इन दिनों दिग्गजों के सम्भाषण को पढ़ेगा उसको भी एक बार तो यह विश्वास हो ही जाएगा कि महाशय वर्गसन की बात बहुत कुछ सच है। हमें एक-दो यूरोपीय सज्जनों से इसी विषय पर बातें करने का मौका मिला है। भारतीय मस्तिष्क की असक्तता का ज़िक्र करते हुए सभी यह कह देते हैं कि भारतवासियों के विचार करने की पद्धति में जो एक दुर्गुण है वह यही है कि वे वास्तविकता को भूलकर अकली घोड़े खूब दौड़ाते हैं। बात जैसी हो किन्तु बार-बार

इसी तरह की बातों को सुनते-सुनते अधिकतर मनुष्यों का इसी प्रकार का ख्याल होता जाता है। हमारा यह ख्याल है इस तरह जो बातें कही जाती हैं उनमें भी ठीक वही अवगुण उपस्थित हैं जिसे ऐसी बातें कहनेवाले हमारी जातीय जीवन का दोष बतलाते हैं—अर्थात् वस्तुस्थिति को न देखना। प्रश्न उठ सकता है कि यह कैसे? अच्छा अब यह प्रश्न ऐसा है कि इसका उत्तर सारी जाति के विचार करने की शैली का दिग्दर्शन करा देगा। भारतवासी किस प्रकार से विचार करते हैं? उनके विचार करने में कौन-सा दोष है। इन प्रश्नों के उत्तर के लिए हमें उन विषयों को ध्यान में लाना होगा जिन पर भारतीयों ने विचार किया है। क्योंकि जब तक हम यह न जान लें कि एक जाति ने कौन-कौन से शास्त्रों को अंकुरित, पल्लवित एवं विस्तृत किया है तथा उन शास्त्रों के पूर्ण विस्तार में क्या-क्या दोष रह गए हैं तब तक हम यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि उस जाति की विचार-शैली में कौन-सा दोष है। भारतवासियों की विचार-शैली के गुण-दोषों को देखने के लिए भी इसी नियम की पाबन्दी लागू होती है। अच्छा तो भारतीयों ने किन-किन विज्ञानों को पल्लवित किया? न्याय, तर्क, ज्योतिष, गणित, ललितकला, गायन-वादन, समाज-शास्त्र आदि। इह-लौकिक एवं पारलौकिक ज्ञान के अर्जन करने तथा उसको पल्लवित करने में भारतीयों ने जिस सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है उसको देखते हुए महाशय बर्गसन-ऐसे तीक्ष्ण बुद्धि आलोचक के मुख से भारतीयों की विचार-शैली की सदोषिता की बात निकलना आश्चर्य में डालती है। भारतीयों का यही दोष तो है न कि वे बाह्य वस्तुओं को सूक्ष्म दृष्टि से नहीं देखते? इस प्रकार की जिसे शंका हो वह हमारे ज्योतिषशास्त्र की निश्चितताओं को देखे। हमारे यहाँ के सिद्धान्तों की निश्चितता इतनी अटल है कि उनकी सहायता से ग्रहों के चाल-चलन का हिसाब लगाने में क्षण तथा मूहूर्त की भी अशुद्धि नहीं होती। दूसरी ओर हमारे गणितशास्त्र के सिद्धान्तों को देखिए। जिस भारतवर्ष का दशमलव सिद्धान्त संसार के अनेक झंझटों को सुलझा देता हो और साथ ही जिसके आवर्त और अनावर्त दशमलवों में इतनी सूक्ष्मता हो उस जाति के मस्तिष्क को अनिश्चित तथा तथ्यांशों का उपेक्षक समझना हमारी समझ में नहीं आता। इसी प्रकार गृह-निर्माण, शिल्प-कला, गायन आदि में हम लोग जितनी बारीकियों का सम्मिलिन करते हैं उनको देखते हुए महाशय बर्गसन तथा अन्यान्य यूरोपियन विद्वानों का ऐसी बातों का कहना हमें युक्ति-संगत नहीं जँचता।

यहाँ पर एक और प्रश्न उठ सकता है। वह यह कि क्या कारण है कि विदेशी विद्वानों के मन में हमारे देशवासियों के प्रति ऐसी भावनाएँ उत्पन्न हो गई हैं? इसका कारण सीधा-सा है। जिस आत्मानुभव को भारतीयों ने इतना अपनाया एवं

जिसके उपयोग के कारण उनकी विचार-सरणि को दूषित बताया गया वास्तव में भारतीयों ने उसका उपयोग केवल पारलौकिक ज्ञान अर्जन तथा तत्सम्बन्धी अन्वेषण में ही किया है और पश्चिमी विद्वानों ने सर्वप्रथम भारतीयों के तत्त्वज्ञान सम्बन्धी ग्रंथों का ही परिचय पाया और इसी के बल पर उन्होंने अपनी यह धारणा बना ली कि भारतीय अधिकतर आत्मानुभव से काम लेते हैं। इसलिए यदि विदेशीय विद्वान् भारतीयों के आत्मानुभव के उपयोग को पारलौकिक ज्ञानार्जन के लिए भी अनुचित समझते हैं तो हमारा यह निवेदन है कि उनसे हमारा तीव्र मत-भेद है और यदि उनका यह ख्याल हो कि हमारा यह आत्मानुभव सब प्रकार के ज्ञान-विज्ञान के पठन-पाठन में कूद पड़ता है तथा वास्तविकता का ध्यान नहीं रखा जाता तो हम यही कहेंगे कि भारतीयों की विचार-शैली के विषय में आपका ज्ञान अपूर्ण है अतः आपकी बात मान्य नहीं।

गत लेख में हमने यह दिखलाने की चेष्टा की थी कि हमारे दर्शनशास्त्रों के अवलोकन से विदेशीय विद्वानों ने हमारी विचार पद्धति के विषय में जो राय बना ली है वह युक्ति संगत नहीं है। अर्थात् उनका यह कहना ठीक नहीं कि भारतवासी वस्तुओं के गुण-दोषों को तार्किक दृष्टि से नहीं देखते अथवा वे अपने सिद्धान्तों का आयोजन किसी वास्तविकता की भित्ति पर नहीं रखते वरन् सदा सर्वदा आत्मानुभव की शरण लेते हैं। हमने महाशय वर्गसन के सदृश अन्य तत्ववेत्ता अथवा विद्वानों के उस प्रकार के निष्कर्षों को असत् आधार पर स्थित कहा था और भारतीयों ने जिन-जिन ज्ञान विज्ञानों को पल्लवित किया है उनका हवाला देकर अपनी बात की पुष्टि करने की चेष्टा की थी। पश्चिमी विद्वानों को हमारा एक और दोष खटकता है और वह दोष है अतिशयोक्ति। उनका कथन है कि हम लोग किसी भी घटना को किंवा किसी वस्तु को उसके असली स्वरूप में देखना जानते ही नहीं। हम सदैव एकांगी विवरण को देखते हैं। उसकी वास्तविकता तक पैठने का प्रयत्न नहीं करते। और इसका यह फल होता है कि हम बहुत शीघ्र अतिशयोक्ति के दोष के भागी होते हैं। जब हम घटना का वर्णन करते हैं तो उसे हम बहुत बढ़ाकर करते हैं। जब हम उसका मानसिक चित्र खींचते हैं तो उसे हम बहुत रंग दे देते हैं। हमें वह विचार करना चाहिए कि उनके इस विचार का क्या कारण है। अंग्रेज़ी भाषा में एक मुहावरा मशहूर है। जहाँ कहीं किसी ललितकला में कोई विशेष चटक-मटक, चमक-दमक होती है तो यूरोपीय विद्वान झट से कह देते हैं कि कला के इस नमूने में प्राच्य विपुलता (Oriental exuberance or barous profusion) है। ऐसा कह देने के क्या मानी हैं। हमारा यह ख्याल है कि प्राच्य देशों ने पाश्चात्य देशों से ललित कला में अधिक उन्नति की थी। उनके ललितकला सम्बन्धी तथा

भोग-विलास के पदार्थों में ऐसी सुकुमारता, ऐसी विपुलता, ऐसी तड़क-भड़क थी कि पाश्चात्य देशों के लिए वह एक अनोखी बिलकुल नवीन अतः स्पर्धा की वस्तु थी। उस स्पर्धा ने कुछ-कुछ ईर्ष्या उत्पन्न कर दी है और उसका फल यह हुआ कि प्राच्य विपुलता कुछ-कुछ घृणा की दृष्टि से देखी जाने लगी। काव्य की सौकुमार्य तथा लोकोत्तर लालित्य को भी पाश्चात्यों ने उपेक्षा की दृष्टि से देखा। पहले-पहल भारत के काव्य रस को यूरोप ने नहीं चखा। फारसी के विद्वानों के अतिशयोक्ति पूर्ण—उस अतिशयोक्ति से पूर्ण जो काव्य का अंग होने के कारण सर्वथा क्षम्य एवं कवि कल्पना की द्योतक थी—काव्य ग्रन्थों के अध्ययन करने से यूरोपीय विद्वानों ने भारतीयों को भी अतिशयोक्ति-प्रेमी कह डाला और उसको भारतवर्ष का जातीय दोष मान लिया। इसीलिए ये विद्वान कह देते हैं कि भारतीय विचार शक्ति बड़ी अनिश्चित, बड़ी ढीली-सी तथा अतिशयोक्तिमय है। यदि ऐसा कह देने से उनका मतलब यह है कि भारत के कवित्व में अतिशयोक्ति है तो हम भी कहते हैं कि उनका अतिशयोक्ति प्रेम निंद्य नहीं, किन्तु यदि वे इसे सब प्रकार के ज्ञानों की परिपाटी में प्रतिलक्षित पाते हैं तो हम इस बात का सादर विरोध करते हैं। अतिशयोक्ति स्वभाव का एक ऐसा झुकाव है कि जब तक विचार की प्रबलता से उसे दबाया न जाय तब तक वह प्रत्येक मनुष्यों के विचार को अपने साथ झुका ले जाता है। यह दुर्गुण किसी एक ही राष्ट्र में नहीं प्रत्येक राष्ट्र के अविचारी दल में पाया जाता है। इंग्लैण्ड के निरक्षर लोग अथवा अर्ध-शिक्षित लोग इसी दोष के दोषी नहीं हैं ? अशिक्षित की कौन कहे ? लार्ड सिडनहेम तथा लार्ड एम्पहिल के सदृश पूर्ण शिक्षित आदमी भी तो रोज़ उठकर अतिशयोक्ति का पाप कमाया करते हैं। इसलिए यूरोपियन विद्वानों का यह कहना कि भारतीयों में अतिशयोक्ति का दुर्गुण है उतना ही अयुक्ति संगत है जितना कि उनका भारतीय मस्तिष्क को तर्क से विहीन कहना।

यह सब कुछ है किन्तु क्या हमारी जाति बिलकुल दूध धोई है ? क्या हममें कोई भी दुर्गुण नहीं ? हाँ हैं। हममें कई दुर्गुण हैं। उनमें से एक बड़ा भारी दुर्गुण यह है कि हम स्वल्प-सन्तोषी हैं। हम बहुत शीघ्र सन्तुष्ट हो जाते हैं और आलस्य के कारण निरुद्यमी बने हुए हैं। उसी तरह हम दूसरों से सीखना नहीं जानते। प्रोफेसर राधाकुमुद मुकर्जी ने अपनी 'हिस्ट्री ऑफ इंडियन शिपिंग' में विस्तृत तौर पर लिखा है कि "प्राचीन भारतीय समुद्र-यात्रा में कुशल थे और रूस तक जहाज़ों के द्वारा यात्रा किया करते थे।" उनके प्रमाणों तथा दृष्टान्तों से उनका पक्ष पूर्ण तौर पर पुष्ट होता है। प्रश्न जो कुछ है वह यही है कि भारतवासी यदि सचमुच देश-विदेशों में भ्रमण करते थे और दुनिया के सब कोनों को देख आए थे तो इस

अभागे देश के लिए कौन-सी नयी बात लाये। यूनान में लोकतंत्र राज्य का और प्लेटो तथा अरस्तू अपने राजनैतिक ग्रंथों के द्वारा अपना नाम अमर कर गए। कहा जाता है कि भारतीयों से इन्होंने बहुत कुछ सीखा। प्रश्न जो कुछ है वह यही है—'हमने उनसे कौन-सी बात सीखी? हमने अपने देश के राजनीतिक संगठन में कहाँ तक उनसे सहायता ली और कहाँ तक उससे उन्नति की? देखते ही देखते रोम के आधिपत्य का ज़माना आया। यूनान का प्रजातंत्र राज्य रोम में कुलीन-तंत्र राज्य के नये देश में प्रकट हुआ। उनकी शासन शैली ने सैकड़ों सालों तक सारे यूरोप तथा पूर्वीय एशिया को उससे जुदा न होने दिया। रोम शनैः-शनैः शिथिल तथा निश्शंक हुआ परन्तु अन्त तक नष्ट न हुआ। यदि भारत के लोग इस अपूर्व शासन शैली को अपने देश में प्रचलित करते और वंशागत एकतंत्र राज्य को सर्वथा ही नष्ट कर देते तो क्या आज तक हम किसी प्रकार की भी गुलामी को सहते। हमारा दोषपूर्ण राजनैतिक संगठन ही था जिसने भारतीय राजाओं को पारस्परिक द्वेष से मुक्त न होने दिया और मुसलमानों के आक्रमण से देश को बचाने में असमर्थ कर दिया। यदि रोम की शासन-पद्धति देश में प्रचलित होती तो क्या देश की यही हालत होती। हम फाहियान, ह्यूनसांग आदि अनेकों चीनी यात्रियों तथा मेगस्थनीज़ आदि राजदूतों के लिखे भारतवर्ष के हाल को पढ़ते हैं। क्या कोई भारतवासी भी हुआ है जिसने यूरोप या चीन का सच्चा-सच्चा हाल लिखा हो और संसार के लोग उसको चाव से पढ़ते हों। यहाँ पर ही बस नहीं चीन में छापेखानों तथा अखबारों का सैकड़ों साल से प्रचार था। यूरोप के व्यापारियों ने चीन से इस विद्या को सीखकर अपने देश में प्रचलित किया। सन् 1665 से पूर्व ही इंग्लैंड में छापेखाने तथा पुस्तक प्रकाशन का काम शुरू हो गया था। एलिजाबेथ के समय में ही इंग्लैंड में प्रेस विद्या पहुँच गई थी। यह वही समय है जब कि भारत में मुग़ल सम्राटों का सितारा अपनी अन्तिम ऊँचाई पर था। क्या भारतवर्ष भी यूरोप के सदृश ही चीन से यह विद्या न सीख सकता था? 1695 तक इंग्लैंड में छापेखाने ने इतनी उन्नति कर ली थी कि पार्लियामेण्ट को लाइसेन्सिंग एक्ट पास करना पड़ा। इस ऐक्ट के अनुसार इंग्लैंड के छापेखानों पर सरकारी देखरेख बहुत ही अधिक बढ़ गई। 1702 से पहले ही लंडन में 'दी पोस्ट वाय' नामक दैनिक पत्र स्थापित हो गया [illegible] वर्कले ने 'डेलीको-रन्ट' नामक दैनिक पत्र प्रकाशित [illegible] स्टील तथा एडीसन ने अपने अखबारों को निकाल[illegible]न्ध से आज भी अंग्रेजी साहित्य सुगन्धित है।

मुसलमानी आक्रमण औ[illegible] पूर्व भी संसार अविद्या-

SPS
809 R 11 G
25967

ग्रस्त न था। बहुत-सी बातें संसार के अन्य भागों में बसे लोगों ने भी निकाली थीं जो कि हमारे लिए सर्वथा नवीन थीं। हम उनसे बहुत कुछ सीख सकते थे और आने वाली भावी विपत्तियों से अपने आपको बचा सकते थे। परन्तु हमारे जातीय जीवन तथा विचित्र स्वभाव का ही यह दोष है कि मुसलमानों के आक्रमण के शुरू होने पर भी हम लोगों ने उस आक्रमण का कारण तथा मुसलमानों की बढ़ती हुई शक्ति का ज्ञान न प्राप्त किया। जिन म्लेछों से हम लोग डरते थे अन्त में उन्हीं के शिकार हो गए। अन्त में जब पीछा छुड़ाया तो फिरंगी लोग सिर पर सवार हो गए। यह सब घटनाएँ इस बात को सूचित करती हैं कि हमारे जातीय जीवन तथा स्वभाव में कहीं पर दोष अवश्य है? क्या कारण है कि हम लोग साहसी तथा उत्साही नहीं हैं? क्या कारण है कि हममें दूसरे देशों के गुणों तथा आविष्कारों को ग्रहण करने की रुचि नहीं है? क्या कारण है कि हम लोग देश-विदेश का भ्रमण करते हुए भी अपनी मातृभूमि की उन्नति तथा समृद्धि के लिए अमृतफल ढूंढ़कर नहीं लाते हैं? जो हुआ सो हुआ। अब भी तो यही हालत मौजूद है। इस तीस करोड़ जनता में कितने नवयुवक हैं जो कि विद्या तथा ज्ञान के प्यासे हैं, जिनमें इस बात की आग जल रही है कि देश-विदेश में भ्रमण कर भारत को गुलामी से छुड़ाने के लिए उचित औषध को ढूंढ़कर लावें? कितने हमारे विद्यार्थी हैं जो कि मास्को में साम्यवाद तथा पूँजीवाद के विवादों की बारीकियों को समझने के लिए पहुँचे हों? कितने हमारे विद्यार्थी हैं जो कि बोल्शेविक लोगों की शासन-पद्धति की सफलता की जाँच करने के लिए रूस में पहुँच गए हों। माना कि रूस में पहुँचना सुगम काम नहीं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि विद्या की प्यास से प्यासे लोगों के लिए यह ऐसी रुकावट नहीं जो कि दूर न की जा सके। यहीं पर ही बस नहीं। चीन तथा जापान की असली हालत को जानने की जरूरत है। कितने विद्या-प्रेमी लोग हैं जो कि इसी के पीछे अपना जीवन अर्पित कर रहे हैं? राजनीतिज्ञ लोगों को दुख है कि भारत की सीमा-स्थित राज्य असभ्य तथा अविद्या प्रेमी लोगों की बस्तियाँ बन गए हैं। प्रश्न तो यह है कि हमने उनके उद्धार के लिए कितना यत्न किया? कितने हमारे देश के लोग हैं जिन्होंने नेपाल की ख़ातिर अपना जीवन अर्पित कर दिया। यदि नेपाल आज पीछे है और हमारी स्वतंत्रता का बाधक है तो इसमें कसूर किसका? किन्तु यह सब करे कौन? यह तो हमारे जातीय जीवन का दुर्गुण है कि हम में एक प्रकार की अलसता है। किसी भी बात को करने को हमारा जी नहीं चाहता। हम दूसरे देशों की उन्नत शासन-शैली को ग्रहण करने के लिए उद्यत नहीं होते। हम सतत सन्तोषी हैं। अपने-आपको सब कुछ समझ लेना और सर्वश्रेष्ठ समझ लेना हमारे लिए एक साधारण-सी बात है।